GORAKHNATH AUR UNKA YUG

by

Rangeya Raghava

Rs. 8.00

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
माई हीरां गेट, जालन्धर
चौड़ा रास्ता जयपुर
बेगमपुल रोड मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़
महानगर, लखनऊ-6
रामकोट हैदराबाद

मूल्य आठ रुपए
प्रथम संस्करण 196[illegible]

मुद्रक
राकेश प्रेस
दिल्ली

पूज्य गुरु

प० बालेश्वरप्रसादजी शास्त्री

के

कर कमलों में

भूमिका

गोरखनाथ को समझने के लिए आवश्यक है कि उनके पूर्व और उत्तरकाल की एक स्पष्ट रेखा किंकर्तव्यविमूढ़ परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया जाये। हर्षवर्धन के बाद से लेकर मुसलमानों के आक्रमणों तक का समस्त समय या तो खण्ड रूप से देखा गया है या बहुत ही अस्पष्ट रूप से। वह समय कितना महत्त्वपूर्ण था यह इतनी सरलता से नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार तुलसी के विषय में जानकारी हासिल करने के लिए तत्कालीन राज्य व्यवस्था राजनीति धर्म तथा दर्शन कला तथा अन्य विषयों का ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार गोरख के विषय में भी आवश्यक हो जाता है। गोरख चरित्र वास्तव में प्राय: उन 500 वर्षों का इतिहास है, या कहा जा सकता है कि उन 500 वर्षों का इतिहास गोरखनाथ के ही माध्यम से देखा जा सकता है। विद्वानों ने गोरखनाथ पर दृष्टिपात किया भी तो उन्हें उनका महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया इसीसे इतिहास की शृंखला बद्ध नहीं हो सका। मध्य युग के संधिकाल में गोरख को इतना महत्त्व देने का कारण है कि हमें उनके विषय में प्राय: न्यून-सी जानकारी है। शंकर और रामानुज के विषय में काफी ज्ञान है। इतिहास ने गोरख को भुला दिया। यह ठीक है या नहीं इत्यादि प्रश्नों के विषय में आगे विचार किया गया है। मैंने यहाँ गोरख के माध्यम से समस्त युग को नापने का विचार किया है अथवा यह कहना ठीक होगा कि समस्त युग के माध्यम से गोरख को नापने के कार्य का भार उठाया है। गोरख चरित्र के साथ मध्य युग का संधिकाल क्यों इस प्रकार सम्मिलित किया गया है इसका उत्तर समस्त पुस्तक में बिखरा पड़ा है।

भारतीय इतिहास को यूरोपीय इतिहास की भांति बर्बर सामन्त तथा पूँजीवादी युग के रूप में विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि भारत में वैदिक काल से अब तक सामन्तवाद जीवित है। बहुधा ऐतिहासिकों से यह भूल हो रही है। यदि एक ओर धार्मिक दृष्टिपात होता है तो दूसरी ओर एकांगी विद्वत्ता प्रदर्शन का प्रयत्न या फिर कहीं अतिराष्ट्रीयता सत्य को ढँकती है तो कहीं विदेशी का विस्मय मात्र। प्रस्तुत पुस्तक इतिहास नहीं है। यह केवल एक विशेष युग की मुख्य विचारधाराओं का मनन है। उस काल के धार्मिक आन्दोलन वास्तव में सामाजिक अथवा राजनैतिक आन्दोलन थे जिनकी नैतिकता दर्शन के सहारे चलती थी।

भारतीय संस्कृति जो इतनी बिखरी हुई दिखती है वह उसके राजाओं के इतिहास के कारण जो अभी तक इतिहासज्ञों की खोज का विषय रहा है।

भारतीय संस्कृति वास्तव में इससे बहुत अधिक है। बहुत गहरी है। यह अनुभव होने पर जब भारतीय संस्कृति को देखा जाता है तो उसकी साधना का मूल स्वर एक ही दिखाई देता है। यद्यपि यह विषय अभी तक धर्मप्रवण लोगों में विवादास्पद है तथापि काफी स्पष्ट हो चुका है कि इस देश का इतिहास आर्यों से पहले प्रारम्भ होता है। इस दृष्टिकोण के सामने आते ही पर्दा आँखों के सामने से फट जाता है और पुस्तकालय में बैठा विद्यार्थी जो उसकरणों के नाम रटता है या सम्बार्थ रटा करता है यदि उसमें कुछ भी जिज्ञासा है तो इस ओर आकर्षित होता है कि वह अपने विषय को एक खण्ड मानकर न समझे, वरन् सबके संदर्भ मे रखकर उसे देखे। तब यह ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति में बहुत कुछ आर्येतर है और उसने भारतीय संस्कृति का अधिकांश निर्णीत या निर्माण किया है।

आवश्यक हो जाता है कि धर्मसाधना का विवेचन किया जाय और उसके प्रधान तत्वों को समझा जाय। पुस्तक में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

उस समय क्योंकि उत्पादन के साधनों में भेद नहीं आए थे इसलिए मनुष्य को जीवन में कोई नवीनता नहीं दिखी थी। वस्तुतः सिद्धियों के चमत्कार की ओर आकर्षित होना इसी कारण उस युग में अत्यन्त बल पकड़ गया था। उस युग की विशिष्टता को हमने सविस्तार देखा है।

पृष्ठभूमि में तत्कालीन परिस्थितियों पर पहुँचे समाज की विचारधाराओं का विवरण दिया गया है क्योंकि गोरखनाथ का समय स्वयं संदिग्ध है इसलिए उनके पूर्ववर्तियों का काल निश्चित करना इनके काल निर्णय के बिना नहीं हो सकता। अतः यह काम एक साथ किया गया है। गोरखनाथ के व्यक्तित्व में उनके स्थानों का विस्तृत विवरण नहीं दिया गया है क्योंकि आगे उनका सविस्तार वर्णन किया है। गोरखपुर के साथ गोरखनाथ का विशेष सम्बन्ध प्रकट होता है किन्तु फिर भी लोगों ने उन्हें भुला दिया है। उनके विषय में लोग गोरखधन्धा के अतिरिक्त बहुत कम जानते हैं। इसका कारण उनके विषय में प्राप्त सामग्री का अभाव है। कुछ ग्रन्थ जिनका उनसे सम्बन्ध जोड़ा जाता है वे निश्चयपूर्वक उन्हीं के नहीं कहे जा सकते। उनके संस्कृत ग्रन्थों में (1) अमनस्क (2) अमरौघ शासनम्, (3) अवधूत गीता (4) गोरक्ष कल्प (5) गोरक्ष कौमुदी (6) गोरक्ष गीता (7) गोरक्ष चिकित्सा (8) गोरक्ष पचय (9) गोरक्ष पद्धति (10) गोरक्ष शतक (11) गोरक्ष शास्त्र (12) गोरक्ष संहिता (13) चतुरशीत्यासन (14) ज्ञान प्रकाश शतक (15) ज्ञान शतक (16) ज्ञानामृत योग (17) नाडीज्ञान प्रदीपिका (18) महार्थ मंजरी (19) योग चिन्तामणि (20) योग मार्तंड (21) योग बीज

(22) मोक्षशास्त्र (23) योग सिद्धान्त पद्धति (24) विवेक मार्तंड (25) श्रीनाथ सूत्र (26) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति (27) हठयोग (28) हठसंहिता इत्यादि का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों में अधिकांश अप्राप्य हैं तथा सब उनके ही द्वारा रचित थे यह भी कहा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त उनकी हिन्दी रचनाओं का सम्पादन डा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित करवाया है। उसकी आलोचना हमने हिन्दी साहित्य प्रकरण में की है।

गोरखनाथ पर जार्ज वस्यू ब्रिग्स तथा डा मोहनसिंह ने अंग्रेजी में पुस्तकें लिखी हैं। अन्तिम पुस्तक अभी तक मेरे ज्ञान में पं हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'नाथ सम्प्रदाय' है जो मेरे पास हस्तलिखित रूप मे है। मोहनसिंह की पुस्तक प्रारम्भिक है किन्तु उसमें महत्त्वपूर्ण तथ्यों का प्रारम्भिक संकलन है। मोहनसिंह ने अधिकांशत नाथ सम्प्रदाय को हिन्दी रचनाओं से देखा है। ब्रिग्स की पुस्तक में तथ्यो की भरमार है। बहुत परिश्रम से लिखी गई है किन्तु उसका दृष्टिकोण स्पष्ट ही एक जिज्ञासु मात्र का है जिस पर बहुत कुछ अनुमान मात्र रह जाता है। उसका क्षेत्र काफी विस्तृत है। गोरखनाथी सम्प्रदाय मतभेद स्थान किंवदन्ती साहित्य इत्यादि काफी तथ्य संकलन है। पं हजारीप्रसाद ने नाथ-सम्प्रदाय को ऐतिहासिक तथा भारतीय धर्म साधना के दृष्टिकोण से देखा है और उनकी पुस्तक बहुत बडी विद्वत्ता की परिचायिका है।

इनके अतिरिक्त राहुल सांकृत्यायन की वज्रयानी सूची और योग परम्परा में प्राप्त किंवदन्तियाँ हैं। किन्तु इन सबके रहते हुए भी नाथ सम्प्रदाय पर जितना कम जाना जा सकता है यह इसी से ज्ञात होता है कि टेसीटरी के समय से पीताम्बरदत्त बडथ्वाल तक विशेष उन्नति नहीं हुई है। ऐसी परिस्थिति में विषय अत्यन्त कठिन हो जाता है।

विद्वानो ने गोरख को या तो हिन्दी के दृष्टिकोण से देखा है या फिर संस्कृत से। ऐसी कोई पुस्तक नही जिसमें दोनो दृष्टिकोणों को समान स्थान दिया गया है। गोरखनाथ वास्तव मे इस प्रकार बिखरे पडे हैं उनका कोई स्थिर सम्बद्ध रूप नहीं है। इस प्रकार कडी जोडने की ऐतिहासिक महत्त्व की यह आवश्यकता मेरा ध्येय रही है। जोडने के सत्य का यह अर्थ नही है कि तथ्यो के बाहर जाने का प्रयत्न किया गया हो। जब तक तथ्य अधिक प्राप्त नहीं होते तब तक विवशता है। गोरख का इतिहास मे क्या स्थान है यह प्रश्न नि:सन्देह एक कठिन काम है जो सौभाग्य से मुझे करना पड़ा है किन्तु जिसके योग्य सामर्थ्य होना एक व्यक्ति का नहीं वरन् अनेक उद्भट विद्वानों का कार्य है। मैंने यहाँ रेखा-चित्र देने का प्रयास किया है। यह इस विराट

देश के 500 वर्षों का मन्थन है तभी इतनी दुरूहता का सामना करना पड़ा है। गोरखनाथ का युग भारतीय इतिहास की एक कड़ी है जो यदि हजारों वर्षों का परिणाम है तो उसका प्रभाव भी अनेक शताब्दियों का इतिहास है।

नाथ प्रभाव को मैंने काफी महत्त्व दिया है। यह भारतीय इतिहास का वह भूला हुआ विषय है जिसके बिना इतिहास समझा ही नहीं जा सकता। गोरख एक संधिकाल के व्यक्ति थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों पक्षों में उनको जाँचने की आवश्यकता थी इसीसे दोनों पर सविस्तार प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

योगी दार्शनिक धर्मनेता पथ प्रवर्तक हिन्दी भाषा के तत्सम प्रधान-रूप के प्रथम ग्रहण करने वाले गोरखनाथ नामक व्यक्ति को साधारण नेताओं की भाँति सोचकर भारतीय इतिहासकारों ने कुछ भी नहीं पाया है। अब इसे गम्भीरता से देखने पर लगता है कि यह व्यक्तित्व कितना कठिन कितना युग प्रवर्तक और महान् था।

वह शक्ति का युग था। वुडराफ ने शक्ति के मातृ रूप में अनेक तत्वों का सम्पादन किया है। उसमें सम्प्रदाय की धार्मिकता घुली हुई है। अतः कुछ ऐतिहासिक ढंग से नहीं कहा जा सकता। फिर भी उनके कठिन प्रयत्नों से अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। माता शक्ति की उपस्थिति से उन्होंने देश-देशान्तरों की स्त्री-शक्ति-पूजा की विस्तृत तुलना की है —

"माता शक्ति मौपूलि देवता अनेक पयोधरा जिसका आवरण कभी नहीं हटता एफिसायसिस काली हेथोर सैविला दुर्गा त्रिपुर सुन्दरी प्रायोगिक माता प्तु की पत्नी तेफ जिसके द्वारा सृजन होता है अफ्रोडाइट अस्तरत जिसके उपवन कुंजों में नामोल्लेख के बेबिलोनिया की मिलिटा वीनस तारा मेक्सिको की इस हेलेनिक मोसिया पार्वती के समान विचरण करनेवाली अफ्रीका की कनम्बो रोमन जूनो बीनस विचार आदि की दीप्त स्वामिनी जिसका उत्सव अत्यन्त आनन्द से मनाया जाता था मिस्री अस्त असीरिया की माता मुस्कोव अनाय उत्तरी फ्रिजिया भूम प्रकृति सैमिती माया इस्तर देवताओं की वैदिक नीम माता कृष्णमी पुष्प महाभैरवी तथा अन्य ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माता शक्ति आयसिस काली हथोर सैविला दुर्गा त्रिपुर सुन्दरी प्रायोगिका मदर तेफ अस्तरत इत्यादि अनेक देवियाँ संसार के इतिहास में पूजी चुकी हैं। अधिकांश उन्हीं जातियों में स्त्री पूजा मिलती है जो आर्येतर थीं और जिनकी सभ्यता बहुत प्राचीन हो चुकी थी। यह मुझे एक बहुत बड़ी शक्ति दिखाई देती है।

स्त्री-पूजा समाज और राजनीति की एक विशेष अवस्था में प्रारम्भ ग्रहण

करती है। इसका उदाहरण अंग्रेजी साम्राज्य के विषय में एक अंग्रेज की ही उक्ति है।

विमलानन्द स्वामी के नाम से टीका लिखकर अंग्रेजी में अनुवाद करते हुए आर्थर एवलान ने एक स्थान पर लिखा है —

At the present time a measured use of wine flesh and so forth and a thorough respect for woman as for the Devata are particularly seen in the civilized society of the West. Satisfied at this, the Mahadevi, who is the queen of queens has granted to the people of the West the light of science and sovereignty over the whole world. पृ 23 कर्पूरादिस्तोत्र।

अर्थात् इस समय पश्चिम मे पंचमकार प्रयुक्त हैं। मद्य मांस तथा स्त्री का सम्मान देवताओं के समान होने से पश्चिम के सभ्य समाज से महादेवी अत्यन्त प्रसन्न हैं। इसीसे उन्होंने पश्चिम के लोगो को विज्ञान का आलोक और संसार पर अधिकार दिया है। हम यहाँ अधिकार के विषय मे बात करके महादेवी की कृपा के दूसरे पक्ष को नहीं दिखाना चाहते। स्थविर प्रगतिशील साम्राज्य को धर्मप्रबलता से देखने की यह प्रवृति हमारे आलोच्य काल की सबसे अधिक महत्व प्रगट करनेवाली अनुभूति है। याद रहे यह *अंग्रेजी साम्राज्य पतनोन्मुख था। हम उसे गिरते हुए देख चुके हैं।*

तब गोरखनाथ को संकुचित रूप से देख लेना सरल था। नहीं किया गया मे किया है। गोरखनाथ की वृहत्तर भारतीय साधना से तुलना करके उनको पहचानने का प्रयत्न नहीं किया गया था। मेरा विषय मात्र गोरखनाथ नहीं है। गोरखनाथ और उनका युग है। जिसे मैंने निर्णीत करते समय भारतीय मध्य युग का सचित्राभ कहा है। यहाँ इतिहासकारों की भाँति नाम गिनाने की चेष्टा नहीं की है। वरन भारतीय इतिहास की विशेषताओं पर विचार किया गया है। उस काल की अन्य विचारधाराओं मे तुलना वष्णव शैव बौद्ध जैन प्रभाव इस्लाम तथा उच्च और निम्न जातियों तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक धार्मिक सांस्कृतिक सामाजिक और दार्शनिक परिस्थितियाँ उनमें गोरख उनसे गोरख और भारत से सब इस व्यापक दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न है।

गोरख को शंकर के बराबर आसन पर देखकर विद्वानो से प्रार्थना है कि वे एकदम चौंक नहीं उठें क्योंकि तथ्यों ने इसी ओर मुझे पहुँचाया है। सबसे प्रधान तथ्य यह है कि गोरख जितने बड़े व्यक्ति और योगी थे उतने बड़े कवि न होने पर भी उनका हिन्दी साहित्य म एक अतुल महत्वपूर्ण स्थान है जो कभी भुलाया नहीं जा सकता। विस्मय है विद्वानों की दृष्टि उस ओर अभी तक

क्यों नहीं गई जबकि यह एक बहुत ही स्पष्ट बात है। गोरखनाथ का नाम कनफटा योगियों के साथ जुड़ा हुआ है। वे जिसे शिष्य बनाते थे उसके कान फाड़कर कुण्डल डाल देते थे। कबीर ने आगे इसका मजाक भी उड़ाया है जब यह योगीरूप कच्चे सिद्धों के नाम से गिना जाने लगा था। किन्तु कनफटा मूर्तियां गोरखनाथ से पूर्व काल में ही थीं। इससे यही अनुमान होता है कि गोरख ने इस प्रथा को अपने संप्रदाय में महत्त्व दिया या यही छोटा सम्प्रदाय एक प्रभावशाली व्यक्ति को प्राप्त करके बहुत प्रसिद्ध हो गया।

वैसे तो योगी घरबारी और गृहस्थ भी होते हैं। जो योगी कान नहीं फड़वाते वे औघड़ कहलाते हैं। योगियों की एक विशेष वेशभूषा है जिसका आगे वर्णन किया गया है। ब्रिग्स और हजारीप्रसाद ने इसपर सविस्तार लिखा है। पं सुधाकर द्विवेदी ने जायसी की पद्मावत का संपादन करते समय योगी वेष का वर्णन किया है और प्रत्येक योगी वेष की विशेषता का उल्लेख किया है। निःसंदेह यह सज्जा एक अत्यन्त रोचक और आकर्षक रूप है।

अब भी कनफटे योगी देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैले हुए हैं। अनेक जातियों पर उनका प्रभाव है। उनके अनेक स्थानों पर मठ हैं। यह सब पुस्तक में वर्णित है। नाथ संप्रदाय को सिद्ध मत सिद्ध मार्ग योग मार्ग अवधूत मत अवधूत संप्रदाय आदि के नाम से भी पुकारा जाता था। नाथ शब्द में 'ना' का अर्थ है अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है (भुवनत्रय को) स्थापित करना 'ना थ'। नाथ सम्प्रदाय के कनफटों को दर्शनी साधु भी कहा जाता। दर्शनियों में जो विलकुल नंगे रहते हैं वे मद्य और मांस पीते और खाते हैं। कान की मुद्रा से ही उन्हें यह नाम दिया गया है। यह मुद्रा धातु या हाथी दांत की होती है। सोना भी काम में आता है। मुद्राधारी 'कुण्डल' और 'दर्शन' दो नाम से ज्ञात हैं। दर्शन का सम्मान अधिक है। कुण्डल को पाविती भी कहते हैं।

नाथ सम्प्रदाय के विभिन्न योगियों ने विभिन्न मत चलाये हैं। कहा जाता है मत्स्येन्द्रनाथ ने चार सम्प्रदाय चलाये हैं—गोरखनाथी पंगल या भरजनया (रावल) मीननाथ सिद्धनोर पारसनाथ पूजा पंथिम दो जैन हैं। योगिसंप्रदाया विष्कृति के अनुसार गोरख के अनेक शिष्य थे जिन्होंने अपने सम्प्रदाय चलाये। जिन में चर्पट उल्लेखनीय हैं। गृहस्थ योगियों से वयनजीवी जातियों—ताँती जुलाहे मढ़रिये इत्यादि का अधिक सम्बन्ध पाया जाता है। योगियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों होते हैं। आजकल वे दुनियादारी के काम करते हुए भी पाये जाते हैं। अधिकांश स्थानों पर हिन्दू योगियों को नीच जाति समझते हैं। उनके हाथ का नहीं खाते-पीते। ब्रिग्स और हजारीप्रसाद ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है। हम आगे केवल इसका उल्लेख करेंगे क्योंकि मेरा

अनुमान है कि योगी संप्रदाय के विभिन्न भेद होते हुए भी मुख्य व्यक्ति गोरखनाथ हैं। अतः उन्हीं के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें आजाऐंगी।

गोरखनाथ स्वयं अनुगत ज्ञान मात्र प्राप्त करके संतोष कर लेनेवालों के विरुद्ध थे। वे साधना पथ पर चलनेवाले थे। वे उन क्रांतिकारियों में थे जिन्होंने ब्राह्मणवाद और सामंतवाद में मनुष्य की बराबरी का दावा किया था। आगे हम देखेंगे कि वह क्रांति किस प्रकार समाज में पराजित हो गई किन्तु अखाड़ों साधु और योगियों में पलती रही।

मतों और संप्रदायों की साधना के दृष्टिकोण से जाँच किये बिना वास्तव में अध्ययन उनके अनुसार पूर्ण नहीं है। हम तर्क करते हैं सब कुछ कहते-लिखते हैं गोरखनाथ इन सबसे अधिक दुरूह थे। वे बुद्धि को मानते हैं कि वह सर्वतोपरी है। भावना का कोई काम नहीं। किन्तु साधना को वे उससे भी बड़ा स्थान देते हैं। तब कहा जा सकता है कि अभी तक गोरखनाथ को ऊपर ऊपर से देख लिया गया है।

इतिहास का युग-विशेष इस प्रकार साधना से परिलिप्त था यह क्या कम आश्चर्य का विषय है। इस समय चीन का भी प्रभाव पड़ा था। तत्कालीन साधना में क्या हेय था क्या श्रेय इसका वास्तविक निर्धारण तब हो सकता है जब उसी साधना के दृष्टिकोण से उसे परखा जाय। यह विषय विद्वानों के लिए अत्यन्त रोचक और गंभीर सिद्ध हो सकता है। मैंने इसके आंतरिक और बाह्य स्वरूप से सामाजिक प्रयत्न को देखा है। कहाँ तक किससे ब्रह्मानंद होता था इसका कहीं भी अनुभव नहीं किया है। अतः व्यक्तिपक्ष से उसके हेय-श्रेय पर तनिक भी नमुना नहीं की है। केवल सामाजिक पक्ष से सापेक्ष दृष्टि से उसपर अपने विचार प्रकट किये हैं। प्राचीन साधना उत्कृष्ट ही थी या निकृष्ट ही यह हमारे आलोच्य विषय के अंतर्गत नहीं है। संभवतः ब्रह्मानंद प्राप्त करने वाला क्रम नहीं लिखता और लिखता भी तो वही जैसे कि उस युग से चलकर आज हमें प्राप्त हुए हैं। इसी रहस्य की भावना से प्रसित युग हमारा आलोच्य काल है जिसके सबसे बड़े नेता गोरखनाथ थे जिनका प्रभाव समझना अत्यंत कठिन काम है। पूरनभगत रसालू गूगा भरथरी गोपीचंद मैनावती मत्स्येन्द्र जालंधर के सम्बन्ध की अनेक किंवदंतियों को मैंने नहीं लिया केवल उनका ही उल्लेख किया है जिनकी अधिक आवश्यकता थी। उस काल में योगतंत्र वज्रयान कालचक्रयान शाक्त संप्रदाय भेद शैव मत के विभिन्न भेद कापालिक रसेश्वरमत त्रिपुर संप्रदाय दत्तात्रय सहजिया संप्रदाय इत्यादि का महत्त्व था इसीसे इनका उल्लेख किया गया है। यही वास्तव में उस काल का अंधेरा भाग है। चक्र नाड़ी पद्म प्राणायाम इत्यादि पारिभाषिक विस्तारों को समास्यरूप से ही देखा गया है क्योंकि यह अपने आपमें इतना महान् विषय

है जिसका कोई अंत नहीं। समस्त साधना इन्हीं पर तो केन्द्रित थी। गोरख इनसे सम्बद्ध होते हुए भी बृहत्तर भारतीय साधना के निकट क्यों थे यह आगे वर्णित है।

इस युग में बहुत कुछ ऐसा अद्भुत लगता है जिसे या तो साफ-साफ समझा नहीं जाता या फिर इस्लाम के सिर मढ़ दिया जाता है। पूर्ववर्त्तियों के अध्याय में मैंने उन कुछ 'क्रम विरोधों' का परिचय दिया है जिनके विषय में विद्वानों ने कुछ नहीं कहा है। इस कड़ी को छोड़ देना ठीक नहीं मालूम देता।

'दर्शन और योग' के अध्याय में मैंने पहले गोरखनाथ से पूर्व भाम सामाजिक व्यवस्था में स्वीकृत कुण्डलिनी-महत्त्व का परिचय दिया है। तदनन्तर ही नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित कुण्डलिनी का उल्लेख है। जहाँ तक वेदान्त सांख्य इत्यादि के परिचय का प्रश्न है मैंने केवल उसकी रूप रेखा दी है। मेरा विशेष जोर इस ओर रहा है कि उसका सामाजिक रूप समझा जाय और इसी में शंकर और रामानुज दोनों को लेकर उनकी गोरखनाथ के मत से तुलना की गई है।

'व्यक्तित्व' वाले अध्याय में दंत-कथाओं की भी प्रचुर सहायता ली गई है। वही तो प्राप्त परम्पराएँ हैं। गोरखनाथ ऐतिहासिक व्यक्तित्व थे इसके अतिरिक्त और कुछ भी विशेष नहीं मिलता और परम्पराओं में से कुछ भी छाँटकर निकाल लेना क्या सहज है?

नाथ संप्रदाय को भारतीय धार्मिक साधना की लम्बी यात्रा में एक छोटी मंजिल अथवा अंग मान लेने से यह आवश्यक है कि भूमिका में ही उन मुख्य तथ्यों को उपस्थित कर दिया जाय जिनको यथास्थान आगे तालिकाओं और सूचियों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। पुस्तक में ऐसी तीन सूची हैं।

इस देश में आर्यों के आने के पहले अनेक आर्येतर जातियाँ थीं। उनमें मुख्य विभाजन करने पर दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक नाग जाति का प्रभाव। दूसरा प्रायः अन्य सभी जातियों की धार्मिक साधना का प्रभाव। इस परिस्थिति में आर्य आए। अब इन तीन में परस्पर जो भेद था वह इतिहास निर्माण में अपना काम करने लगा।

सामाजिकता के क्षेत्र में आर्यों में मुख्य रूप से आनन्दवाद था। नागों में विनाशवाद का प्राधान्य मिलता है और अन्य आर्येतरों में दुःखवाद का प्रभुत्व। इस विभाजन का आधार मैंने प्रथम अध्याय में विवेचना का विषय बनाया है। लिंग की पूजा उस समय थी परन्तु आर्यों में वह मुख्य पराजय रूप में बनी रहे ता यना म स्त्रास्त्र मे मु र मार मापधरा मे गुरुष थे। ही शक्ति की उपासना भी परन्तु उन आर्यों का मुख्य नहीं था। यह भी स था भय

की स्वीकृति थी और उसी का अधिक प्राधान्य भी था। योग और तप प्रारम्भ में आर्यों में नहीं था। निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि यक्षों में यह था या नहीं परन्तु आर्येतरों में था इसमें अब कोई सन्देह नहीं है। प्रकृति की उपासना के क्षेत्र में भाव के लिए सरलता थी स्वाभाविकता थी और वह उससे एक मस्ती का भाव प्राप्त करता था। यक्षों में उद्दीपन का काम करती हुई यह प्रकृति वासना को जागृत करती थी और आर्येतरों में प्रकृति को रहस्य समझा जाता था। इस रहस्य में भय की छाया थी और उससे भूत आदि की भी प्रधानता थी। उस समय इन तीनों जाति-समूहों में अन्धविश्वास प्रचलित थे। सब कुछ देखकर आर्य विस्मय करता था। उसे अज्ञात का भय था। जिसे नहीं समझ पाते उसी से हमें एक अनजाना भय होता है। यक्षों में जादू-टोना भी था सिद्धि के भी प्रबल चलते थे। परन्तु आर्येतरों में यह अधिक उग्र रूप में था। वह भय सर्वदा एक अज्ञात रहस्य की ओर आकर्षित करने वाला था। और यहीं से अपने में 'अपौरुषेय शक्ति' भरने के लिए जो उसने चमत्कारों की सिद्धि का प्रयत्न किया वही आगे चलकर तन्त्र के रूप में प्रकट हुआ।

इस देश में जब तीनों जाति-समूह मिले और इनका एक-दूसरे के निकट ही रहना हुआ तब सम्मिश्रण होना एक पर दूसरे का प्रभाव पड़ना आवश्यक था। और यही हुआ भी परन्तु रहस्य की खोज नहीं रुकी। एक ने दूसरे से लिया और दिया भी। परन्तु धार्मिक साधना की केवल आत्मा और मन तक ही सीमा होती तब तो और बात थी। जातियों का अपना रक्त गर्व एक-दूसरे पर शासन करने की प्रवृत्ति अपने विश्वासों को सर्वश्रेष्ठ समझने का अभिमान इत्यादि अनेक ऐसे तथ्य भी निरन्तर काम करते रहते हैं जो सामाजिक प्रभाव डालते हैं और वे प्रभाव अपने लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि खोजने के लिए धर्म की आड़ लेते हैं।

जब आर्य प्रभाव भारत में नहीं था तब यहां के निवासियों के पारस्परिक भेद मुखर थे और उनका द्वन्द्व चलता था इसका आभास मिलता है। प्रथम अध्याय में इसकी ओर इंगित किया गया है। परन्तु आर्यों के आने के बाद यह समाज में दूसरे ही ढंग का द्वन्द्व उपस्थित हुआ।

आर्यों ने अपनी एक अलग सामाजिक व्यवस्था बनाई। स्वाभाविक ही हुआ कि सब ने उसे स्वीकार नहीं किया। आर्य जातियां विजयिनी थीं उनको इसका सुयोग मिला कि वे अपने को औरों पर हावी करने का प्रयत्न करतीं। इसका सामाजिक रूप यह रहा कि यद्यपि आर्यों की भाषा पर यहां की भाषाओं का प्रभाव पड़ा परन्तु अन्ततोगत्वा आर्य भाषा सब पर छा गई। रीति-रिवाज रहन-सहन सब में हारे हुए लोगों का भी प्रभाव पड़ा।

परन्तु स्वयं आर्य-सामाजिक व्यवस्था में भी आन्तरिक विरोध पड़ गए थे जैसे पहले आर्येतरों में थे। अब उन सब का एक सिरे से विकास हुआ।

आर्य-सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण धर्म का प्रतीक आस्तिकवाद है। इसमें हमें ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों रूप प्राप्त हैं। वेद उपनिषद् शैव वैष्णव सभी इसमें मिलते हैं। कितनी जातियों के मिलन से यह रूप बने कितना आयाम प्रदान हुआ उसे जानना अत्यन्त कठिन है। किस प्रकार इस निरन्तर विकास मे यह प्रयत्न कि अपने को औरों से कुछ सामंजस्य स्थापित करके रखा जाय चलता रहा इतिहास का एक रोचक विषय है। दूसरी ओर क्षत्रिय और वैश्यों की अधिकार तृष्णा बढ़ रही थी। उपनिषद् काल में यह खूब बढ़ी थी पर सांख्य में कुछ प्रकट हुई और 'नास्तिकवाद' (ब्राह्मण के शब्दों में) बन बौद्ध जैन आदि संप्रदायों के रूप में फूट निकली। इन सब के आगे चलकर अनेक भेद हुए। इस सब को मैंने आर्य-सामाजिक व्यवस्था में इसलिए रखा है कि यह परस्पर चलने वाला संघर्ष वस्तुतः इतना व्यापक नहीं था जितना समझा जाता है। इतिहास ही इसका साक्षी है। उधर आर्य-सामाजिक व्यवस्था के बाहर भी आस्तिकवाद और नास्तिकवाद का परस्पर संघर्ष चल रहा था और इनका भी आर्य-सामाजिक व्यवस्था पर बराबर प्रभाव पड़ता जा रहा था। व्रात्य अघोर, काला मुख कापालिक तथा दूसरी ओर लोकायत इत्यादि थे। इनमें आस्तिक नास्तिक को अधर्म का स्रोत समझते थे। धीरे धीरे इनके भी अनेक भेद हो गए।

ईस्वी ७वीं शताब्दी से हमारे सामने एक नया रूप उपस्थित होता है। तन्त्र शक्ति पूजा योग और विलासवाद का प्रमुख उस समय सब पर छा गया। यह नया वस्तु थी ऐसा क्यों हुआ इसका आगे विस्तार से विवेचन किया गया है। इतना अब स्पष्ट हुआ कि आर्य-सामाजिक व्यवस्था में स्थित सम्प्रदाय तथा दूसरी ओर उससे बाहर स्थित सम्प्रदाय सभी उससे प्रभावित हुए। इस बीच में बौद्धमत अपने नए रूपों वज्रयान और काल-चक्रयान में भी इसी से प्रभावित हो रहा था।

ब्राह्मण-द्वेष बहुत बढ़ गया था। दक्षिण से ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हो रहा था। उस समय भारत में इस्लाम की छाया गिरने लगी थी। बहुधा प्रश्न होता है कि जब भारत में अनेक जातियाँ आईं और मिल गईं तब इस्लाम ही क्यों अलग रह गया। इसका आगे विवेचन किया गया है। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है यह जानना कि इतने विविध वैभिन्यों के देश में जहाँ नाना विश्वास तथा रीति-रिवाज थे कैसे सब जातियों ने इस्लाम के प्रति एक ही रुख अख्तियार किया? बड़ी जाति हो या छोटी सब ने ही इस्लाम को कैसे छेक दिया?

यहीं गोरखनाथ को समझना आवश्यक है। महायान तो शाक्त उपासना थी जिसने आर्य-सामाजिक व्यवस्था के भीतर तथा बाहर बौद्धों पर प्रभाव डाला। इनके अतिरिक्त और मिले-जुले जो लोकायत और गाणपत्य चीनाचार आदि संप्रदाय थे वे भी प्रभावित हुए। शिव तो आर्य-सामाजिक व्यवस्था के भीतर और बाहर दोनों जगह स्वीकृत थे निस्सन्देह अपने भिन्न रूपों में। बौद्धों में अवलोकितेश्वर की उपासना थी।

आर्य चिन्तन का काश्मीर शिव संप्रदाय लोकायत और गाणपत्य चीनाचार तथा वामों शिव और अवलोकितेश्वर और तत्कालीन कौल मार्ग कापालिक मत सब ऐसे परस्पर मिले हुए हैं कि उनको अलग-अलग कर देना सहज नहीं है।

कुण्डलिनी योग चक्र पद्म नाड़ी ज्ञान बलि तंत्र देवियों की उपासना शक्ति पूजा श्मशान का महत्त्व सिद्धि के प्रयत्न और योनि पूजा का प्राधान्य मिलता है। स्त्री को अपनी साधना के क्षेत्र से बाहर रखने वाले भी कुछ मत अवश्य थे। इसी क्रम में जालंधर मिलते हैं। मार्कण्डेय का हठयोग गोरखनाथ के हठयोग का पूर्ववर्ती है पर उसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है तभी मैंने उसे अलग ही रखा है।

और यहाँ आकर दो मुख्य विभाजन हुए। सब का सार लेकर गोरखनाथ उठा और उधर योग की प्राचीन धारा जो आर्यों में पूर्णरूपेण स्वीकृत थी वह पातंजल योग दर्शन उसके सामने खड़ा था।

ब्राह्मण समाज पर छाने लगा था। अब्राह्मण समाज पराजित होता जाता था। ब्राह्मण समाज के नियम को दृढ़ करता जाता था। उस समय विजयी इस्लाम उत्तर से घुसा और दक्षिण से भक्ति का उदय हुआ जिसने नए रूपों में ब्राह्मणवाद को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया।

यह एक महान् युग था। इस प्राचीन देश की पुरानी व्यवस्थाएँ जो गल चुकी थीं फिर ठोस रूप धारण करने के भीम प्रयत्न में लग गईं।

इस हलचल के युग में भक्ति योग हठ निर्गुणवाद प्रेम सब को लेकर यहाँ की निम्न जातियों अर्थात् वर्गों ने मुक्त होने का प्रयत्न किया। फकीरी मुसलमान अपने ढंग से अपना प्रचार कर रहे थे।

उधर से बौद्ध प्रभाव स्थित तथा आर्य-सामाजिक व्यवस्था के बाहर स्थित संप्रदाय जो किसी भी प्रकार ब्राह्मण व्यवस्था को स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे इस्लाम को मुक्ति का मार्ग समझकर सामूहिक रूप से दीक्षा ले-लेकर मुसलमान हो गए। और दूसरी ओर भक्ति की आड़ में जो शद्रुभिघर्ते ब्राह्मण ने निम्नवर्गों को दी उनका प्रभाव पड़ने लगा। ब्राह्मण धर्म का श्रेष्ठतम आधार सामंतवाद था इस पर आगे विस्तारपूर्वक विचार किया

गया है। और इस समय तुलसीदास तथा अन्य भक्तों के दर्शन होते हैं जो वास्तव में उच्च वर्गीय हिन्दू जातियों की विजय के प्रतीक हैं। ये वर्ग मुसलमानों से मुके पर इतनी अजीब तरह से कि उसको समाज से अलग कर दिया। अपनी निम्न जातियों को मामूली सहूलियतें देकर दबाए रखा।

और समाज में यह नया द्वन्द्व चला। एक ओर सब हिंदू थे। दूसरी ओर शासक होकर भी इस्लाम हिन्दू समाज से बहिष्कृत था इसमें काफी हाथ इस्लाम की असहिष्णुता का था। यहाँ की व्यवस्था में बाहर से आई अनेक जातियाँ मिलकर रहती थीं। पर उसका एक मूल्य था। उन्हें ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ मानना आवश्यक था। इस्लाम ने इसे स्वीकार नहीं किया और इसलिए हिन्दू और मुसलमान अपने को अलग-अलग समझते रहे। यह द्वन्द्व समस्त रीतिकाल भी नहीं ढँक सका क्योंकि उस समय तो उच्चवर्गीय समाज हिन्दू हो या मुसलमान उसके लिए अलग-अलग रहना ही फायदेमन्द था। ब्राह्मण झुकता तो उसका गौरव नष्ट हो जाता और इस्लाम झुकता तो इस विराट् समुद्र में लहर की तरह खो जाता। रीतिकाल में फिर विलासवाद छाया। इस समय हमें सब ओर ह्रास के चिह्न दिखाई देते हैं—काव्य हो चित्रकला हो अथवा सामाजिक जीवन हो। जैसे सब कुछ घूम रहा है धीरे धीरे डूबता चला जा रहा है। विकास के चिह्न फिर 1857 ई० से प्रारंभ होते हैं। भारतीय इतिहास के प्राचीनकाल और मध्यकाल के बीच का संधियुग कितना महत्त्वपूर्ण है इसका यहाँ हमें कुछ आभास मिलता है। यह युग व्यक्तियों का नहीं राजाओं का नहीं वरन् उन सामन्तों के आवरण में छिपी सामाजिक शक्तियों का है जो अपने अधिकारों के लिए आवश्यक होकर लड़ रही थी। यह युग उस युग की पृष्ठभूमि है जिसमें भारतीय उच्चवर्गों को निम्नवर्गीय समाज को पराजित कर देने में सफलता मिली। यहीं उस वृक्ष के बीज मिलते हैं जो आगे चलकर बड़ा हुआ और समस्त वर्ग संघर्षों को ब्राह्मण विजेता ने राजन्यवर्ग से मिलकर जातिगत अर्थात् देशी और विदेशी जाति के संघर्ष में बदल दिया। विदेशी स्वयं इसके लिए कितना उत्तरदायी था यह हमारे आलोचना काल के बाहर का विषय है।

अन्त में मैं शांतिनिकेतन के गुरुजनों का आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने मुझे अपने ज्ञानकोषों से लाभ उठाने की आज्ञा दे दी। पं० हजारीप्रसाद ने न केवल विश्वभारती तथा हिन्दीभवन की सहायता प्रदान की वरन् अपने गुरुतर ज्ञान से जो मुझे आलोक दिया वह न होता तो क्या मैं अध्ययन इतना बड़ा साहस करता। इससे अधिक मैं क्या लिख सकता हूँ, उनकी नाथसम्प्रदाय नामक पुस्तक हस्तलिखित रूप में मेरे उपयोग में आ रही है।

श्री बनारसीदास जैन एम० ए० पी० एच० डी० (लंदन) की कृपा से मुझे

जैन मंदिर पट्टी से चौरंगीनाथ की प्राणसंकली प्राप्त हुई जिसके लिए उन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त अनेक पुस्तकालयों विद्वानों तथा कुछ कनफटे योगियों ने जो मुझे सहायता दी है मेरे काम में रुचिपूर्वक हाथ बँटाया है उसे मैं क्या कहूँ। शिव-डमरू से प्रतिध्वनित शब्दों को पाणिनि की भाँति सूत्रों में बाँध सकूँ इतनी सामर्थ्य भला मुझमें कहाँ।

प्रो हरिहरनाथ टंडन को धन्यवाद देकर मैं उनके गुरुत्व को घटाना नहीं चाहता।

पुस्तक में सम्मान सूचक 'जी' शब्दों का अभाव मिलेगा यह असम्मान की प्रवृत्ति नहीं। मुझे ज्ञान के क्षेत्र में कालिदासजी के स्थान पर कालिदास अधिक सम्मानित लगता है।

गोरखनाथ जो जीव के विषय में कह गए हैं वह उनके ऊपर लिखने वाले के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। तदैव मैं उनके वे शब्द यहाँ उद्धृत करके अपनी सीमाओं का उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ।

राति गई अधि राति गई बालक एक पुकारे
है कोई नगर में सूरा बालक का दुख निवारे।
दिसटि पड़ैते सारी कीमति कीमति सबद उचारै
नाथ कहै अगोचर वाणी ताका वार न पारे॥

—गोरखबानी पृष्ठ 80

—रांगेय राघव

क्रम

पूर्ववर्ती

वर्तमान की परिस्थिति । नाथ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि गोरख के पूर्ववर्ती । गुरु परम्पराएँ । परम्पराओं पर विचार । किंवदन्तियों और दंतकथाओं की परीक्षा । मत्स्येन्द्र गोरखनाथ जालंधरनाथ चर्पटनाथ नकुलीश मन्मनाथ नाथपथ अन्यविध गोरख की ऐतिहासिकता पूना । मत्स्यघ्नी जाति नेपाल कथा रसालू अन्य निकट संबंधित व्यक्ति गोपीचन्द भर्तृहरि, चौरंगीनाथ शंकर, गोरख का समय रामानुज पूर्ववर्तियों का उत्तरी भारत तथा दाक्षिणात्य में प्रभाव सम्प्रदाय की रूप-रेखा अन्तिम प्रभाव ।

वज्रयान की परिणति

(भिक्षु) एक ओर योग से अपनी मानसिक शक्ति को विकसित करने लगे उधर भक्तों में श्रद्धा बढ़ाने (वे) नाना हठ नाटक क्रियाओं तथा तंत्र-मंत्र की वृद्धि के साथ-साथ सहस्रों नये देवी-देवताओं की सृष्टि करने लगे। इनसे भी सहस्रों वर्ष पूर्व मिस्र असुर, यवन आदि देशों में हम भैरवी चक्रों का प्रचार देखते हैं। इन्होंने बुद्ध के नाम पर नये साधनों के साथ इन बातों को पैदा किया।

इसके साथ ही ध्यान देने योग्य है कि शूद्र भी सांख्य योग में द्विज मार्गों की भाँति समान अधिकारी मान लिये गए थे। अछूत भी स्वीकृत थे।

नाथ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि गोरखनाथ के पूर्ववर्ती

नाथ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि में जहाँ एक ओर यह था दूसरी ओर शाक्त मत था तथा शिव के अनेक मत भी थे। झालरापाटन की गुफाओं की लकुलीश की मूर्ति सातवीं शताब्दी की निर्धारित की गई है। लिंग तथा कूर्म पुराणों में लकुलीश का शिव के अवतारों में नाम गिनाया गया है।

योग की इस पृष्ठभूमि पर भारत में अनेक प्रकार के सम्प्रदाय फूट निकले थे। जब सामाजिक धर्म से मन का संतोष होना बन्द हो चुका था व्यक्ति ने अपने लिए नये साधनों की खोज प्रारम्भ कर दी थी। इसमें यदि कहीं सामंजस्य का उत्थान दिखाई देता है तो दूसरी ओर अलग होकर अपने-आपको और भी दुरूह कर देने का। गोरखपंथियों के विषय में दुरूहता का आक्षेप लगाया जाता है।

गुरु परम्पराएँ

अनेक ग्रन्थों में इन सिद्धों का विवरण प्राप्त होता है। यह विवरण सदैव ही सुलझे हुए नहीं मिलते। वरन् कहीं-कहीं इनका परिणाम इसके बिलकुल विपरीत दिखाई देता है। पहले परम्पराओं को देखा जाए। हठयोग प्रदीपिका में प्रधान सिद्धों के नाम इस प्रकार दिये हुए हैं —आदिनाथ मत्स्येन्द्र शाबर, आनन्द भैरव चौरंगी मीन गोरक्ष विरूपाक्ष बिलेशय मन्थान भैरव इत्यादि——।

---

1 पुरातन निबन्धावली, राहुल सांकृत्यायन।

2 श्री आदिनाथ मत्स्येन्द्र शाबरानन्द भैरवाः।
चौरंगी मीन गोरक्ष विरूपाक्ष बिलेशयाः।।

मत्स्येन्द्र का नाम यहाँ काफी प्रारम्भ में ही आ जाता है किन्तु मीन नाम यहाँ अलग दिया हुआ है। शिवभक्ति केसरी के शिष्य मासुनाथ ने सम्प्रदाय परम्परा पर चौदह श्लोक दिये हैं छह का अर्थ इस प्रकार है—1 प्रथम में आदिनाथ को नमस्कार, 2. निरालम्ब देश में अनुपम राजा मत्स्येन्द्र को 3. दीनों के उद्धार के लिए दौड़ते-फिरते गोरखनाथ " 4. अनाहत शिंगी नादों मुद्रा जिनसे निकलती हैं ऐसे गैनीनाथ को 5 निवृत्तिनाथ को 6 ज्ञाननाथ को।

गोरखपंथियों के मत से 9 नाथ हैं—1 एकनाथ 2. आदिनाथ 3. मत्स्येन्द्रनाथ 4. उदयनाथ 5 दंडनाथ 6. सत्यनाथ 7 सन्तोषनाथ 8. कूर्मनाथ 9 जालंधरनाथ। सुधाकर द्विवेदी द्वारा लिखित इस नाथ परम्परा में गोरखनाथ का कोई जिक्र नहीं है। मत्स्येन्द्रनाथ वही हैं जो नेपाल में हुए हैं और संस्कृत में जिन्हें मत्स्येन्द्रनाथ कहते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ ज्वालेन्द्रनाथ कारिणपानाथ गहनिनाथ चर्पटनाथ रेवननाथ नागनाथ भर्तनाथ गोपीचन्द नाथ—ये दस योगिसम्प्रदायाविष्कृति के अनुसार सम्प्रदाय के मूल पुरुष माने जाते हैं। इनके शिष्य-प्रशिष्य 84 सिद्ध हुए। द्वापर के अन्त में ईश्वर-विरोध हो गया तब समय को नाश की ओर जाते हुए देखकर धार्मिक जनों ने प्रार्थना की। महादेव ने नारद को बदरिकाश्रम जाकर नवनारायण को योग-मार्ग का द्वार उद्घोष करने का आदेश देने को भेजा। नवनारायण पद मरतादि.... ऋषभ राजा के पुत्रों से नारद ने जाकर संवाद कह सुनाया। कविनारायण करभाजननारायण अंतरिक्षनारायण प्रबुद्धनारायण आविर्होत्रनारायण पिप्पलायननारायण चमसनारायण हरिनारायण द्रमिलनारायण—ये विरक्त ब्रह्मनिष्ठ पुरुष थे। ये सब जाकर विष्णु से मिले उन्हें लेकर शिव के पास गए। शिव ने कहा इनको चाहिए कि जहाँ-तहाँ भारत में अवतार धारण कर संसारानलतप्त हृदय मुमुक्षुजनों को उद्धृत करें। हम भी जिसमें हमारा भेद जानना अनुचित होगा फिर गोरखनाथ नाम का व्यक्ति प्रकट करेंगे इसमें 'फिर' शब्द का क्या अर्थ है यह स्पष्ट नहीं होता। इस प्रकार पृथ्वी पर ये

मन्थानो भैरवो योगी सिद्धिर्बुद्धश्च कन्थडिः ।
कोरण्टकः सुरानन्दः सिद्धपादश्च चर्पटिः ॥
कानेरी पूज्यपादश्च नित्यनाथो निरञ्जनः ।
कपाली बिन्दुनाथश्च काकचण्डीश्वराह्वयः ॥
अल्लामः प्रभुदेवश्च घोडाचोली च टिण्टिणिः ।
भानुकी नारदेवश्च खण्डः कापालिकस्तथा ॥
इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः ।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते ॥

—हठयोगप्रदीपिका उपदेश 1 श्लोक 5-9।

अवतार हुए और कविनारायण स्वयं मत्स्येन्द्रनाथ हुए और उन्होंने शिव से दीक्षा ली। स्वयं शिव गोरक्षनाथ हुए और मत्स्येन्द्र से दीक्षा ली। करभाजन नारायण स्वयं जालंधरनाथ हुए और शिव से दीक्षा ली। यहाँ स्पष्ट नहीं मिलता है। प्रबुद्धनारायण कारिणपानाथ हुए, जिन्होंने ज्वालेन्द्रनाथ से दीक्षा ली। शायद कण्हपा या कृष्णाचार्य के लिए योगी चन्द्रनाथ में कारिणपा का प्रयोग किया है क्योंकि कारिणपानाथ का उल्लेख स्पष्ट नहीं होता। पिप्पलायननारायण चर्पटनाथ हुए और उन्होंने मत्स्येन्द्र से दीक्षा ली। चमसनारायण जो रेवननाथ हुए उन्हें भी मत्स्येन्द्र से ही दीक्षा दी। हरिनारायण भर्तृ नाथ हुए, गोरक्षनाथ ने उन्हें दीक्षा दी। द्रमिलनारायण गोपीचन्द्रनाथ हुए जिन्हें ज्वालेन्द्रनाथ ने दीक्षा दी। इनके अतिरिक्त एक नागनाथ का भी उल्लेख है जिन्हें सम्भवतः गोरक्ष ने ही दीक्षा दी किन्तु उनपर और कोई प्रकाश नहीं डाला गया। धर्म मंगल में मीननाथ गोरक्षनाथ हाडिफा तथा कानूपा सिद्ध हैं हाडी एक डोम था।

शाबरी परम्परा में आध्यात्मिक परम्परा इस प्रकार है —नागार्जुन शबर, इन्द्रभूति तिलोपा नारोपा नागार्जुन शबर, लुइपा जालंधरी कृष्ण चर्पटी लुइपा दारिकपा तीलोपा विरुप मत्स्येन्द्र शबर चौरंगी मीन तथा गोरक्ष।

हठयोग परम्परा के अनुसार विरुपाक्ष चर्पटी गुरु, चर्पटी कुक्कुरी मीन गुरु, नागार्जुन शबर, गुरु, चर्पटी के नाम गिनाये जाते हैं।

तिब्बती परम्परा[1] के अनुसार निम्नलिखित नाम गिनाये गए हैं — जालंधरी कृष्ण गुह्य (?) विजयपा (?) तिलोपा तथा नारोपा। गोरक्षोपनिषद् के अनुसार महानन्द देवता ब्रह्मा ज्ञान किया शिव ब्रह्माण्ड अपभ्रंश आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ उनका पुत्र उदयनाथ। दण्डनाथ सत्यनाथ सन्तोषनाथ कर्मनाथ अकमाजि गोरक्षनाथ गिनाये गये हैं।[2] गुरुओं की तीन परम्परा हैं।[3] दिव्यौघ सिद्धौघ तथा मानवौघ। प्रायः प्रत्येक नाम आनन्दनाथ से अन्त होता

1 कल्पद्रुम तंत्र।

2. आदौ देव महानन्दो निर्ममे देवता परं,
तन्दर्शिनी [illegible] ब्रह्मा ज्ञानं तथा शिव
ततो [illegible] [illegible] शिं [illegible] कुलकुल
[illegible] मारोष [illegible] [illegible]
एवं [illegible] आदिनाथ- मत्स्येन्द्रनाथ इत्यादि तथ गोरक्षनाथः [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]
हुआ।

3. महार्णवार्थ तंत्र।

वृषभध्वज दिव्यौघ हैं। वशिष्ठ कर्मनाथ मीननाथ महेश्वर, हरिनाथ सिद्धौघ हैं। ताराबती भानुमती पद्मा विद्या महेश्वरी सुखानन्द परानन्द पारिजात कुबेरेश्वर, विरूपाक्ष केसरी मानवौघ हैं। स्त्रियों के नाम के अन्त में देवी जोड़ देना है।

षोडषी[1] गुरु क्रम में आनन्दनाथदेव पद्मप्रकाशक परशिवदेव पराशक्ति कौलेश्वर शक्तिदेव कुबेरनाथ कामुक दिव्यौघ हैं। भीमवीर भैरव समय देवसहज सिद्धौघ हैं। गणेश विष्णु, विमल सहज भुवन मीन सुप्रिय मान मौघ हैं। दुर्गापुरुषों में परमात्मा परानन्द परमेष्ठी महादेव कृष्ण काम कलानाथ दिव्यौघ हैं। इनके नाम का अन्त भैरव से होगा। नारद काश्यप शम्भु, भार्गव कुल कौशिक ये सिद्धौघ प्रसिद्ध हैं। दत्ताचार्य (श्रमाचार्य पद्मनाभ कुमारीश सर्वेश्वर यमानन्द, प्रकाशक हरिशर्मा विष्णुशर्मा दत्तात्रेय प्रियंवद बहुला मालिनीदेवी धर्मनाथ कहलाते हैं। इन नामों में बहुत-से नाम आगे भी मिलेंगे और प्रायः उनमें अधिक भेद नहीं है। घूम-फिरकर एक-से ही नाम बार-बार मिलते हैं। स्त्रियों का गुरु होना विशेष महत्वपूर्ण है।

डा. बागची[2] ने कौलज्ञान की सिद्ध तथा गुरु पंक्ति पर विस्तारपूर्वक विचार करके यह बताया है कि यद्यपि वे आज पहचाने नहीं जा सकते तथापि निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं।

---

1 श्री षोडश्या गुरु क्रमम् ।
आनन्दनाथ देवश्च पद्मप्रकाशकस्तथा ॥
ततः परशिवो देवः पराशक्तिस्ततः परः ।
कौलेश्वरः शक्तिदेवः कुबेरानन्द कामुकः ॥
दिव्यौघान् कथयिष्यामि भीमवीरश्च भैरवः ।
समयो देवसहजो मानवौघान् ॥
गणेशो विष्णु विमलो सहजो भुवनान्तथा ।
मीनश्च सुप्रियः पश्चात् कथितं मानवक्रमात् ॥ —कौलिका पुराण।

* परमात्मा परानन्द परमेष्ठी महेश्वर ।
कृष्णः काम कलानाथो दिव्यौघा भैरवान्तिक ॥
नारद काश्यपः शम्भुर्भार्गव कुलकौशिक ॥
एते च महादेव सिद्धौघा परिकीर्तिता ।
दत्ताचार्य श्रमाचार्य पद्मनाभ भास्कर ।
कुमारीशः सर्वेशश्च यमानन्द प्रकाशक ।
हरिशर्मा विष्णुशर्मा, दत्तात्रेय प्रियंवदः
रम्भा मालिनी देवी धर्मनाथ प्रकीर्तित ।
—दुर्गा मत शील कुलसर्वोदय प्रथम खंड।

2. कौलज्ञान निर्णय पृष्ठ 69।

कुछ सिद्धों की क्षेत्रों में पूजा होती थी। जैसे करवीर, महाकाल देवीकोट्टम वाराणसी प्रयाग चरित्र एकाम्र अट्टहास और जयन्ती कौलगिरिपादक कसमनाद, नागाद, हरसिद्धाद, कन्धारी मंगलाद, सिद्धाद, बलाद, शिवाद, इवाद, माद, विराद, त्रिपुरनाद और वराहृस्थाद।

ये सिद्ध जिनकी कामाख्या पूर्णगिरि, जोडियाग तथा अर्बुद-जैसे पीठों में पूजा होती थी—महालक्ष्मादपाद कुसुमानंगाद, बुद्धाद, प्रलम्बाद, पुलिन्दाद, धवराद, कृष्णाद, जयसाद, हिडिम्बाद, माहूमाद[1] ।

पुराने सिद्ध मुण्डिपाद चपटार, सूर्य भूति भीम व्याघ्र हरिरिद पंचशिखी कोमल सम्भोवर।

भैरव ने कहा है कि मत्स्येन्द्र उन्हीं का निर्गत स्वरूप है अतः इस सम्बन्ध में इन्हीं स्वरूपों का नाम लिया गया है जिनका योगिनीकौल से सम्बन्ध है। विरूपाद, विविध स्रोत मृ प भट्ट नीलकंठ तथा रुद्र वृक्ष और नाम हैं जो माने जा जाएँगे।

कामाख्या गुह्य सिद्धि में भी गुरुओं के नाम दिये हुए हैं। श्री श्रीकण्ठदेव श्री खगीशनाथ इत्यादि। और भी योगननाथ धर्मनाथ मार्तण्डनाथ मच्छेन्द्रनाथ उग्रनाथ कुलानन्दनाथ कुंडलानन्दनाथ ब्रह्मानन्दनाथ चन्द्रानन्दनाथ किन्तु यहाँ गोरख का नाम नहीं है। इसके अतिरिक्त एक और सूची में यह नाम हैं—किरणानन्दनाथ श्री गजवेणीनाथ श्री संकानन्दनाथ श्री पद्मानन्दनाथ श्री मत्स्येन्द्रनाथ श्री मायाप्रभावदेव श्री व्योमानन्दनाथ श्रीमधुप्रबोधदेव इत्यादि।

ऊपर विस्मौल पंक्ति में भैरव का नाम आ चुका है। यहाँ भैरव और बेताल की उत्पत्ति के विषय में जान लेना उचित है। शिव के गौरी द्वारा दो पुत्र हुए। जब गौरी राजा चन्द्रशेखर की स्त्री रानी तारामती के शरीर में घुस गई। इन दो पुत्रों में एक का नाम भैरव हुआ। दूसरे का बेताल। बेताल का मुख बन्दर जैसा था। शिव का भयानक स्वरूप भैरव जब कुत्तों को वाहन बनाकर चलाता है तब वह बटुक कहलाता है। दत्तात्रेय के साथ भी कुत्ते रहने की कल्पना पुराण में मिलती है। इसके अतिरिक्त भी भैरव के अनेक अन्य स्वरूप हैं जैसे कालभैरव नकुलेश्वरभैरव। नकुल शब्द शिव के नकुलीश सम्प्रदाय से मिलता है। भैरव के अन्य रूप हैं असितांग चंड कपाली क्रोध भीषण उन्मत्त रुरु संहारी।

शाबर तन्त्र में 24 कापालिक 12 गुरु तथा 12 शिष्यों के नाम दिये हैं।

---

1. कालिका पुराण अध्याय 14।
2. नाथमिलोक ए, जार्ज ब्रिग्स।

कुछ शिष्य प्रसिद्ध नाथ तथा सिद्ध हैं।[1] गुरु—आदिनाथ अनादिनाथ कालनाथ अतिकालनाथ करालनाथ विकरालनाथ महाकालनाथ कालभैरवनाथ बटुकनाथ भूतनाथ वीरनाथ श्रीकंठनाथ। गुरुओं में प्रायः सभी नाम शिव के ही हैं। शिष्यों में नागार्जुन जड़भरत हरिश्चन्द्र सत्यनाथ भीमनाथ गोरक्षनाथ चर्पटनाथ मद्रूपनाथ वैराग्यनाथ कन्थाधारी जालन्धर तथा मलयार्जुन का उल्लेख है।

'चौरगान भी दोहा' में 84 सिद्धों का वर्णन है। मीननाथ प्रथम हैं। दूसरे गोरक्षनाथ तीसरे चौरंगीनाथ छठे हालिपा (हाडिपा) तेरहवें कच्छ तथा उन्नीसवें जालन्धर हैं।

भास्करराय का मत अन्य तन्त्रों से भिन्न है। सभी नाम यहाँ भी आनन्द नाथ जुड़कर समाप्त होते हैं। दिव्यौघ में ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ व्योमकेश नील कंठ वृषभध्वज तथा सिद्धौघ में वसिष्ठ, मीननाथ हरिनाथ कुलेश्वर विरूपाक्ष महेश्वर, शुक्र तथा पारिजात हैं।

कौलावली तन्त्र में 12 गुरुओं के नाम हैं: विमल कृष्ण भीमसेन मीन गोरक्ष भोजदेव मूलदेव रतिदेव विघ्नेश्वर, हुताशन समरानन्द सन्तोष।[2] यह सब मानवौघ हैं। नेपाली परम्परा से प्रकट होता है कि आगम तन्त्रों को नवनाथों ने संसार के सम्मुख प्रकट किया था जो यह थे—प्रकाश विमर्श आनन्द ज्ञान सत्य (?) स्वभा (?) प्रतिभा तथा सुभग। नारद परिव्राजक उपनिषद् में अवधूत गोरक्ष का उल्लेख है जिनके पूर्ववर्ती अनेक हुए थे। वे हैं—श्वेतकेतु, ऋभु, निदाघ जड़भरत ऋषभ दुर्वासा सम्वर्तक सनत्कुमार अदेह जनक कार्तवीर्य शुक वामदेव दत्तात्रेय रैवतक। दत्तात्रेय का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त भी ज्ञानेश्वर चरित्र में पं लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर ने ज्ञाननाथ तक की परम्परा गिनाई है। आदिनाथ उमा मत्स्येन्द्र जालन्धरनाथ मत्स्येन्द्र से गोरक्ष तथा चौरंगी। गोरक्ष से गहिनी (गैनी) निवृत्ति तथा ज्ञानदेव दूसरी ओर जालन्धरनाथ से कानिफनाथ और मैनावती (गोपीचन्द्र की माता) का उल्लेख है।

यही तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई (1637 सम्वत् से 1 00 सम्वत्) ने गुरुपरम्परा दी है। बागची ने इसे उद्धृत किया है। किन्तु जिस की सूची में मीननाथ का उल्लेख नहीं है। यहाँ—ज्ञानेश्वर, सच्चिदानन्द विश्वम्भर,

---

1 गोपीनाथ कविराज एस बी भाग 4।

2. विमलः कृष्णदेवश्च भीमसेनः सुधाकरः
मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रकीर्तितः
मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरो हुताशनः
समरानन्द सन्तोषो मानवौघाः प्रकीर्तिताः।—कौलावली तंत्र पृष्ठ 76

(1485—1533) कृष्णाचार्य राघव चैतन्य केशवचैतन्य बाबाजीचैतन्य तुकोबा तुकाराम) 1608—1649) का उल्लेख और जोड़कर सूची को समाप्त कर दिया गया है।

गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में नवनाथ इस प्रकार गिनाये गए हैं—नागार्जुन जड़भरत हरिश्चन्द्र सत्यनाथ भीमनाथ चर्पट, कन्याधारी (कण्पादि) तथा जालन्धर। वर्णरत्नाकर नामक ग्रन्थ के प्रणेता ज्योतिरीश्वर मिथिला के राजा हरिसिंह (1300 ई —1321) के दरबार में रहते थे। उनकी सूची के अनुसार भी मीननाथ गोरक्ष चौरंगी हाडिपा (हाड़िपा) कण्ह तथा जालन्धर का स्थान थोड़ा-बहुत थोड़ा से मिलता-जुलता है। विशेष उल्लेखनीय इन दो सूचियों में यही है कि जालन्धर और हाडिपा अलग-अलग व्यक्ति के रूप में माने गए हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार योगनाथ अथवा शिवनाथ तदनन्तर आदिनाथ फिर मीननाथ और तब गोरक्षनाथ का नाम है।

परम्पराओं पर विचार

परम्पराओं के सूत्र अलग-अलग हैं और वे भिन्न-भिन्न काल में हेर-फेर के उपरान्त प्राप्त होते हैं। परवर्ती विचारधाराओं के प्रभाव से मुक्त हैं ऐसा निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता क्योंकि धर्म की नई धाराएँ प्रारम्भिक परम्पराओं से सदैव ही मेल खानेवाली नहीं रह गई थी। इन विभिन्न परम्पराओं से मोटे तौर पर हमें अनेक बातों की जानकारी मिलती है। गुरुओं की तीन परम्पराओं में विस्तीर्ण में वस्तुत विभिन्न मत थे। उनमें परस्पर क्या भेद था यह आज गिना सकना कठिन है। बहुत सम्भव है केवल बाह्य रूप का ही थोड़ा-बहुत भेद रहा हो।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होंने पहले वर्णरत्नाकर की नाथ सिद्धों की सूची की राहुल सांकृत्यायन की गंगा पुरातत्त्वांक में प्रकाशित वज्रयानियों की सूची से तुलना की है। वर्णरत्नाकर में वास्तव में ८४ के स्थान पर केवल ७६ नाम दिये गए हैं। बाकी का उल्लेख क्यों नहीं है यह नहीं कहा जा सकता। यह लेखक का प्रमाद समझा जा सकता है। किन्तु ऐसा अधिक सम्भव है कि परवर्ती काल में 84 शब्द संख्या का उपयोग सम्मानसूचक समझा गया होगा। यह बात अन्य धर्मों से विचार के स्थान में तुलनीय स्वरूप से देखने पर स्पष्ट हो जाती है। वज्रयानी सिद्धों

1 कौलज्ञान निर्णय में सिद्धों की सूची इस प्रकार है—
श्री मित्सनाथ श्री विविकसनाथ शेन बट्ए मोन्द्र, अहीश विन्ध, शब मन्द्र कण्ड कण्ड हिडिमि मधुर नवम् दुम्पर, रेमे पीतर मिलन पक्षिमी इत्यादि —अनेन सारं धर्मे न मयो न मरिष्यति।

में अनेक नाथसिद्धों का नाम आता है। हजारीप्रसाद के अनुसार वर्णरत्नाकर की सूची के निम्नलिखित नाम तुलनीय होकर समान दिखाई देते हैं।

1 मीनपा 2. गोरक्षपा 3 चौरंगीपा 4. चमरि (चवरि) अजपालिपा 5 हल्तिपा 6. मेदनीपा (हालिपा ?) 7 कुठालिपा (कुद्दालिपा) 8. ढेंगिपा (धोमिपा ?) 10 बिरसा 12. कमरिपा (कामरिपा) 13 कण्हपा 14. कनखलापा (योगिनी) 16 मेखलापा (योगिनी) 18 वोम्भिपा 19 बालबरपा (बालबारक) 22 नागार्जुन 25. अचिन्तिपा 28. चम्पकपा 31. चर्पटीपा (पचरीपा) 32. भदेपा 34 कमरिपा (कंबलपा) 36 धर्मपा 37 भद्रपा 44. शान्तिपा 46 मिखनपा 47 दबरीपा 48. धमनपा 51 कुमरिपा 55. धलिपा (धीलपा) भृयालीपाद ? 59 नागाबोधिपा 60. भलिपा 69 कपाल (कमल) या 79 मणिभद्र (योगिनी)।

वज्रयानी सिद्धों की सूची में इन नामों का होना कुछ प्रकट करता है। वज्रयान की बाद की अवस्था में सहजयान प्रमुख था। सहज का नाथ परम्परा पर प्रभाव था। दोनों सूचियों में नामों की समानता का तात्पर्य यही है कि उक्त नाथ सिद्ध पहले सहजयानी थे तदुपरान्त नाथ हो गए। सहजयानी परम्परा उनके महत्त्व को भुला नहीं सकी अतः नहीं त्याग सकी। यह भी सम्भव है कि समसामयिक रूप से उस समय तक इतना स्पष्ट विभाजन नहीं हो पाया था। सूक्ष्म विरोधों का महत्त्व अधिक नहीं माना गया। यह आवश्यक नहीं है कि नाथ सम्प्रदाय का स्वरूप भी सर्वदा वही रहा जो गोरखनाथ ने निर्धारित किया। पूर्ववर्ती और परवर्ती तथा समसामयिक नाथियों में भी परस्पर भेद थे यह भी इससे लक्ष्य होता है। नाथसिद्धों में गोरख के सब ही पूर्ववर्ती शेष रहे हों यह विश्वास भी तनिक कुण्ठित होता है। योग एक व्यक्तिगत सिद्धि का माध्यम होने से प्रायः प्रत्येक सिद्ध के आत्मानुभव में भेद हो जाना कोई अद्भुत बात नहीं है। प्रारम्भ से कबीर के बाद तक आत्मानुभव की ही जो प्रधानता मानी गई है वह इस बात की पुष्टि करती है। अतः यह कहना सत्य से बहुत दूर न होगा कि गोरख के पूर्ववर्ती मोटे तौर पर यदि परस्पर बहुत दूर न थे तो सूक्ष्म भेदों पर उनकी कुछ असमानता अवश्य थी। नाथसिद्धों की सूची में गोरख का स्थान दूसरा है। सहजयानी सिद्धों में उन्हें नवाँ स्थान दिया गया है। मीननाथ नाथसिद्धों में सर्वप्रथम गिनाये गये हैं किन्तु सहजयानी परम्परा में उनका आठवाँ स्थान है। कहाँ तक यह दोनों सूचियाँ समय और अनुक्रम से बनी हैं यह नहीं कहा जा सकता। अधिकांशतः तो किंवदंती और सुनी-सुनाई परम्परा पर ही इनका आधार है।

तदुपरान्त पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वर्णरत्नाकर, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, महार्णव तन्त्र, योगिसम्प्रदायाविष्कृति, हठयोग प्रदीपिका तथा सुधाकर चन्द्रिका

(1485—1533) कृष्णाचार्य राघव चैतन्य केशवचैतन्य बाबाजीचैतन्य तुकोबा तुकाराम) 1608—1649) का उल्लेख और जोड़कर सूची को समाप्त कर दिया गया है।

गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में नवनाथ इस प्रकार गिनाये गए हैं—नागार्जुन जड़भरत हरिश्चन्द्र सत्यनाथ भीमनाथ चर्पट, कन्थाधारी (कन्थादि) तथा जालन्धर। वर्णरत्नाकर नामक ग्रन्थ के प्रणेता ज्योतिरीश्वर मिथिला के राजा हरिसिंह (1300 ई —1321) के दरबार में रहते थे। उनकी सूची के अनुसार भी मीननाथ गोरक्ष चौरंगी हालिपा (हाड़िपा) कान्ह तथा जालन्धर का स्थान चौहत्तर की दोहा से मिलता-जुलता है। विशेष उल्लेखनीय इन दो सूचियों में यही है कि जालन्धर और हाड़िपा अलग-अलग व्यक्ति के रूप में माने गए हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार योगनाथ अथवा विष्णुनाथ तदनन्तर आदिनाथ फिर मीननाथ और तब गोरक्षनाथ का नाम है।

परम्पराओं पर विचार

परम्पराओं के सूत्र अलग-अलग हैं और वे भिन्न-भिन्न काल में हेर-फेर के उपरान्त प्राप्त होते हैं। परवर्ती विचारधाराओं के प्रभाव से मुक्त हैं ऐसा निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता क्योंकि धर्म की नई धाराएं प्रारम्भिक परम्पराओं से सर्वथा ही मेल खानेवाली नहीं रह गई थी। इन विभिन्न परम्पराओं से मोटे तौर पर हमें अनेक बातों की जानकारी मिलती है। गुरुओं की तीन परम्पराओं में विश्वास में वस्तुतः विभिन्न मत थे। उनमें परस्पर क्या भेद था यह भाव गिना सकना कठिन है। बहुत सम्भव है केवल बाह्य रूप का ही थोड़ा-बहुत भेद रहा हो।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होंने पहले वर्णरत्नाकर की नाथ सिद्धों की सूची की राहुल सांकृत्यायन की गंगा पुरातत्त्वांक में प्रकाशित वज्रयानियों की सूची से तुलना की है। वर्णरत्नाकर में वास्तव में ८४ के स्थान पर केवल ७६ नाम दिये गए हैं। बाकी का उल्लेख क्यों नहीं है यह नहीं कहा जा सकता। यह लेखक का प्रमाद समझा जा सकता है। किन्तु ऐसा अधिक सम्भव है कि परवर्ती काल में 84 शब्द संख्या का उपयोग सम्मानसूचक समझा गया होगा। यह बात अन्य धर्मों से विचार के स्थान में तुलनीय स्वरूप से देखने पर स्पष्ट हो जाती है। वज्रयानी सिद्धों

1 ज्ञेयजान निर्णय में सिद्धों की सूची इस प्रकार है—
श्री मित्रप्रभास, श्री सिद्धिप्रकाश स्रोत मद्द महेन्द्र, ज्योति, सिंह, शब्द, महेन्द्र चन्द्र, चन्द्र, डिंडिमि समुद्र, बगल कुन्द, देवी मीन, सिंहल योगिनी समाप्ति—अनेन सर्वं सर्वं न भूतो न भविष्यति।

में अनेक नाथसिद्धों का नाम आता है। हजारीप्रसाद के अनुसार वर्णरत्नाकर की सूची के निम्नलिखित नाम तुलनीय होकर समान दिखाई देते हैं।

1 मीनपा 2 गोरक्षपा 3 चौरंगीपा 4 चर्बरि (चर्वरि) अजपालिपा 5 हलिपा 6. मेदनीपा (हालिपा ?) 7 कुडलिपा (कूडलिपा) 8. केंकिपा (चौंगिपा ?) 10 विरूपा 12 कमरिपा (कामरिपा) 13. कण्हपा 14 कनल भापा (योगिनी) 15. मेखलापा (योगिनी) 18. चोलिपा 19 जालन्धरपा (जालन्धरक) 22 नागार्जुन 25. अचिन्तिपा 26. कम्बलपा 31 चर्पटीपा (चपरीपा) 32. भवपा 34 कमरिपा (कंकणपा) 36. धर्मपा 37 मद्रपा 44. भालिपा 46 मिखमपा 47 धावरीपा 48. नयनपा 51 कुमरिपा 55 धमिपा (धीलपा) भुंगालीपाद ? 59 भागाबोधिपा 60. मलिपा 69 कपाल (कमल) पा 79 मणिभद्र (योगिनी)।

वज्रयानी सिद्धों की सूची में इन नामों का होना कुछ प्रकट करता है। वज्रयान की आगे की अवस्था में सहजयान प्रमुख था। सहज का नाथ परम्परा पर प्रभाव था। दोनों सूचियों में नामों की समानता का तात्पर्य यही है कि उक्त नाथ सिद्ध पहले सहजयानी थे तदुपरान्त नाथ हो गए। सहजयानी परम्परा उनके महत्त्व को घटा नहीं सकी अत नहीं त्याग सकी। यह भी सम्भव है कि समसामयिक रूप में उस समय तक इतना स्पष्ट विभाजन नहीं हो पाया था। सूक्ष्म विरोधों का महत्त्व अधिक नहीं माना गया। यह आवश्यक नहीं है कि नाथ सम्प्रदाय का स्वरूप भी सदैव वही रहा जो गोरखनाथ ने निर्धारित किया। पूर्ववर्ती और परवर्ती तथा समसामयिक नाथियों में भी परस्पर भेद थे यह भी इससे स्पष्ट होता है। नाथसिद्धों में गोरक्ष के सब ही पूर्ववर्ती थे रहे हों यह विश्वास भी तनिक कठिन होता है। योग एवं व्यक्तिगत सिद्धि का माध्यम होने से प्राय प्रत्येक सिद्ध के आत्मानुभव में भेद हो जाना कोई अद्भुत बात नहीं है। प्रारम्भ से कबीर के बाद तक आत्मानुभव की ही था प्रधानता पाई गई है यह इस बात की पुष्टि करती है। अत यह कहना सत्य से बहुत दूर न होगा कि गोरक्ष के पूर्ववर्ती मोटे तौर पर यदि परस्पर बहुत दूर न थे तो सूक्ष्म भेदों पर उनकी कुछ असमानता अवश्य थी। नाथसिद्धों की सूची में गोरक्ष का स्थान दूसरा है। सहजयानी सिद्धों में उन्हें नवाँ स्थान दिया गया है। मीननाथ नाथसिद्धों म सर्वप्रथम गिनाये गये हैं किन्तु सहजयानी परम्परा में उनका बाइसवाँ स्थान है। कहाँ तक यह दोनों सूचियाँ समय और अनुक्रम से बनी हैं यह नहीं कहा जा सकता। अधिकांशत तो किंवदंती और गुरु-गुर्आई परम्परा पर ही इनका आधार है।

तदुपरान्त पं हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वर्णरत्नाकर, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह महार्णव तन्त्र योगिसम्प्रदायाविष्कृति हठयोग प्रदीपिका तथा संचाकर कविन्द्र

के ऊपर दिये नाथसिद्धों की एक सूची बनाई है जिसमें उन्होंने प्रकाश से प्रारम्भ कर हालिपा तक 187 सिद्धों के नाम दिये हैं। यदि नवनाथों कापालिकों ज्ञान नाथ के पुत्रसिद्धों और वर्णरत्नाकर के चौरासी नाथसिद्धों को नाथ परम्परा में मान लिया जाय तो 14वीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व लगभग 128 सिद्धों के नाम उपलब्ध होते हैं।[1] तन्त्रों मे मानव पुरुषों का उल्लेख इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि उनके नाथसिद्ध होने में सन्देह है।

कौलावली तन्त्र में मीन तथा गोरक्ष को मिला देना इसी ओर इंगित करता है कि सम्भवतः यह सब मानवीय गुरु एकदम ही नाथसिद्ध नहीं थे। ऊपर भैरवों के विषय में बात की जा चुकी है।

इस सूची में नाम गिना दिये गए हैं। मत्स्येन्द्रनाथ को 100वाँ स्थान दिया गया है तथा 108 संख्या पर हठयोग प्रदीपिका गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह योगि सम्प्रदायाविष्कृति तथा वर्णरत्नाकर में उल्लिखित मीन का नाम है।[3] सूची से यह प्रकट नहीं होता कि पूर्ववर्ती और परवर्ती नाथसिद्धों को किस क्रम में रखा जा सकता है। (प्रायः सभी स्रोतों से देखकर) गोरक्षनाथ 36वें स्थान पर हैं तथा चाहिलीनाथ 38वें स्थान पर रखे गए हैं।

सूची अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा अनेक समस्याओं को सुलझाने में सहायता दे सकती है।

इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण तथा इससे विपरीत सिद्धों के नाम प्रकट होते हैं जिनके समय की एक ओर सीमा निर्धारित ही है। उनका 1300 ई. के पूर्व होना अवश्य उल्लिखित है।

किंवदन्तियों और दन्तकथाओं की परीक्षा

मत्स्येन्द्रनाथ जालन्धरनाथ गोरक्षनाथ तथा कानिपा का नाम प्रायः सभी सूचियों मे मिलता है। इससे यह प्रकट होता है कि इनका सर्वमान्य होना स्वयंसिद्ध-सा है। इनका काल नियत होने पर अन्यों का पूर्ववर्ती तथा परवर्ती में विभाजन कुछ सीमा तक सरल हो जाएगा। मत्स्येन्द्र प्रथम पुरुष हैं। क्षीर सागर के तट पर विष्णु मत्स्य बनकर शिवपार्वती की बात में हुंकारी भरने लगे। शिव इस बात को पहचान गये तब मत्स्य के उदर से निकलकर कुमार रूप विष्णु ने आदेश कहा। यही मत्स्येन्द्रनाथ थे। मत्स्येन्द्र घूमते हुए अयोध्या

---

1. ज्ञान सम्प्रदाय।
2. सूची अकारादिक्रम से लिखी हुई है।
3. नाथ सम्प्रदाय।
4. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

की ओर बमपी नामक नगर में पहुँचे वहाँ विजयध्वज राज्य कर रहा था। वहाँ एक सहदोष ब्राह्मण अपनी सद्वृत्ति पत्नी के साथ रहा करता था। मत्स्येन्द्र ने स्त्री को निःसन्तान देखकर उसे खाने के लिए एक फल दिया। ब्राह्मणी ने जाकर पड़ोसिन को यह वृत्तान्त सुना दिया। पड़ोसी ने कहा न खाने वहाँ का जोगड़ा था। ये कनफटे वैरागी हैं। ऐसा मन्त्र फूँककर भभूत देते हैं कि कोई खा ले तो उसकी सुध-बुध खो जाए और कुतिया बनकर इनके पीछे-पीछे घूमा करे। ब्राह्मणी ने फल को फेंक दिया। 12 वर्ष बाद मत्स्येन्द्र उधर ही आए। उन्होंने फेंक दिये जाने के वृत्तान्त को सुनकर, जाकर गड्ढे को देखा जहाँ फल फेंका गया था वहाँ एक 1 वर्ष का बालक था। वही गोरख था। गोरख मत्स्येन्द्र के साथ चल पड़ा तब मत्स्येन्द्र ने कृपा करके उस ब्राह्मणी को दूसरा बालक दिया जिसका नाम गाभवरण रखा। यह नामकरण गोरख ने किया।[1]

मत्स्येन्द्र

प्रबोधचन्द्र बागची के अनुसार मत्स्येन्द्र पहले ब्राह्मण थे किन्तु बाद में वे मत्स्यघ्न कहलाते थे। इसका कारण यह था कि वे कैवर्त का काम करने लगे थे। पवित्र कुलागम निगल जाने वाली मछली को मार देने के कारण उन्हें ऐसा नाम दिया गया। कार्तिकेय ने कुलागम चुरा लिया। भैरव ने उसका उद्धार करने का प्रयत्न किया। जब वे अपने स्वरूप में नहीं कर सके तब उन्होंने मछली का रूप धारण किया। अतः नाम मत्स्येन्द्र पड़ा।[2] इससे यह प्रकट होता है कि मत्स्येन्द्र यद्यपि ब्राह्मण थे किन्तु कुलागम के लिए उन्होंने अपना ब्राह्मणत्व त्याग दिया था और वे इस पथ पर चल पड़े थे।

गोरखनाथ

शिव और चार सिद्ध स्वयं परमात्मा से उत्पन्न हुए थे। वे सिद्ध निम्न लिखित हैं। मीन हाड़िपा गोरखनाथ कनुपा। बंगाली किंवदन्ती के अनुसार गौरी नामक एक कन्या हर को दी गई। गोरख मीननाथ और कनुपा हाड़िपा के सेवक हो गए। मीन ने एक बार शिव जब पार्वती को उपदेश दे रहे थे छिपकर पीठिका के नीचे से सब सुन लिया। उस समय वह मत्स्य के रूप में थे। उन्हें इसके लिए शाप मिला। गोरख-मात्र ही पवित्र रह सके।

अधिकतर किंवदन्तियाँ मत्स्येन्द्र के छिपकर उपदेश प्राप्त करने तथा मत्स्य रूप से सम्बन्धित होने के तथ्य इस विषय पर कुछ प्रकाश डालते हैं। डा० मोहन

---

1 [illegible]
[illegible] 60 3।
3 वही, पृष्ठ 11। [illegible]

के ऊपर दिये नाथसिद्धों की एक सूची बनाई है जिसमें उन्होंने प्रथम से प्रारम्भ कर हालिपा तक 137 सिद्धों के नाम दिये हैं। यदि नवनाथों, कापालिकों, ज्ञान नाथ के गुरुसिद्धों और वर्णरत्नाकर के चौरासी नाथसिद्धों को नाथ परम्परा में मान लिया जाय तो 14वीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व लगभग 1..0 सिद्धों के नाम उपलब्ध होते हैं।[1] तन्त्रों में मानव गुरुओं का उल्लेख इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि उनके नाथसिद्ध होने में सन्देह है।

कौलावली तन्त्र में मीन तथा गोरख को गिना देना इसी ओर इंगित करता है कि सम्भवत यह सब मानवीय गुरु एकदम ही नाथसिद्ध नहीं थे। ऊपर भेदों के विषय में बात की जा चुकी है।

इस सूची में नाम गिना दिये गए हैं। मत्स्येन्द्रनाथ को 100वां स्थान दिया गया है तथा 108 संख्या पर हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, योगि सम्प्रदायाविष्कृति तथा वर्णरत्नाकर में उल्लिखित मीन का नाम है।[2] सूची से यह प्रकट नहीं होता कि पूर्ववर्ती और परवर्ती नाथसिद्धों को किस रूप में रखा जा सकता है। (प्राय सभी स्रोतों से देखकर) गोरखनाथ 35वें स्थान पर है तथा जालन्धरनाथ 33वें स्थान पर रखे गए हैं।

सूची अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा अनेक उलझनों को सुलझाने में सहायता दे सकती है।

इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण तथा इससे विपरीत सिद्धों के नाम प्रकट होते हैं जिनके समय की एक ओर सीमा निर्धारित ही है। उनका 1300 ई के पूर्व होना अवश्य अस्तिसिद्ध है।[3]

किंवदन्तियों और दन्तकथाओं की परीक्षा

मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ, गोरखनाथ तथा कानिपा का नाम प्राय सभी सूचियों में मिलता है। इससे यह प्रकट होता है कि इनका सर्वमान्य होना स्वयसिद्ध-सा है। इनका काल नियत होने पर अन्यों का पूर्ववर्ती तथा परवर्ती में विभाजन कुछ सीमा तक सरल हो जाएगा। मत्स्येन्द्र प्रथम पुरुष है। क्षीर सागर के तट पर विष्णु मत्स्य बनकर शिवपार्वती की बात में हुंकारी भरने लगे। शिव इस बात को पहचान गये तब मत्स्य के उदर से निकलकर कुमार रूप विष्णु ने आदेश कहा। यही मत्स्येन्द्रनाथ थे। मत्स्येन्द्र घूमते हुए अयोध्या

---

1 नाथ सम्प्रदाय।

सूची अकारादि क्रम से लिखी हुई है।

3 नाथ सम्प्रदाय।

4 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

कई स्थानों पर मत्स्येन्द्र को आदिनाथ (निरंजन या धर्म) तथा (मनसा का पुत्र) कहा गया है।[1]

मत्स्येन्द्र एक भृगुवंशीय ब्राह्मण का पुत्र था। पिता ने अपशकुन समझकर उसे समुद्र में डाल दिया। यहाँ अपशकुन का कोई वर्णन नहीं दिया गया है। बालक को एक मत्स्य ने खा लिया। शिव ने जब पार्वती को दीक्षा दी तब शुक ने उसे सुना। शुक (शुकदेव=व्यासदेव के पुत्र) द्वापर के अन्त में हुए। अतः कथा तभी सुनाई गई। अतः द्वापर के अन्त में योगी समाज की प्रतिष्ठा हुई, अर्थात् नाथपंथ की। तभी मत्स्य में से शिव ने मत्स्येन्द्र का उद्धार किया।[2]

अयोध्या में मत्स्येन्द्र ने एक राजा को राम के दर्शन कराये। सूर्य को भी अपने बल से पृथ्वी पर उतार दिया। राजा के दास जब राजा की खोज करते हुए आये तब उन्होंने मत्स्येन्द्र को श्मशान में सानन्द बैठे हुए देखा।[3]

मत्स्येन्द्र मध्यप्रदेश में भ्रमण करते हुए गंगा यमुना नदियों के मध्यस्थ देश में आ पहुँचे फिर हस्तिनापुर गए। वहाँ बृहद्रथ राजा के पुत्रेष्टि यज्ञ में भाग लिया। बृहद्रथ कुरुवंशान्तर्गत पुरुवंश में हुआ था जो युधिष्ठिर की अपेक्षा 23वाँ राजा था। यज्ञ के फलस्वरूप एक बालक हुआ जो अंतरिक्ष नारायण का अवतारी था। मत्स्येन्द्र ने बालक को चुटकी भर विभूति खिलाई जो कोई जान न पाया। मत्स्येन्द्र चले गए। राजा ने बालक को (गौतमबुद्ध की तरह) अछूता पाला। लड़का बड़ा हुआ। समय आने पर उसने पूछा विवाह क्या है। जब उसे बताया गया तब वह क्षणिक आनन्द का विरोधी निकला। उसने संसार चक्र में फँसना अस्वीकार कर दिया। वह मंगलप्रद मुहूर्त में रूपांतर धारण कर घर से निकल गया। गंगातट पर घूमता हुआ हिमालय पहुँचा। वहाँ एक गुफा में बैठकर आराधना करने लगा। दावाग्नि प्रस्फुटित होने पर जब वन जलने लगा तब भी अग्नि ने उसे यज्ञ में अपना पुत्र जानकर बचाया यही और उसे शिव के समीप ले गया। शिव ने लड़के को स्वयं दीक्षा दी और कुंडल पहनाये और उसे ज्वालेन्द्रनाथ नाम दिया। शिव ने उससे कहा मालव पर्वत पर होकर जाना। वहाँ के नागवृक्ष और सूर्यकुण्ड के दर्शन करने का बहुत ही माहात्म्य है और उसे बदरिकाश्रम तप करने भेजा। ज्वालेन्द्रनाथ बदरिकाश्रम में अजपा नामक हंसमंत्र के ध्यान में तल्लीन हो गए। मत्स्येन्द्र ने बारह वर्ष बाद आकर वहाँ उस तपस्या में बद्ध आसन को खुलवाया।[4]

---

1 सुकुमार सेन, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ दिसम्बर 1946।
* योगिसम्प्रदायाविष्कृति।
3. वही।
4. वही।

सिंह ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि सम्भवतः आध्यात्मिक पक्ष में यह दो विशेष अवस्थाएँ हैं जिनके नामों पर इन दो की अभिव्यक्ति की गई हो। किन्तु उन्होंने अपने मत की पुष्टि में कोई विशेष तथ्य नहीं दिये हैं। मत्स्येन्द्र का मत्स्य के किसी रूप या सम्बन्ध से संप्रथित होना निकटतर प्रतीत होता है या परवर्ती काल में असमञ्ज भेद को मत्स्यावतार की भाँति निकाल लाने वाली शक्ति के सामने से इन किंवदन्तियों को जन-कल्पना में आधार मिला। छिपकर सुनने से ध्वनित होता है कि मत्स्येन्द्र वास्तव में किसी अन्य सिद्धान्त को माननेवाले थे। वे शिव स्वरूप से अत्यन्त प्रभावित होकर इस ओर आकृष्ट हुए, किन्तु उन्हें दीक्षा अत्यन्त कठिनता से मिली। इस चरित्र का आगे का कथानक गोरक्षनाथ के साथ लेने में अधिक सरल सिद्ध होगा।

कौलज्ञाननिर्णय आकुल वीर तन्त्र (ए और बी) कुलानन्द और ज्ञान-कारिका में मच्छन्दपाद मच्छेन्द्रपाद मत्स्येन्द्रपाद और मीनपाद मच्छेन्द्रपाद मत्स्येन्द्र मच्छिन्दरनाथ आदि नाम आते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर काफी प्रकाश डाला है। मत्स्येन्द्र का चित्त की चपल वृत्तियों के पर्याय में प्रयोग आता है। बौद्ध सिद्धों में मत्स्य प्रज्ञा का वाचक था। अतः आप इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि मीननाथ और मत्स्येन्द्र एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। दीपंकर श्रीज्ञान 1038 ई. के सम्बन्ध से जिन लुईपा का समय ज्ञात होता है उन्हें वे मत्स्येन्द्र से अलग व्यक्ति स्वीकार करते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ का मत्स्येन्द्र संहिता नामक योग साधन पर ग्रंथ बताया जाता है। अब यह प्राप्त नहीं होता अतः इस ओर से सहायता की कोई आशा नहीं रहती।

एक कथा के अनुसार[3] मत्स्येन्द्र गंडान्तयोग में जन्मे। पिता ने अशुभ समझकर उन्हें समुद्र में फेंक दिया। वहाँ उन्हें एक मछली खा गई। श्वेतद्वीप के सम्यक् पर्वत पर शिव पार्वती को रहस्य कथा सुनाने लगे। मत्स्य चुपचाप नीचे छिपकर सुनता रहा। जब शिव और पार्वती चलने लगे तो इसने गगन में बढ़कर कहा—मुझे अब ज्ञानबोध हो गया है। शिव ने प्रसन्न होकर कहा—तू विप्र है। मत्स्य से निकल आ। पार्वती ने प्रसन्न हो उसे अपने साथ ले लिया और मन्दार पर्वत पर ले गईं। जब मत्स्य में से कुमार निकला तब शिव ने उसका नाम मत्स्यनाथ रख दिया। बंगाल के धर्मदेव सम्प्रदाय में सृष्टि उत्पत्ति की यह कथा मानी जाती है कि मत्स्येन्द्रनाथ (मीननाथ) चार अन्य सिद्धों के सहित आदिदेव या आदिनाथ के गड़े हुए मृत शरीर से निकले थे। गोरखबानी में

---

1 नाथ सम्प्रदाय।

2 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

3. स्कंद पुराण नागर खंड (26, 36, 613)

कई स्थानों पर मत्स्येन्द्र को आविर्नाथ (निरंजन या धर्म) तथा (मनसा का पुत्र) कहा गया है।[1]

मत्स्येन्द्र एक भृगुवंशीय ब्राह्मण का पुत्र था। पिता ने अपशकुन समझकर उसे समुद्र में डाल दिया। यहाँ अपशकुन का कोई वर्णन नहीं किया गया है। बालक को एक मत्स्य ने खा लिया। शिव ने जब पार्वती को दीक्षा दी तब शुक ने उसे सुना। शुक (शुकदेव=व्यासदेव के पुत्र) द्वापर के अन्त में हुए। अतः कथा तभी सुनाई गई। अतः द्वापर के अन्त में योगी समाज की प्रतिष्ठा हुई, अर्थात् नाथपंथ की। तभी मत्स्य में से शिव ने मत्स्येन्द्र का उद्धार किया।[2]

अयोध्या में मत्स्येन्द्र ने एक राजा को राम के दर्शन कराये। सूर्य को भी अपने बल से पृथ्वी पर उतार दिया। राजा के दास जब राजा की खोज करते हुए आये तब उन्होंने मत्स्येन्द्र को श्मशान में सानन्द बैठे हुए देखा।[3]

मत्स्येन्द्र मध्यप्रदेश में भ्रमण करते हुए गंगा यमुना नदियों के मध्यस्थ देश में आ पहुँचे फिर हस्तिनापुर गए। वहाँ बृहद्रथ राजा के पुत्रेष्टि यज्ञ में भाग लिया। बृहद्रथ कुरुवंशान्तर्गत पुरुवंश में हुआ था जो युधिष्ठिर की अपेक्षा 23वाँ राजा था। यज्ञ के फलस्वरूप एक बालक हुआ जो अंतरिक्ष नारायण का अवतारी था। मत्स्येन्द्र ने बालक को चुटकी भर विभूति खिलादी जो कोई जान न पाया। मत्स्येन्द्र चले गए। राजा ने बालक को (गौतमबुद्ध की तरह) अछूता पाला। लड़का बड़ा हुआ। समय आने पर उसने पूछा विवाह क्या है। जब उसे बताया गया तब वह क्षणिक आनन्द का विरोधी निकला। उसने संसार-चक्र में फँसना अस्वीकार कर दिया। वह मंगलप्रद मुहूर्त में रूपांतर धारण कर घर से निकल गया। गंगातट पर घूमता हुआ हिमालय पहुँचा। वहाँ एक गुफा में बैठकर आराधना करने लगा। दावाग्नि प्रस्फुटित होने पर जब वन जलने लगा तब भी अग्नि ने उसे यज्ञ में अपना पुत्र जानकर जलाया नहीं और उसे शिव के समीप ले गया। शिव ने लड़के को स्वयं दीक्षा दी और कुंडल पहनाये और उसे ज्वालेन्द्रनाथ नाम दिया। शिव ने उससे कहा मातङ्ग पर्वत पर होकर जाना। वहाँ के नागवृक्ष और सूर्यकुंड के दर्शन करने का बहुत ही माहात्म्य है और उसे बदरिकाश्रम तप करने भेजा। ज्वालेन्द्रनाथ बदरिकाश्रम में अजपा नामक हंसमंत्र के ध्यान में तल्लीन हो गए। मत्स्येन्द्र ने बारह वर्ष बाद आकर वहाँ उस तपस्या में बद्ध आसन को खुलवाया।[4]

---

1. कुल्वार सेन प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, टीकमगढ़ 1946।
2. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।
3. वही।
4. वही।

जालन्धरनाथ

ज्वालेन्द्रनाथ के अनेक नाम हैं। उन्हें हाली या हालिपा नाम से भी मिला दिया जाता है। शिव उदयनाथ ने स्वमन एक योगी तथा अपनी शक्ति से एक दूसरे दुरात्मा जालन्धर को जन्म दिया। दुरात्मा को फिर वे सत्पथ पर लाये। जालन्धर ने दो शिष्य बनाए—एक मत्स्येन्द्रनाथ दूसरा जालन्धरीपा। दूसरे ने पा पंथ चलाया तथा मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरखनाथ को अपना शिष्य बनाया। उसी कथा में मत्स्येन्द्र की उत्पत्ति तथा गोरख के गोबर से जन्म लेने के सम्बन्ध में भी कहा गया है। इस कथा में पा पंथ के भिन्न रूप से चलने पर प्रकाश डाला गया है। ज्वालेन्द्र के सम्बन्ध में किंवदंतियों की कमी नहीं है।

आप एक बार जमुना तीर पर पहुँचे। फिर काश्मीर गए। वहाँ महानिनाथ और नागनाथ अपने शिष्यों को दीक्षा दे रहे थे। यहीं आपने समाधि ली। ज्वालेन्द्रनाथ ने कानिफानाथ को दर्शन दिलाने के लिए देवताओं का आह्वान किया। देवताओं की भीड़ उनके बुलाते ही आकर इकट्ठी हो गई, जो देवता नहीं आए ज्वालेन्द्रनाथ ने उन्हें प्रमत्त जानकर दंड दिया। ज्वालेन्द्र नाथ के प्रबल प्रताप से स्वयं देवता तक भयभीत दिखाये गए हैं।

जालन्धर की किंवदंतियों में गोपीचन्द तथा भर्तृहरि का नाम बहुत ही उल्लिखित होता है।

चर्पटनाथ

जालन्धर ने चर्पटनाथ रामसिंह नामक गौड़ जातीय राजा को कालिम नदी के तीर पर ईश्वर दर्शन कराये थे। दंडावती के भागिपुरी नगर के रत्न नामक पर्वत पर आपने तपस्या की थी। दुर्गापुर के खेत में आपकी शक्ति से हीरे-पन्नों की खेती उग आई। एक जन्ममूक को उन्होंने कवि बना दिया। कंचन पर्वत पर योगी जालन्धर ने राजा रेणुक को एक वस्त्र दिया जो नितांत अद्भुत था। अपने बल से राजा रेणुक को उन्होंने ब्रह्मांड के दर्शन करा दिये। 'भारख' नामक व्यक्ति को 'रत्न' नामक पुत्र होने का वरदान दिया। रघुवंश के एक राजा को अकेले लड़ने योग्य बना दिया जिसका किसी बादशाह से युद्ध हुआ था। यह युद्ध यावन यवनों से हुआ था। उसका भी इंगित मिलता है। किन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे यवन मुसलमान ही थे। नेपाली में जालन्धर ने अग्निभानी बनाई जहाँ एक राजकुमार को रामचन्द्र

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2 एम डी जान्सूस 6 गोपीनाथ कविराज।

नामक तलवार थी जिससे वह यवनों तथा पितृहंता जोम वर्ग से लड़ा।[1] इस जोम शब्द का वास्तविक उच्चारण क्या है यह भी कुछ संदिग्ध-सा ही प्रतीत होता है। यादव जाति के कुछ भाटी भी जालन्धर की सहायता से पराजित हुए थे। जालन्धर के शिष्यों में चर्पटनाथ का भी नाम आता है।

चर्पटनाथ

प्रणंत वाक्य में चर्पट को राजा कहा गया है। चर्पट की रचनाओं से यही लगता है कि ये परवर्ती काल में हुए थे क्योंकि गोरख की रचनाओं से उनकी भाषा का भेद परवर्ती भाषा के समान होने से यही इंगित होता है। चर्पट का समय उनके शिष्य साहिलवर्मा से जो पंजाब की पहाड़ियों में चम्बा रियासत का राजा था लगभग 920 ई. से कुछ पूर्व ज्ञात होता है। रज्जबदास ने चर्पट का चारणी के गर्भ से उत्पन्न होना लिखा है। गोरख सतक में चर्पट मछंदर के शिष्य कहे गए हैं।[2] पं. सुधाकर द्विवेदी ने चर्पट शब्द का अर्थ मूर्ख (जो जबरदस्ती जोर से दूसरे की चीज छीन ले) लिखा है। नाथ साधुओं में ऐसा नाम उनकी कीर्ति पर कुछ प्रभाव डालता-सा दिखाई देता है।

लकुलीश

971 ई. तिथि का एक लेख एक मन्दिर के संग्रह में पाया गया है। उससे यही निश्चित होता है कि यह नाथ सम्प्रदायवालों का मन्दिर था। चम्बा के सिक्के पर कुंडलधारी योगी का चित्र है। पीछे गाय है। गोरक्षा की भावना का इंगित होता है। फ्लीट का उदाहरण देकर बताया गया है कि वह एकलिंग लकुलीशों का मन्दिर है। गोरख का लकुलीशों के साथ नाम है।[3]

मत्स्यनाथ नाथपद

तृतीयांश में नाथदेव पद की उपस्थिति से यह ज्ञात होता है कि 'नाथ'

---

1 देख श्री आलूम गोपीनाथ कविराज।

2. चारिणाभव चर्पटो मत्स्यन्दको महामुनी।
 यदिम योग मार्ग तस्मात् कि जाति भरपम्। —स. सरस्वान

3 मिश्र, गोरखनाथ एवं मध्ययुगीय

4. श्रीमद्दर्शनार्थं तत्रा देवीमुद्रीकरी तत.।
 नाथदेव पदं तत्र श्रीरत्नाना तस्मै नैव
 श्रीचर्पटिनाथपदाश्रित पदश्रीतनुर्ना तत
 पूर्वधर्मस्तुहिम्यने पूर्वेश्वरि तुम्न
 श्रीतावंच समाश्रित चालंकरस्तत
 महापीठं तपाश्रित चतुर्दश्य रमा तत
 श्रीमेरुकीर्तं तथा देविमलसम्यक्तिनाद्।
 नाथदेवारं तत्र श्रीरत्नाना पदं तत

सम्प्रदाय का कोई रूप इससे अवश्य सम्बन्धित था। चर्यानाथ श्रीपूर्णनाथ षष्ठीशनाथ कामेश्वरानन्दनाथ तथा मित्रीशनाथ नामक नामों का संकेत मिलता है जो परवर्ती काल में तृतीयाम के अभिन्न अंग हो गए हैं। तृतीयाम का अर्थ स्त्री के शरीर को समस्त शक्ति पीठों का एक आसन बना देना है।[1] इसी सम्बन्ध में जालन्धर का भी नाम आता है। जालन्धर पद के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि यह जालन्धर व्यक्ति के तन्त्रान्तोत्पन्न पर व्याख्या है या जालन्धर नामक शक्ति पीठ का कोई अभ्यास है जिस पर उसका नाम पड़ गया है। किन्तु इस प्रकार की कापालिकी साधना में जालन्धर का नाम कोई अद्भुत बात नहीं है। यह जालन्धर के मत पर विचार करते समय प्रगट हो जाएगा।

जालन्धर का उल्लेख पद्मपुराण में भी है। किन्तु यह जालन्धर हमारा उल्लेख्य नहीं है। आर. सी. मजूमदार के अनुसार कहीं-कहीं जालन्धरी (जालन्धर) का सवीयान के एकमूर्ति के शिष्य के रूप में वर्णन आता है। कहीं गोपीचन्द कथा से हाड़िपा से ये एक कर दिये जाते हैं। ग्रुनवेडेल के अनुसार जालन्धर नाट भूमि के एक ब्राह्मण थे। तारानाथ ने इन्हें कृष्णाचार्य का गुरु तथा समसामयिक कहा है और गोपीचन्द कथा के हाड़िपा से उनका सम्बन्ध जोड़ दिया है। तारानाथ और सुम्पा के अनुसार उनका वास्तविक नाम सिद्ध बालपाद था किन्तु नेपाल और कश्मीर के बीच किसी स्थान में रहने से उनका नाम ऐसा पड़ गया। नगर थाट सिन्ध में था जहां वे एक शूद्र व्यापारी के घर उत्पन्न हुए थे। वे पश्चात नैपाल अवंती तथा चाटी ग्राम गए जहां गोपीचन्द विमलचन्द का बेटा राजा था।[2] डा. मोहनसिंह ने भी इस बालपाद का उल्लेख किया है। गोपीनाथ कविराज ने भी इसका वर्णन किया है।[3]

श्रीउड्डीशपर्व तथा जालन्धरं ततः ।

...

देवीकोटिश्च श्रीपूर्णगिरि देवस्यं ततः।
श्रीकामु वासवमात्मस्य देवी श्रीसत्या विन्देत्
अधोरामान्यादिलक्ष देवतास्यं ततः।
श्रीतनुश्च ततो तथा कामेश्वरीस्यं ततः
देवीश्रीकलामाध्यं कामेश्वरानन्दनाथम्।
श्रीमहाकव्यमाथ तुष्यस्यश्रीमत्य
मित्रीशानन्दनाथस्य पादश्रीपादुकाततः।

—हठयोगप्रदीपिका सप्तम सर्ग, पृष्ठ ४ तुरस्वर्ग्वांर्तदः।

1 तन्तो सम्पादिते तत् पीठ पूर्व निरिर्दतः । —वही पृष्ठ ४ ।

2 हिस्ट्री आफ बंगाल डिस्ट्रिक्ट, पृष्ठ 344-45 अध्याय 11 वाल्यूम 1।

3 गोरक्षनाथ कविराज एस. बी. गोरखपुर, 60।

राहुल के अनुसार जालन्धर ब्राह्मण थे। कृष्णपा तथा मत्स्येन्द्र इनके शिष्य थे। कूर्मपा आपके गुरु थे। बसदेव प्रसाद का मत मत्स्येन्द्र और जालन्धर के सम्बन्ध में इससे मिलता-जुलता ही है। जालन्धर पा (दूसरा नाम हाडी पा)। तारानाथ इन्हें धर्मकीर्ति का समकालीन मानते हैं। इन्होंने पद्मवज्र के ग्रन्थ पर टीका लिखी तथा ये हेवज्रतन्त्र के अनुयायी थे। घंटापाद के शिष्यसिद्ध कूर्मपाद की संगति में आकर वे उनके शिष्य बन गए। इनके तीन पट्ट शिष्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ कण्हपा तथा तंतिपा।

अन्य सिद्ध

तंतिपा अथवा टेण्टणपा का राहुलजी ने देवपाल (विग्रहपाल) के समय (809—49—54) के अनुसार 845 ई. का समय लगाया है। तंतिपा कुल के कोरी थे। राहुल ने इन्हें ब्राह्मण भी लिखा है। हजारीप्रसाद द्विवेदी टेण्टणपा को इनसे अभिन्न समझना ठीक नहीं मानते। अमर नागार्जुन का नाम परम्पराओं का विचार करते समय आ चुका है। नागार्जुन के विषय में यह निश्चित नहीं है कि वह एक थे या अधिक। हजारीप्रसाद ने दो की ओर अपनी नाथ सम्प्रदाय मे इंगित किया है। डाक्टर मोहनसिंह ने बोयेस को उद्धृत करते हुए 10वीं सदी बताया है। अलबेरूनी में नागार्जुन का सिद्ध रूप में उल्लेख करते हुए उन्हें अपने से एक सौ वर्ष पूर्व हुए होंगे ऐसा ही अंदाजा लगाया है। अर्थात् लगभग 930 ई.।[2]

गोरख की ऐतिहासिकता

तारानाथ के अनुसार बौद्धरूप में गोरख का नाम अनुपलब्ध है किन्तु हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार रमणवज्र नवनाथों में गोरक्षनाथ को एक आदि स्थान पर भी नहीं गिनाया है उसका कारण यह बताया जाता है कि गोरक्षनाथ (श्रीनाथ) से ही नवनाथों की उत्पत्ति बताई जाती है। इन्हीं से ब्रह्मा विष्णु तथा महेश भी जन्मे हैं। विचारणीय बात है कि नवनाथों में से एक भी न होकर भी गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्र के शिष्य ही होते हैं।

पोथी रतन ज्ञान में भी एक परम्परा दी हुई है। मछंदर, गोरख रतननाथ

---

1 डा. बटव्याल ने नागार्जुन और मत्स्येन्द्र के एक ही होने की सम्भावना प्रकट की है। मोहनसिंह ग्रंथों में नागार्जुन भी [illegible] के [illegible] के निवासी बताये जाते हैं। यह कारण स्पष्ट नहीं है।

1 मोहनसिंह, डा. [illegible] के अनुसार इनकी 12वीं सदी में मृत्यु मानते हैं। [illegible] और [illegible] पोथियों के 12 सम्प्रदायों के गुरु माने जाते हैं। [illegible] में यह प्रसिद्ध है। मत्स्येन्द्र के विषय में यह कहा जाता है कि वे गुरु भी [illegible] नेपाल

धर्मदास किसनदास भरपत लक्ष्मनदास धर्मदास सुरदास जोधाराम मथुरादास सैनदास भवानीदास पंजाबदास या सिद्धबाई, गुसाईं हरदास गुसाईं हेमदास रतनज्ञान के लेखक बहुरदास ।[1] गोरख बाबा फरीद से मिले थे जो 1244 में गिरनार आये थे और 1266 में जिनकी मृत्यु हो गई। यहाँ गोरख का मठ है।

गूगा

गूगा नामक व्यक्ति से गोरख का सम्बन्ध उनके ऊपर प्रकाश डालता है। गूगा के पूजक नीच जाति भंगी चमार हैं। पंजाब में गोरखनाथियों की समाधियों के पास ही उसकी समाधि है। गूगा की तिथि पर आगे विस्तारपूर्वक विचार किया जायेगा।

मेवाड़ में बप्पा की तलवार अभी तक ससम्मान सुरक्षित रखी है। कहा जाता है कि यह उन्हें गुरु गोरखनाथ ने दी थी। गुरु गोरख के आशीर्वाद तथा शक्ति के कारण तलवार में शत्रुओं को काट देने की शक्ति थी। बप्पा के विषय में कथा है कि उनका पालन नागरों में हुआ जहाँ वे गोरख को मिले और उनसे उन्होंने तलवार प्राप्त की। जालन्धर ने भी तलवार दी थी। घटना में ऐक्य और सामंजस्य है। बप्पा का समय 8वीं सदी बताया जाता है। बप्पा गुहसेन की नवीं पीढ़ी पर था। गुहसेन की माँ पुष्पावती चन्द्रावती के परमार वंश की थी जिसका अन्तिम राजा हूण था (स्मिथ)। आगे हूण राजा का उल्लेख फिर आयेगा।

कहा जाता है कि जब महाभारत के भीमसेन गर्त पर मूर्छित पड़े थे गोरख ने उन्हें चेतन किया और उन्हें गंगा के मैदानी प्रदेश तथा भूटान का राजा बना दिया। एक और कथा के अनुसार गोरख ने इन्हें नेपाल का राजा बना दिया। अलबेरूनी ने लिखा है (तिब्बती ग्रंथ) ब्राह्मण राजा सामंद (सामंत) कमलु, भीम जैपाल (जयपाल) आनन्दपाल तिरोचनपाल (त्रिलोचनपाल) ने राज्य किया है। पूर्वोक्त राजा सन् 412 हिजरी (सन् 1021 ई में) और उसका पुत्र भीमपाल इसके पाँच या छः वर्ष बाद (सन् 1020 ई मे) मारा गया था।

मत्स्येन्द्रीय जाति

त्रिशूलगंगा के समीप भगवान् नीलकण्ठ (एक जलाशय में एक स्वाभाविक शंखाकार शिला है) यात्रा करने आये थे। गोरख से यहाँ मत्स्येन्द्रीय जाति

कर थे। नहीं बाहर से आये थे। जालन्धर से सम्बद्ध। कमारखना में मन्दिर भी है। धार्मिक ये बताते हैं कि मत्स्येन्द्र, मुक्तिनाथ नैपाल से आये थे। धर्मनाथ नामक गोरखपन्थी धीनोधर कच्छ में 1382 ई में आया था।

1 मोहनसिंह, गोरखनाथ एण्ड मिडिवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म।

के लोगों ने भाकर प्रार्थना की। यह जाति अभी तक नेपाल में है।[1] लोगों ने कहा कि वर्तमान राजा महीन्द्रदेव बौद्धों का अधिक सत्कार करते हैं और हमें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। गोरक्ष ललितपाटन के समीप जाकर मोममती गंगा पर ठहरे। कपाली लोगों के तथा योगेन्द्र के पारस्परिक परामर्शानंतर आपने वर्षा बन्द करदी। तब आपको प्रसन्न करने के लिए मत्स्येन्द्र की यात्रा प्रचलित की गई। योगी चन्द्रनाथ ने इस उत्सव का वर्णन किया है कि वर्ष के पहले दिन मूर्ति को स्नान कराने के अनंतर राजा की तलवार आपके चरणों में रखकर पूजी जाती है। वहाँ एक मास तक निवास करने पर किसी शुभ मुहूर्त और पुण्य दिन में मूर्ति वापस लाई जाती है। यहाँ वि सं 420 में बसतदेव या बसंतसेन को नैपाल की गद्दी पर आपने प्रतिष्ठापित किया। इसी से गोरखा जाति का बपन हुआ। योगी चन्द्रनाथ ने पटियाला राज्यांतर्गत भटिंडा लायब्रेरी के नैपाल के इतिहास तथा मुरादाबाद निवासी पं बलदेवप्रसाद कृत इतिहास को भी सयुत किया है।

नैपाल कथा

नैपाल में बौद्ध परम्परा की कथा मे मत्स्येन्द्र को अवलोकितेश्वर माना है। गोरक्ष गुरु से मिलने नैपाल आये जो कमरी पर्वत पर रहते थे। गोरक्ष न आ सके। नौ नागों को कछुवे के नीचे दबाकर 12 वर्ष के लिए बैठ गए। अकाल पड़ गया। राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बन्धुदत्त अवलोकितेश्वर को मक्खी बनाकर लाये और बुगमा में देवता को प्रतिस्थापित किया। गोरक्ष का और कोई उल्लेख नहीं आता। वंशावली पुराण के अनुसार मत्स्येन्द्र गोरक्ष से मिलने वरदेव के समय आये। 8वीं सदी का मध्यकाल लेवी वरदेव के पिता नरेन्द्रदेव का यही समय बताते हैं। (ब्रिग्स)

किन्तु ब्राह्मण कथा के अनुसार गोरक्ष एक बार नैपाल गए वहाँ उनका ढंग से आदर तथा सत्कार नहीं किया गया। क्रुद्ध होकर उन्होंने मेघों को बन्दी बना दिया तथा उन पर जमकर बैठ गए। वहीं अकाल पड़ा। सौभाग्य से गुरु मत्स्येन्द्र जबर से आ गए और शिष्य को गुरु की अभ्यर्थना में उठना पड़ा जिससे बादल निकल भागे और वर्षा हो गई।

मत्स्येन्द्रनाथ लाललोकेश्वर के रूप में पूजे जाते हैं। साथ मीननाथ नाम से उनके छोटे भाई की पूजा होती है। बागची का मत है कि मत्स्येन्द्र और बुगमा के लोकेश्वर को 14वीं शताब्दी में मिलाकर एक कर दिया गया। नरेन्द्रदेव के काल में मत्स्येन्द्र का कोई उल्लेख नहीं किया गया किन्तु बन्धुदत्त की बुगमा यात्रा का वर्णन किया गया है। बागची समझते हैं कि उक्त साहित्य 16वीं शताब्दी तक लिखा गया होगा।

---

1 योगि संप्रदायाविष्कृति।

ब्रिग्स के अनुसार गोरख ने मेवाड़ियों के शासन का अन्त करवाया था और गोरखों को भूमि दी। 12 वर्ष का अकाल गोरखनाथ ने अपनी शक्ति दिखाने के लिए ही डाला था।

रसालू

अब कुछ निकट सम्बन्धियों को भी देखना ठीक होगा। रसालू जालन्धर का शिष्य था। अनेक सम्प्रदायों में रसालू का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। वह एक चौहान राजा का पुत्र था। राजपूतों के बगर नामक स्थान के एक राजा को वह गोरख के प्रसाद से प्राप्त हुआ था। वह लगभग 1160 ई॰ सन् में जीवित था। वह पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक था। 1024 ई॰ में वह महमूद गजनी से युद्ध करते हुए मारा गया। वह एक भीषण योद्धा था।[1] 1884 में टेम्पल ने रसालू को 8वीं सदी का प्रमाणित किया है। 712 की महम्मद बिन कासिम की सन्धियों में इसका नाम आता है। (ब्रिग्स)

पंजाब में कांगड़ा नामक स्थान पर दुर्गा का प्रसिद्ध मन्दिर महमूद गजनी ने 1009 ई॰ में लूटा था। इस प्रकार रसालू का समय 1009 ई॰ भी हो सकता है।

अन्य निकट सम्बन्धित व्यक्ति

गोरख के विषय में अनेक तथ्य हैं। यदि यह मान लिया जाए कि भर्तृहरि छठी शताब्दी में था तो गोरख का काल छठी शताब्दी से भी पूर्व का निश्चित हो जाता है। गोरख रानी मूना चमारी आसाम (अथवा उड़ीसा) की रानी सुन्दरण भोग के राज्य (13वीं शताब्दी) दिल्ली के रायपिथौरा के समसामयिक राजपूताना के गूगा पीर पेशावर के बाबा रतन (11वीं या 12वीं शताब्दी) पश्चिमी भारत की ओर चले जाने वाले धर्मनाथ राजा अजयपाल तथा शैलपाल कपिल मुनि तथा बाला नाथ हजरत मुहम्मद (छठी शताब्दी) मुहारीपा सिद्ध इस्माइल जायसी के पद्मावत के नायक रत्नसेन के गुरु थे।

यदि अजयपाल गुर्जर सोलंकी था तो उसका समय 1173 ई॰ मिलता है।[4] तथा इस्माइली (मुल्तान) का समय 871—1000 ई॰ तक हो सकता है।

---

1 एन॰ बी॰ [illegible] 0 बोलीनाथ चर्पटराय।
2 [illegible]।
3 मोहनसिंह गोरखनाथ एण्ड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म।
4 राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्य धारा [illegible]।
5 वही

मोहनसिंह ने सूफी इसमाइल का उल्लेख किया है जो 1005 में लाहौर आकर बसा किन्तु यदि बकर साविक के पुत्र इसमाइल से तात्पर्य है तो वह 762 में मरा था। इसमाइल-अल-समानी ने 900 ई० में खुरासान को ट्रांसोजियाना में जीतकर मिला लिया था।

पूर्वोक्त रामचन्द्र तलवार का (जालन्धर के सम्बन्ध में) यदि नाम सामंजस्य से किसी प्रकार (गुर्जर) प्रतिहार गहड़वाल (कन्नौज) वंश से सम्बन्ध हो सकता है तो नागभट्ट द्वितीय (815 ई०) के अनन्तर रामभद्र का ही नाम आता है। राजा हरिश्चन्द्र का समय 1193 ई० है जो गहड़वाल वंश में हुआ। गुर्जर वंश में सारंगदेव का समय 1275 ई० है। नाथसिद्धों में कुछ राजाओं का होना इंगित होता है। यदि हरिश्चन्द्र और सारंग सिद्ध का इनसे कुछ सम्बन्ध होता है तो यह समय निकलता है।

गूगा का गोरखनाथ से भी सम्बन्ध है। गूगा औरंगजेब से लड़ा था। (1659-1707 ई०) गूगा फिरोजशाह से लड़ते हुए मारा गया (1351-1388 ई०) शाह दिल्ली का अधिपति था। टाड के अनुसार गूगा एक राजपूत था जो महमूद गजनी से लड़ता हुआ मारा गया (1024 ई०) । फीरोजपुर की किंवदन्ती के अनुसार वह चौहान था। बिजनौर की किंवदन्ती के अनुसार वह पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक था जो 1192 ई० में मुहम्मद गौरी से लड़ते हुए मारा गया। हिसार के 200 मील दक्षिण-पश्चिम में गूगा के वंशज गूगावत राजपूत बताये जाते हैं। अभयसिंह के समय (1720-50) में निर्मित मण्डौर में एक चट्टान पर कुछ मूर्तियाँ हैं जिनमें 16 योद्धा हैं। जोधपुर के राजों की उस प्राचीन पीठिका में गूगा घोड़े पर सवार दिखाया गया है। गूगा मारवाड़ का वीर योद्धा था। वह मुस्लिम फकीर होने के पूर्व चौहान था जिसका दूसरा नाम जाहर पीर भी था।[1]

यदि गूगा गुग्गक का अपभ्रंश है तो चौहान वंश में गुग्गक प्रथम तथा द्वितीय दोनों ही विग्रहराज द्वितीय से बहुत पूर्व हुए थे जिसका समय 973 ई०

---

1. गूगा की कथाओं में गोरख का सम्बन्ध साँपों पर भी रहता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी नाथसिद्धों के सम्बन्ध में साँपों का उल्लेख किया है। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का मत है कि कणपा या कन्हेरी जालन्धर का शिष्य था। कृष्णपाद कानपाद का ही दूसरा नाम है। इन्हीं को लक्ष्य करके कहते लगता है कि कन्हेरी का असली नाम कर्णदेव था। बाराणस में कन्हेरी वैराग्यवान कहलाते हैं। कालयानी ग्रंथों में भी इसका नाम मिलता है। सम्भवतः ये पहले नागपंथ के शिष्य रहे हों। तदनन्तर भविष्य के हो गये हों, मार्गशिष्यों में इनका नाम भी लिया जाता है क्योंकि इन्होंने योग मार्ग छोड़कर वामाचार को ही प्रधानता दे डाली है। डा० बड़थ्वाल ने कन्हेरी की एक हिन्दी रचना का भी उल्लेख किया है।

है। कुल मिलाकर 100 पूर्व माना जा सकता है। जिसके द्वारा लगभग 973 ई० समय निकल आता है।

गोपीचन्द

गोपीचन्द का समय भी काफी उलझन डालता है। डा० कालिदास नाग के अनुसार 12वीं शताब्दी तक गोरख से गोपीचन्द के योगदीक्षा प्राप्त करने की कथा गुजरात में प्रसिद्ध हो चुकी थी। मावे का मत है कि 12वीं सदी में महाराष्ट्र में नाथ सम्प्रदाय फैल चुका था। उसे उज्जैन रंगपुर, धारा नगरी कंचनपुर का राजा कहते हैं। सुधाकर द्विवेदी का मत है कि यद्यपि लोग अपने गीतों में गोपीचन्द को बंगाले का राजा कहकर गाया करते हैं तथापि बंगाले में इस कथा का अल्प और और और ही प्रकार से प्रचार होने से और राजपूताने में तथा मालवा प्रान्त में इस आख्यायिका का विशेष प्रचार होने से हो सकता है यह गोपीचन्द राजपूताने या मालव का कोई राजा रहा हो।

चन्द्रनाथ योगी का मत है कि गोपीचन्द की राजधानी धारा नगरी है जो कि मध्य प्रदेशीय मालवा प्रान्तस्थ मांडूगढ़ के समीप है, वे बंग देशस्थ ढेला पाटन में उसको नहीं समझते। गोपीचन्द की एक बहन चम्पावती थीं बंगाल में ब्याही थी। कंचनपुर के राजा का समय 11वीं शताब्दी है।

हालदार के अनुसार पंजाबी किंवदन्तियों में गोपीचन्द उज्जैन का राजा है किन्तु उसका घर गौड़ बंगाल है। गौड़ के विषय में विद्वानों में स्वयं मतभेद है। कितने ही लोग ऐसे प्राचीन काल में मध्य प्रदेश के निकटस्थ मानते हैं हिन्दी किंवदन्ती समान कहती है। आपची महोदय ने मराठी और गुजराती किंवदन्तियों की परीक्षा करके इस तथ्य का निष्कर्ष निकाला है कि गोपीचन्द गौड़ बंग के तिलकचन्द्र का पुत्र था। बंगाली परम्परा के अनुसार गोपीचन्द विमलचन्द्र का पुत्र था जो स्वयं मालवा के राजा भर्तृहरि का भाँजा था।

गोपीचन्द बंगाले के राजा थे। भर्तृहरि की बहन मैनावती इसकी माता थी। मैनावती के गोपीचन्द और चन्द्रावती दो सन्तान हुईं। भाई के साथ मैनावती ने गोरख से दीक्षा ली। चन्द्रावती का ब्याह सिंहल द्वीप के राजा उग्रसेन से हुआ। बालकराम गोपीहार के अनुसार बंगाल के चन्द्रनगर के राजा से हुआ। समय 1027 ई० है। पिता के मर जाने पर गोपीचन्द भोग में पड़ गया। माता के समझाने पर जालन्धर से दीक्षा ले कनफटा बन गया। सिद्ध हो गया। पीछे से चन्द्रावती को भी योगिन बनाया।[2] पास राजा बनता के चुनाव

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2 मोहनसिंह, गोरखनाथ एण्ड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म पृष्ठ 7।

3. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

से हुए थे। 8वीं से 12वीं शताब्दी तक तीसरे राजा ने धर्म पूजा चलाई, इसमें रामाई पंडित को देवपाल की बहन मैना ने सहारा दिया। अगले राजा ने पाशुपत मन्दिर बनवाये। देवपाल का समय 815 ई है इसके बाद विग्रह शूरपाल का समय 854 ई ।

बंगाल में गोपीचन्द के गीत मानिकचन्द्र के गीत कहलाते हैं। मानिकचन्द्र गोपीचन्द का पिता है मानिकचन्द धर्मपाल का भाई था। धर्मपाल का समय 759 ई है। तुहफ़ात-उल-करम में गोपीचन्द (पीर पठाओ) सिन्ध के पीर धर का वर्णन है जिसने दयानाथ के अधिकार से पहाड़ छीन लिया था। ब्रिग्स के अनुसार यह समय 1209 ई है। कराची से आगे चलकर 'पीर पुठा' नाम से मुसलमान तथा 'राजा गोपीचन्द' नाम से हिन्दू एक बड़ी इमारत के खंडहर को पुकारते हैं।

भर्तृहरि

बंगाली परम्परा का विमलचन्द्र तिब्बती परम्परा के अनुसार भर्तृहरि का समसामयिक था तथा धर्मकीर्ति का भी समसामयिक बतलाया जाता है। जो 7वीं शताब्दी का समय है। भर्तृहरि की मृत्यु एक मत के अनुसार 650 ई में हो गई थी। प्रयाग प्रान्त में चिनारगढ़ में भर्तृहरि को धूनी आज तक विद्यमान है जो प्रयाग से लगभग 50 कोस की दूरी पर मिरजापुर जिले में है।

गोपीचन्द्रनाथ के अनुसार उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्त की पुत्री का एक ब्राह्मण से विवाह हुआ। उस ब्राह्मण के एक ब्राह्मणी से भर्तृ नामक पुत्र हुआ।

भाई विक्रम क्षत्रिया से उत्पन्न हुआ था विक्रम शालिवाहन से युद्ध में मारा गया। इस विजय का स्मारक शालिवाहन ने संवत चलाया जो आज 1845 है।[1] अतः[2] 1960 विक्रम सम्वत का प्रतिष्ठाता विक्रम शालिवाहन से लड़ने वाले विक्रम से 135 वर्ष पहले हुआ। ब्रिग्स ने 1076-1126 ई समय लिखा है।

भर्तृहरि ने पतंजलि के महाभाष्य पर टीका भी लिखी है। गोपीचन्द्रनाथ एक योगी के लिए इस बात को संभाव्य नहीं मानते।

भर्तृहरि का पिंगला से सम्बन्ध है, एक कहानी के अनुसार पिंगला नाम की स्त्री का पति परमारों का अन्तिम चक्रवर्ती राजा एक हुआ था। एक कथा के अनुसार रानी पिंगला धार (मालवा) के राजा भोज की पत्नी है जिसका समय 1018-1060 है।

---

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2. गोपीचन्द्रनाथ के लिखने के समय ई 1960।

चौरंगीनाथ

पंजाब पट्टी की हस्तलिखित प्राणसंकली में चौरंगीनाथ ने अपने को शालवाहन सुत कहा है।[1] यह ग्रंथ काफी परवर्ती प्रतीत होता है। किन्तु इसकी भाषा में प्राचीन अपभ्रंश का प्रभाव दिखाई देता है। यह चौरंगीनाथ ही योगी परम्परा में पूरण भगत के नाम से ज्ञात है। गोरख ने ही इन्हें दीक्षा दी थी। चौरंगीनाथ ने शाहूस्स भगवत को पंथनाथ बनाया। जिस तालाब पर योग सिखाया वह सियालकोट ग्राम से चार कोस पर दक्षिण दिशा में वर्तमान है और देवनाथा बौहड़ के नाम से प्रसिद्ध है इस पर चौरंगी की धूनी है। जिसके पूजनार्थ माघ मास की चतुर्दशी को साधारण मेला लगता है। यह स्थान सियालकोट के समीप है। आजकल यहाँ प्रसिद्ध बौहड़ वाली योगाश्रम नामक स्थान है। डा. मोहनसिंह चौरंगीनाथ की प्राण संकली में 'मीर' शब्द को अमीर का रूप समझकर सुबुक्तगीन (979-997) का अर्थ लगाते हैं। संभवतः तब तक मीर काफी प्रचलित हो चुका हो या 1010 ई. के अब्दुलरहमान (मीरसेन या मीर हसन) का उल्लेख हो। डा. मोहनसिंह ने चौरंगी की इन पंक्तियों को उद्धृत नहीं किया है।

गोपीचन्द के गीतों के गायक कुछ मुसलमान भी हैं। रंगपुर की किंवदन्ती के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र की दो पुत्रियाँ थीं अदुना तथा पदुना। दोनों का विवाह गोपीचन्द से हुआ था। डी. सी. हलदार ने इस बात को गोपीचन्द की अन्य सम्बन्धी कथाओं के साथ रखकर दो तथ्यों की ओर इंगित किया है। देखने पर यही प्रतीत होता है कि उस समय मुसलमान नहीं आये थे। दूसरे अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भेद इतने मुखर नहीं हुए थे।[2]

ग्रियर्सन ने गोपीचन्द को राजेन्द्र चोल के तिरुमलयवाले लेख के गोविन्दचन्द्र से मिलाकर 11वीं शताब्दी का समय नियत किया है।

गुर्जर, प्रतिहार, गहड़वाल कन्नौज वंश के गोपीचंद का समय 1114 है।

प्रबन्धचिन्तामणि प्रथम प्रकाश भी मूलराज के प्रबंध में एक कंथाड़ि का उल्लेख है। राजा को देखकर इस योगी ने अपना ज्वर अपने कंथा में ही संक्रमित कर लिया था।

मधुसूदन सरस्वती का गोरख से कुछ सम्बन्ध बताया जाता है। उनका काल 1700 ई. के लगभग है। इसके अतिरिक्त ज्ञानदास के पद में भी

---

1 जैन मन्दिर यही। प जनाब भी गुरु मच्छन्दरनाथ पधारे। इनकी लिंग संकेत देखिये।

2 — ज्योग्राफिकल ... 1930।

गोरख का नाम आता है ।[1]

परम्पराओं से पहले विशेष महत्त्वपूर्ण नामों को देखकर चुन लिया गया है । तदनन्तर उनके विषय में इंगित करने वाली सामग्री को पूर्व अध्ययनों के फलों से एकत्र करके स्वयं उनका विवेचन किया है । मत्स्येन्द्र नाथ/मच्छन्दर, गोपीचन्द कण्हपा पूर्णनाथ गोरख मीना रसालू, गूगा तथा अन्य महत्त्वपूर्ण नामों से सम्बन्धित कथाओं तिथियों और सम्बन्धों पर दृष्टिपात किया गया है ।

योग पंथों में बहुधा यह देखा जाता है कि नवीन सिद्ध प्राचीन सिद्धों के अवतार माने जाते हैं और उनके नाम भी तदनुसार रखे जाते हैं ।[2] प्राचीन से जहाँ श्रद्धा अधिक हो जाती है वहाँ प्रायः ऐसा ही होता है । बार-बार पूर्व चेतना का आभास प्राप्त करने के लिए यह पुनरुत्थान का प्रयत्न किया जाता है ।

शंकर

यहाँ दो बातें और कह देना आवश्यक है । उस काल में दक्षिण के ब्राह्मण पुनरुत्थान तथा इस्लाम के आगमन का कोलाहल था । डा. बड़थ्वाल के अनुसार यह बात श्रुति परम्परा से प्रकट है कि नेपाल में गोरख और मच्छन्दर का आगमन शंकराचार्य के आने के बहुत पीछे हुआ । मैक्डानल ने शंकर का समय वि. सं. 845-907 तकी निर्धारित किया है । इस विषय पर अधिकांश प्रायः एकमत हैं कि शंकर का समय ई. सन् 8वीं शताब्दी का अंतिम भाग है । आचार्य देवदत्त ने हिंदू रीति-रिवाज से पहले का नेपाल में प्रवेश दिया था । अर्थात् लोग हिन्दू रिवाज पहले से ही जानते थे । शंकर का प्रभाव विद्युतगति से फैला था । डा. बड़थ्वाल ने वेदान्त के अद्वैत की छाप गोरख में देखकर इस समय को 150 वर्ष के लगभग माना है । शंकर ने नेपाल में यदि बौद्धमत को पदच्युत कर दिया होता तो मच्छंदर नाथ की वहाँ पूजा कैसे होती । शंकर ने इसका नया दी थी । नाथ सम्प्रदाय ने उसे वहाँ पूरा किया । यही अधिक सम्भव लगता है । 150 वर्ष का लम्बा समय ठीक नहीं जँचता । शंकर ने बुद्धिवादी धर्म में चेतना फैलाई थी और उसके लिए इतना लम्बा समय व्यर्थ है । शंकर ने दिग्विजय की थी । वे जगह-जगह स्वयं चलकर गए थे ।

---

1 बन कंदर धरनीर तू रस चोरस सुपरेस ।
मतरैन मौर मरथी न लागा हमिदेस ॥ —गुरुग्रंथ पुरस्कारी ।

2. डा. बड़थ्वाल योग प्रवाह ।

गोरखनाथ का सबसे पुराना मंदिर अलाउद्दीन ने ढहाया था। कहा जाता है कि यह मन्दिर बहुत पुराना था यहाँ तक कि उसके शिव जी के द्वारा त्रेता युग में बनाये जाने की बात भी कही जाती है। अलाउद्दीन का राजत्व काल 1353-1373 ई है। इससे यही सिद्ध होता है कि नाथ सम्प्रदाय इन की घटनाओं के अन्दर में ही हो गया था।

डा पहीदुल्ला के अनुसार गोरख का समय 8वीं शताब्दी है। जिसे बड़थ्वाल ने खंडित किया है। इस प्रकार गोरख 500 ई 700 ई तथा 1000 ई में तथा परवर्तीकाल में भी मिलते हैं।

गोरख का समय

पं हजारीप्रसाद ने मत्स्येन्द्रका काल निश्चित किया है। प्र चं बागची द्वारा सम्पादित कौल-ज्ञान-निर्णय का समय 11वीं शताब्दी है। अतएव मत्स्येन्द्र उससे पूर्व हुए। अभिनव गुप्त का समय उनकी बृहतीवृत्ति 1015 ई से ज्ञात है। उनका क्रम स्तोत्र ई सन् 991 समय का है। उन्होंने मच्छन्द प्रभु को नमस्कार किया है। अतः इस समय से भी पूर्व ही हुए। वज्रयानी सूची के अनुसार मीनपा का समय राजा देवपाल (809-845 ई) नवम् शताब्दी का मध्यभाग है। जालन्धरपाद मत्स्येन्द्र के समसामयिक थे। राजेन्द्र चोल का समय 1063-1112 ई है। अतः उससे लगभग 100 वर्ष पूर्व रखने का औचित्य पूर्वोक्त समय पर ही पहुँचाता है। फर्कुहार 13वीं सदी के प्रारम्भ में गोरख को मानते हैं। कबीरी की कथा ऊपर देख चुके हैं। प्रबन्ध चिंतामणि के अनुसार वह 998 सम्वत् के लगभग है।

ग्रिग्स ने कबीर, नानक सम्बन्धित कथाओं से गोरख को उनका पूर्ववर्ती स्वीकार किया है। मुस्लिम आक्रमण के अनुसार पुना ज्ञानेश्वर इत्यादि की कथाओं से भी वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। बंगाल की शैव बौद्ध परम्परा

---

1. गोरीनाथ कविराज एम ए भाष्यम् १।
2. गोरख, मच्छी गोपीचन्दा ता मन सौ मिलि करैं कल्पना।
   साखी गोरखनाथ मनु। कबीर ॥

कबीर की गोरखनाथ की गोष्ठी में गोरख अपने को मत्स्येन्द्र के पुत्र तथा आदिनाथ के पौत्र कहते हैं। 1 वीं सदी के रज्जब ने भी गोरख का नाम अपनी कविता में लिया है। आदि ग्रंथ में भी गोरख का उल्लेख है। नानक (1469-1538) से गोरख ने गोष्ठी करने को कहा है। जिससे ज्ञात होता है गोष्ठी संकलन पुराना था। अमरदास 1552-74 के समय में सिख और जोगी लड़े थे जिसमें गोरख मंदिर नष्ट हो गया था।

की जांच के अनुसार वे 1200 ई॰ के पूर्व ही समय नियत करते हैं। बल्कि 100 वर्ष और पूर्व ही अर्थात् 1100 ई॰ के लगभग। नेपाल की बौद्ध-शैव परम्पराओं से आपने समय को दूसरी ओर 7 या 8वीं शती तक खींचा है। प्रवाद है कि शंकर का प्रभाव पड़ा था। उन्होंने ही मछिरा पान होने से योगियों को पतित कह दिया था। 1287 में सोमनाथ के मन्दिर में गोरख पर लेख अंकित होने से आप उन्हें 100 वर्ष पुराना मानते हैं।

डा॰ मोहनसिंह ने हिन्दी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक आधार पर निर्धारित किया है कि गोरख का समय 11वीं शताब्दी था।

उपर्युक्त समय निर्धारण के साथ एक महत्वपूर्ण स्रोत और देख लिया जाए। राहुल सांकृत्यायन ने सहजयानी ग्रन्थों का समय काफी खोज के बाद निर्णीत किया है। तिब्बती तथा भारतीय परम्पराओं को तथा भाषा वैज्ञानिक होने के नाते भाषा की परीक्षा करके भी अपने आधारों को प्रकट किया है। उन्होंने हिन्दी-काव्य-धारा में भी निम्नलिखित तिथियाँ दी हैं। सरहपा 760 ई॰ स्वयम्भू देव 790 ई॰ लुईपा 830 ई॰ विरूपा 830 ई॰ डोंबिपा 840 ई॰ दारिकपा 840 ई॰ गुंडरिपा 840 ई॰ कुक्कुरिपा 840 ई॰ कमरिपा 840 ई॰ कण्हपा 840 ई॰ गोरखपा 845 ई॰।

शंकराचार्य का जिनका गोरखनाथ पर कुछ प्रभाव मिलता है, समय 8वीं शताब्दी का अन्तिम समय है। यह ऊपर देखा जा चुका है।

इस प्रकार अनेक तथ्यों को देखते हुए प्रस्तुत सामग्री इसी को स्वीकार करने को प्रेरित करती है कि मत्स्येन्द्र जो नवीं शताब्दी के मध्यभाग में हुए। गोरखनाथ उनके शिष्य होने के नाते उन्हीं के जीवन के पिछले भाग में सम सामयिक थे। जालन्धर का समय भी इससे प्रगट हो जाता है।

रामानुज

नाथ सम्प्रदाय पर वैष्णव प्रभाव का स्रोत जानने के लिए यही याद रख लेना ठीक होगा कि रामानुजाचार्य का उदय 11वीं शताब्दी के प्रारम्भिक समय में हुआ था। अतः गोरख के समय से 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक (अर्थात् 847 से 1000 तक) नाथ सम्प्रदाय का स्वरूप अपने प्रारम्भिक (847 से पहले) और उत्तर स्वरूप (1000 के बाद) से भिन्न हो सकता है। इसका इंगित होता है। इसपर विचार किया जाएगा। गोरख का समय इस प्रकार 800 ई॰ और 1100 ई॰ के मध्यकाल में पड़ता है।

पूर्ववर्तियों का उत्तरी भारत तथा दाक्षिणात्य में प्रभाव—

प्रथम अध्याय में गोरख की पृष्ठ भूमि पर दृष्टिपात करते समय योग और तन्त्र का विवेचन हो चुका है। ऊपर वज्रयानी सहजयानी सिद्धों का

वर्णन किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय की किंवदन्तियों घटनाओं से यह प्रकट होता है कि योगी सम्प्रदाय का गोरख के पहले भी बहुत काफी प्रभाव था। एक ओर ह्रास प्राय: बुद्ध मत था दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म उठ रहा था। उस समय इन दोनों से अलग एक सम्प्रदाय उठने लगा था जिसका अन्तिम स्वरूप गोरखनाथ के हाथों निर्धारित होने वाला था। विभिन्न परम्पराओं में योगियों के नाम प्रकट करते हैं कि योग के माध्यम के कारण एक ही व्यक्ति को अनेक-अनेक गोत्र स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाते थे। जनता अर्थात् साधारण जनसमूह इनकी सिद्धियों और चमत्कारों के कारण इनकी पूजा करने को भी प्रेरित होता था। थोड़ा बहुत भेद करके इनका जाल उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक न केवल भारत की आधुनिक ज्ञात सीमा में वरन् तिब्बत तथा सीमाप्रांत तक के पार तक फैला हुआ था।

यह विराट् वर्णन है। ब्राह्मण धर्म के अनेक रंगीन फूलों के विराट् विस्तार में यह एक अद्भुत वनस्पति प्रसार था जिसपर संस्कृति का विद्यार्थी दृष्टिपात करने पर यदि एक ओर विस्मित होकर अवाक् खड़ा हो जाता है तो दूसरी ओर मोहित हुए बिना भी नहीं रह पाता। इलियट ने ठीक ही एक मनोरम वन की संज्ञा दी है। कहीं विराट् वृक्ष की सम्पन्न छाया है तो कहीं एक अकेला वृक्ष सिर हिलाता हुआ हवा को चुनौती दे रहा है। ब्राह्मण धर्म के प्रभाव में यदि संस्कृत ने भारत को बांधकर रखा था तो योगि सम्प्रदाय के श्रमणों भाषा के बोल और बचनों योग के रहस्य की अनुभूतियों ने इस विराट् प्रसार भूमि को एकत्व के सूत्र में—भावनाओं में—बांध रखा था।

दत्तात्रेय सम्प्रदाय का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। यहाँ उसको दोहराने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना कह देना काफी होगा कि उक्त सम्प्रदाय के काफी लोग उस समय थे जिनसे योगियों को टक्कर लेनी पड़ती थी। यह ऊपर कहा जा चुका है कि दत्तात्रेय मत के अनुयायियों का योग से सम्बन्ध अवश्य था।

महाकाल संहिता में काश्यप दुर्वासा दत्तात्रेय चन्द्रमा बृहस्पति विभवा असित दक्ष मृकंडु नारद कपिल व्यास कालाग्नि जामदग्नि दाल्भ कविरर्घ शाण्डिल्य गौतम मनु, नाचिकेता भरद्वाज श्वेताश्वतर मौर्वी दधीचि च्यवन ऋचीक पराशर, शातातप लोमश जैगीषव्य देवल पैठीनसि पौतिहम्य संवर्ति अगस्त्य आसुरी उपमन्यु, गर्ग याज्ञवल्क्य कठ उद्दालक आरुणि आश्वलायन शौनक पञ्चशिख कात्यायन कहतभग इत्यादि वेदवेदाङ्ग पारगों का नाम गिनाया गया है सम्भवत: दत्तात्रेय कपिल जैसे थे। ब्राह्मणों को स्वीकृत किन्तु कुछ सीमा तक अलग भी।

दत्तात्रेय के जन्म के विषय में पौराणिक कथा से कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

केवल इतना समझा जा सकता है कि वे ब्रह्मा विष्णु महेश के सार स्वरूप थे। बीज रूप उनके मत का आधार था। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में 'दत्तात्रेयादि सिद्धानाम् नवनाथा तथैव च"। यहाँ नवनाथों के साथ उन्हें ऊँचा स्थान दिया गया है।

नाथ सम्प्रदाय के पूर्ववर्तियों पर प्रकाश डालने वाली योगिसम्प्रदाया-विष्कृति में कुछ विचारणीय दंतकथाएँ हैं। धारानगर में मत्स्येन्द्रनाथ ने वैताल भूतों[1] के राजा को अपने वश में किया क्योंकि उसका औद्धत्य देखकर यह आवश्यक हो गया था। फिर क्षमा याचना करने पर उन्होंने उसको छोड़ दिया।

प्रयागतीर्थ में मत्स्येन्द्र का अपने बड़े भाई वीरभद्र से युद्ध हुआ। वीरभद्र के सर्पास्त्र प्रयोग करने पर मत्स्येन्द्र ने गारुड़ास्त्र का प्रयोग किया और उसे पराजित किया।

श्री महादेवी हिंगलाज पर्वत पर मत्स्येन्द्र को देवी के दर्शन निमित्त चढ़ते देखकर अष्ट भैरवों ने उन्हें रोका। मत्स्येन्द्र ने अनुनय-विनय किया किन्तु उनके निरन्तर बाधा डालते रहने पर उनको बाँध कर पटक दिया। देवी के पास पहुँचने पर देवी ने 'मत्स्येन्द्र बेटा' कहकर अपनी गोद में बिठाया और समझा-बुझाकर अष्ट भैरवों को बन्धन से मुक्त कराया।

रेवन नाथ जिस समय शिव से मिलने जा रहे थे तब अष्ट भैरवों ने उनके शिव तक पहुँचने में बाधा डाली। आपको अत्यन्त क्रोध आया और आपने उनको युद्ध के लिए ललकारा। अन्त में उन्हें पराजित करके शिव को साष्टांग प्रणाम किया।

गोरक्ष ने वीरभद्र को हराकर ही अपने गुरु मत्स्येन्द्र के शव का उद्धार किया था। उस समय शिव ने वीरभद्र से कहा था यद्यपि यह सत्य है कि तुम गोरक्षनाथ से किसी प्रकार निम्न कोटि में नहीं हो तो भी अभिमान ने तुम्हें पराजित कर दिया।

जब गोरक्षनाथ ने मत्स्येन्द्र की ओर सेवा की तब 64 योगिनियों ने मत्स्येन्द्र की वन्दना की। इतने ही में 52 भैरव 8 वसु तथा वरुण आदि आ पहुँचे और उन्होंने वर दिए।

---

1 भूतों के अपदेवता के समान अनेक जगह पूजा जाता है। कोष—दक्षिण कन्नड़ा के 'भूत पूजा' नामक लेख में एच० वैरहाम ने लिखा है कि भूत वे देवता या शक्ति हैं जो ग्रामीणों को महामारी के रूप में चौंकते हैं और उन्हें एकस्वामी या गाँव के मुखिया का सम्मान करने की प्रेरणा देते हैं, निश्चय करते हैं जब एकस्वामी या ग्राम-स्वामी भूतों की पूजा करने योग्य तथा उनकी कृपा के पात्र समझे जाते हैं।

—इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया 23-11 1947।

माटुल ग्राम में भगवती भद्रकाली से युद्ध हुआ। तब गोरक्ष से शिव ने आकर समझौता कराया। भद्रकाली ने यह कहकर क्षमा माँगी कि आपका अपने कल्याण के लिए अनपेक्षित भी सिद्धि-चमत्कार मुमुक्षु जनों को अपनी ओर आकर्षित करने में सहायक और इसी हेतु से अपेक्षित और प्रशस्य है।

सेतुबन्ध रामेश्वर में मत्स्येन्द्र की हनुमान से मुठभेड़ हो गई। मत्स्येन्द्र ने हनुमान से कहा कि इस पथ से हट जाओ कारण कि हम नाथ हैं और तू दास है पर हनुमान तबतक नहीं हटे जबतक युद्ध में चित नहीं हो गए। यहाँ भीम को सिद्ध वेश में जाने से रोकने वाले हनुमान का स्मरण प्रयोजनीय है। हनुमान सम्भवतः सदैव ही सिद्ध अथवा उसके निकटतर सम्प्रदायों के विरुद्ध रहे थे।

आगे हनुमान के निमन्त्रण पर मत्स्येन्द्र ने सिंहल द्वीप के राजा के शव में प्रवेश किया था ताकि रानी की पुत्रोत्पत्ति की अभिलाषा को पूर्ण कर सकें। तदनन्तर वे स्वयं मोह में पड़ गए। वहाँ मत्स्येन्द्र के दो पुत्र हुए, परशुराम और भीमराम. गोरख ने गुरु का रखा हुआ शरीर देखा। जब योगी नियत समय पर समाधि न खोले तो समझना चाहिए कि समाधिष्ठाता ने दुगुना समय और संकल्पित कर रखा है। पर फिर गोरक्ष चले। हनुमान पहरे पर खड़े थे गोरख ने हनुमान से युद्ध नहीं किया। गोरखनाथ कलिंगा नामक वेश्या के साथ सिंहल में घुस गए। सिंहल की रानी पद्मिनी थी यहाँ गोरक्ष ने मत्स्येन्द्र को छुड़ाया और मोहनिद्रा दूर की परशुराम राजा हुआ। भीमराम योगी हनुमान के लंका में योगी अवरोध के बाद योगियों ने फिर आना-जाना शुरू कर दिया।

हनुमान का रक्षक होकर खड़ा रहना सम्भवतः एक प्रसिद्ध बात थी। जायसी ने भी राजा रत्नसेन की यात्रा में इस प्रकार लिखा है। —पोथी लोग कहते हैं कि फिर आगे दक्षिण लंका के निकट (हम लोग) हनुमान की हाँक सुनेंगे। (उस हाँक को सुनकर) देखें कौन (साहस कर बिना घबड़ाए) पार होता है (और) कौन (घबड़ाकर) वहीं रह जाता है। कहावत है कि जब रामचन्द्र लंका को जीतकर इस पार सेतुबंध के पास आए तब वहाँ के साधु जन बड़े विनय से कहे कि कुछ काल बीते जब राक्षसों के सन्तान बहुत बढ़ जाएँगे तब वे लोग इस पार आकर हम लोगों को नाना प्रकार की पीड़ा देंगे।

---

1 वृद्धावस्था के कारण या श्रम के कारण शीघ्र स्वप्न विकार हो सकता है।

* योगि सम्प्रदायाविष्कृति।

3 हनुवंत बैर समुद जुगि ठाढ़ा, बुड़के मार दोर को माड़ा। पृष्ठ 138 सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

इस पर राम ने हनुमान को आज्ञा दी कि तुम अपने अंश के एक दिव्य पुरुष को नित्य यहाँ का चौकीदार कर दो।

किन्तु जायसी की स्वयं भूगोल के विषय में कोई दृढ़ धारणा नहीं थी। सम्भवतः वे सिंहल और लंका को समीप समझते थे या अलग-अलग। यह भी उनके एक दोहे से प्रकट होता है।[1] सुधाकर द्विवेदी ने कदली वन को महाभारत का ही कदली वन माना है जहाँ के लिए हनुमान ने भीम से स्पष्ट कह दिया था

विना सिद्ध गति वीर गतिरत्र न विद्यते।

(महाभारत वनपर्व एक 146 अ 92 श्लोक)

प्रो जायसी तथा हजारी प्रसादजी ने इस विषय पर काफी मननपूर्वक अपना-अपना विचार प्रकट किया है कदली वन का बौद्ध सम्प्रदाय में एक विशेष महत्त्व रहा है सिंहल और लंका को मिला देना आगे इतिहास के अनुसार का ही क्रम प्रतीत होता है इस विषय में विस्तारपूर्वक न जाकर इतना इंगित कर देना काफी होगा कि कदली वन में भीम का जाना ब्राह्मण वर्ग को असह्य था यह आवश्यक नहीं कि उस समय कदली वन का महत्त्व ज्ञात ही था उत्तर पूर्व के इन प्रान्तों में चीनाचार नाम से जो मद्याचार जैसा सम्भवतः किसी-न-किसी रूप में यहाँ प्राचीन काल से पनपता चला आ रहा था न केवल उसे शिव सम्प्रदाय के उच्चस्तर ने पुरस्कृत था वरन् आर्य सामाजिक व्यवस्था ने भी उसे अस्वीकार कर दिया था हनुमान जैसे सैनिक रूप ने इसे रोक रखा था यह अनुमान प्रस्तुत प्रमाणों पर ही आधारित है। चीनाचार की एक बौद्ध कथा है चीन जाकर वशिष्ठ ने प्रार्थना की—हे महादेव तुम जो बुद्धरूप में अधिनश्वर हो मेरी रक्षा करो मुझे पूर्ण करो वेदबाह्य आचार तुममें निहित है नग्न सिद्ध दिगम्बर, रक्त पानोन्मत्त मदिरा मांस खाकर अंगनाओं का भोग करते हैं, मद्यैर्मांसैः प्रापिबन्ति रमयंति वारांगनाम्। ब्रह्मयामल में वशिष्ठ जैसी स्थान महान् तांत्रिक पीठ कामाख्या जाते हैं, इसी में महाचीन में मदिरा पीते बुद्ध को विष्णुरूप कर वशिष्ठ ने संबोधन किया है, प्राचीन वैदिककाल में भी पूर्व का देश अशुद्ध माना जाता था। लौकिक काल में भी इसका उदाहरण मिल जाता है।[2]

दूसरा विचार योगी हनुमान के अतिरिक्त किसी को अपने योग्य नहीं समझ सकता क्योंकि राम और कृष्ण इत्यादि ब्रह्मचारी नहीं थे परवर्ती

---

1. पद्मावत पद सिंहल लंका समीप
   इति जायस पंथ पुस्तक पृष्ठ पद्मावत केरि दास p 138 सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।
2. अंगनांग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च
   तीर्थयात्रा विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति

काल में कृष्ण तो योगिराज के रूप में स्वीकृत कर लिये गए वे स्वयं शिव को भी पार्वती के कारण कुछ मतों ने अस्वीकृत कर दिया था।[1]

इस प्रकार हनुमान का स्वरूप या मत मानने वाले कुछ लोग अवश्य थे जिनसे योगियों की मुठभेड़ हो जाया करती थी। इस सम्बन्ध में एक बात विशेष विचारणीय है हनुमान पर गणेश की ही भाँति सदैव सिंदूर क्यों लगाया जाता है कालभैरव पर काला ही रंग चढ़ाया जाता है। सिंदूर में पारा होता है। इस पारे का होना भी कुछ महत्त्व रखता है। पारा स्वयं एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है इस सम्प्रदाय का कुछ रसेश्वर मत से सम्बन्ध रहा होगा ?[3]

अपर परम्पराओं में दिये गए नाम तथा उपर्युक्त किंवदन्तियाँ का इंगित निम्नलिखित तथ्यों को प्रकट करता है बंगाल के योगियों में कुछ लोग यह प्रकट करते हैं कि गोरख के पूर्व कुछ नाथ हो चुके थे जिनका नाम इस प्रकार है। कश्यप शिव आदिनाथ अनन्तापि (अस्मयान) अनादि बटुक वीरभैरव मत्स्येन्द्र मीन तथा सत्य।

वीरभद्र अष्टभैरव भैरव महाकाली इत्यादि अनेक सम्प्रदाय थे जिनका परस्पर संघर्ष हो जाया करता था। शान्ति पर्व महाभारत का '28-वां अध्याय इस ओर कुछ आलोक फेंकता है। उस में यहाँ शिव की 1008 नामों से स्तुति की है। 'आपचंड मुंड दंड दंडधारी दंडी दंडि मुंड है। आप आवमान मुंड जटिल मर्दनशील और गाल बजाने वाले हैं आप सबसे पहले पूजा कराने की इच्छा नहीं रखते। आप नाचने-बजाने में संलग्न रहते हैं आप चिताभस्म प्रिय हैं कपालपाणि हैं आप विकृत मुखवाले वृषभचिह्न कच्चे पक्के मांस के लोभी और तुंबी युक्त वीणा-प्रिय है। आप अघोर, घोर और अतिघोर रूप हैं आप हुं हुं हुं कार स्वरूप हुं हुं कार प्रिय चमरक आदि गुणों से युक्त और गिरि शृंग निवासी हैं आप हृदय के मांस के लोभी हैं। आप केलि प्रिय और कलह प्रिय हैं आपने ही भग देवता की आँखें और पूषा के दांत नष्ट किए हैं इसी प्रकार बहुत-सी स्तुति करने पर शिव (रुद्र) दक्ष पर प्रसन्न होकर बोले मैंने पहले के कल्पों में तुम्हारे धर्मों से भिन्न वाला मैंने षडंगवेद सांख्य और योगशास्त्र से युक्ति द्वारा पाशुपतधर्म उत्पन्न किया है इस स्थिति में शिव के अन्य अनेक नाम भी आते हैं। जैसे ऊर्ध्वकेश व्योमकेश स्वयं उन्हें एक स्थान पर (काम) कहा है।

---

1 वर्तमान में शिव लेकर पुनः पार्वती का पूजा करना अस्वीकार कर न था। ...। बालस्वरूप।

3 हनुमान कथनी नाथ पंथ के मूल आधार माने गए हैं भैरवमत के ... हैं जैसे हनुमान तथा गणेश का मूर्ति स्वरूप रखते हैं

4 ... हनुमान का गणेश ... करना पूजा कहा जाता है।

इनके अतिरिक्त भी अनेक सम्प्रदाय तथा मत उपस्थित थे।[1] जैसे कापालिक कालभैरव पाशुपत आडीकर दिगम्बर[2] अघोर, चीनाचार कौल औघड़ मत्स्य भैरव जटाधारी भीमभस्म तथा स्वयं पूर्ववर्ती अवस्था में नाथ सम्प्रदाय इसके अतिरिक्त और भी भेद थ। कालामुखों में कुछ लोग कालवीर थे तथा कुछ लोग कालमोहन।

ऊपर समय नियत करते हुए अनेक सिद्धों का काल व्यक्त हो चुका है। पूर्ववर्ती तथा परवर्ती ग्रन्थों में आये नामों को एकत्रित कर लिया गया है। इस *प्रकार से जो नाम पं हजारी प्रसाद की सिद्ध सूची से मिलते गए हैं उन्हें* अलग कर लिया गया है। अनेक नाम स्वयं उन्होंने नहीं दिए हैं। वहां वर्णरत्नाकर की नाथ सूची की वज्रयानी सूची से पंडित जी ने तुलना की है उसमें के सभी मिलते हुए नाम अन्तिम सूची में उन्होंने नहीं दिए हैं। इसका कारण कुछ स्पष्ट नहीं होता।

ऊपर वर्णित अनेक ग्रन्थों का उल्लेख सामने रखकर नामों का विभाजन करने में सहायता भी गई है।

सम्प्रदाय की रूपरेखा

इस प्रकार गोरखनाथ का नाम 52वें स्थान पर आता है। राहुल जी के तिथि संवत का आधार लिया गया है यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ववर्तियों में निश्चय ही इस प्रकार क्रम किया जा सकता है तथा परवर्तियों का भी यही क्रम है। केवल इतना इंगित होता है कि सूची में पूर्ववर्ती और परवर्ती गोरखनाथ के नाम में इधर या उधर इस प्रकार विभाजित किए जा सकते हैं। सम्भव है कि पूर्ववर्तियों और परवर्तियों में अनेक व्यक्ति समसामयिक तथा स्थानान्तर में थे। इन नामों से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि परवर्ती काल के सभी सिद्ध गोरख के अनुयायी थ। क्योंकि विभिन्न पंथों में विभिन्न मूल प्रवर्तक हो गए जिन्होंने अपने-अपने व्यक्तिगत मतों को आधार बनाया। पूर्ववर्तियों के विषय में भी ऐसा कहना काफी ठीक होगा क्योंकि प्राय सभी में भेद था। विशेषकर पूर्ववर्तियों में अनेक सिद्धों का नाम वज्रयानी सूची में आने से संदिग्धता बढ़ ही जाती है। क्योंकि मत्स्येन्द्र और जालन्धर का एक ही मत नहीं था। न गोरख का ही मत्स्येन्द्रनाथ के मत से पूर्णतया मिलता था। उनके भेद बहुत न होकर भी थोड़े-बहुत परस्पर अवश्य ही थे। इनका कारण क्या हो सकता है ऊपर उसका उल्लेख हो ही चुका है। अतः सूची बनाते समय इस विषय को भी ध्यान में रखा गया है।

1 शक्ति संगम तन्त्र पुस्तक।

* [illegible]

काल में कृष्ण तो योगिराज के रूप में स्वीकृत कर लिये गए थे स्वयं शिव को भी पार्वती के कारण कुछ भक्तों ने अस्वीकृत कर दिया था।[2]

इस प्रकार हनुमान का स्वरूप या मत मानने वाले कुछ लोग अवश्य थे जिनसे योगियों की मुठभेड़ हो जाया करती थी। इस सम्बन्ध में एक बात विशेष विचारणीय है हनुमान पर गणेश की ही भांति सदैव सिंदूर क्यों लगाया जाता है कालभैरव पर काला ही रंग चढ़ाया जाता है। सिंदूर में पारा होता है। इस पारे का होना भी कुछ महत्व रखता है। पारा स्वयं एक महत्वपूर्ण वस्तु है इस सम्प्रदाय का कुछ रसेश्वर मत से सम्बन्ध रहा होगा ?[3]

ऊपर परम्पराओं में दिये गए नाम तथा उपर्युक्त किंवदन्तियों का इंगित निम्नलिखित तथ्यों को प्रकट करता है बंगाल के योगियों के कुछ गोत्र यह प्रकट करते हैं कि गोरख के पूर्व कुछ योगी हो चुके थे जिनका नाम इस प्रकार है। काश्यप शिव आदिनाथ अलक्ष्यपि (भस्मनाथ) अनादि वटुक वीरभैरव मत्स्येन्द्र मीन तथा सत्य।

वीरभद्र अष्टभैरव भैरव महाकाली इत्यादि अनेक सम्प्रदाय थे जिनका परस्पर संघर्ष हो जाया करता था। शान्ति पर्व महाभारत का 285वाँ अध्याय इस ओर कुछ आलोक फेंकता है। उस में यहाँ शिव की 1008 नामों से स्तुति की है। 'आपचंड मुंड मंड दंडधारी दंडी दंडि मुंड है। आप वामभाग मुंड जटिल गर्दनशील और गाल बजाने वाले हैं आप सबसे पहले पूजा कराने की इच्छा नहीं रखते।[4] आप गाने-बजाने में संलग्न रहते हैं आप चिताभस्म प्रिय हैं कपालपाणि हैं आप विकृत मुखवाले खड्गजिह्व दंष्ट्री कच्चे पक्के मांस के लोभी और तुंबी युक्त वीणा-प्रिय हैं। आप अघोर घोर और अतिघोर रूप हैं आप हूँ हूँ हूँ कार स्वरूप हु हु कार प्रिय समदम आदि गुणों से युक्त और गिरि शृंग निवासी हैं आप हृदय के मांस के लोभी हैं। आप केलि प्रिय और कलह प्रिय हैं, आपने ही भग देवता की आँखें और सूर्य के दांत नष्ट किए हैं इसी प्रकार बहुत-सी स्तुति करने पर शिव (दक्ष) दक्ष पर प्रसन्न होकर बोले मैंने पहले के कल्पों में तुम्हारे धर्मों मे विघ्न डाला मैंने षडंगवेद सांख्य और योगशास्त्र से युक्ति द्वारा पाशुपतधर्म उत्पन्न किया है इस स्थिति में शिव के अन्य अनेक नाम भी आते हैं। यहि ऊर्ध्वकेश व्योमकेश स्वयं उन्हें एक स्थान पर (काम) कहा है।

---

1 दक्षिण में शिव सेवक मृग या पार्वती की पूजा अथवा अस्वीकार करता था।

2 मरकरी भक्तिसार।

3 हनुमान जयन्ती क्षेत्र पंथ के मूल श्लोक माने गए हैं वैताल के एक मन्दिर में शिव हनुमान तथा भैरव की मूर्ति साथ साथ रखी है।

4 देखिए सम्पूर्णानन्द का ब्योरा भगेश आपको पूजा कराना चाहते हैं।

जिन नामों को सूची में विभाजित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता उन नामों को संदिग्ध विभाजन को विस्तार न देकर अलग गिना दिया जाता है ।

1 अक्षय 2 अघोशावन 3 अजय 4 अवध्य
5 एकनाथ 6. करचत 7 कांडारि 8. कुमारी
9 कर्मनाथ 10 केदारि 11 कोरटक 12 गगन
13 पमार 14. गिरिधर, 15 गोविंद 16. चाटस
17 चाटए 18. विपिस 19 जीवन 20 जीवन
21 टोंगी 22 ढण्डस 23 तुषी 24 देवदत्त
25 धौकी 26. धोंगपा 27 नामधारि 28 नाचन
29 नामबोधि 30 निर्दय 31 नेचक 32 पासन
33 पशिहिह 34 पातसीमा 45 बाकलि 36. मटी
37 भद्र 38 भमरी 39 भवनाथि 40. मत्स्यारि,
41. भानु 42 मिपाल 43. मिचित 44 मिचित
45 विभवंत 46. विरूपा 47 विरूपा 48. विविचचन
49 वैराग्य 50. शंभुनाथ 51 सहस्रार्जुन 52 सारदानंद
53 सारंग 54 हरिश्चंद्र

प्रस्तुत तथ्यों में नामों के अतिरिक्त और कोई महत्त्व प्रदर्शित नहीं होता हाँ इन नामों से नाथ सम्प्रदाय की महती शक्ति परिलक्षित होती है 300 वर्षों में ही लगभग इतने सिद्धों का हो जाना तात्कालीन प्रसिद्धि और प्रभाव का रेखाचित्र खींचने में हमारा सहायक है ।

इसके अतिरिक्त नानक की प्राणसंगली में आये नाम भी हजारीप्रसाद ने अपनी पुस्तक में दिए हैं, जिनमें मुहारीपा का नाम में जोड़ दए हैं मुहारीपा को नानक ने गोरख का आध्यात्मिक गुरु कहा है मत्स्यनाथ को ही सम्भवतः उन्होंने अमरनाथ लिखा है ।

शाबर मन्त्र पुरश्चरण में जहाँ ग्रंथकार ने तृतीयोम के अधिकारियों का वर्णन किया है वहाँ उन्होंने एक सिद्धनाथ संहिता से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

अद्वैतज्ञाननिष्ठोयो गौप्त्री संसारपारग
स एव शमदे तृत्या नाधिकारी भवेदिति ।

अद्वैत ज्ञान की यह निष्ठा तथा तृतीयाम से सिद्धिनाथ का सम्बन्ध यही इंगित करता है कि ये नाथ सम्प्रदाय में होकर भी शाक्त उपासना के प्रभाव क्षेत्र में ही थे ।

शाक्तप्रभाव

इसका वास्तविक कारण यही कहा जा सकता है कि शाक्त उपासना की प्रबलता ने इस समय के समस्त धर्म सम्प्रदायों को ग्रस लिया था। सिद्ध नाथ में अद्वैत ज्ञान की यह निष्ठा तथा साथ ही शून्यवाद का अनुष्ठान दोनों की ही सहायता से यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि ये गोरख के पूर्ववर्ती थे या परवर्ती। शक्ति के स्त्रीस्वरूप ने उस समय यदि सारे संसार को ढँक लिया था तो अपने भौतिक आकारों में आकर वह मात्र स्त्री देह में सिमट गई थी। देवता के निराकार का प्रत्यक्षीकरण उस माध्यम से करना अधिक सरल है जो आँखों के सामने हो—साकार हो। स्त्री का समस्त शरीर ही शक्तिपीठ हो गया। उसका शिरस्थलभाग यदि उद्यान में था[1] तो स्तन जालन्धर पीठ कहाते थे और कामरूप में भगस्थान माना जाता था। भारतवर्ष के विस्तृत प्रदेश में जैसे शक्ति पसरकर आ लेटी थी। यह वह स्थान थे जहाँ शिवा का तन कटकट कर टुकड़े स्वरूप धरती पर पतित हुआ था। विन्ध्य से चट्टग्राम तक पूर्व का भाग विष्णुक्रांता कहलाता था। विन्ध्य से दक्षिण का अश्वक्रांता तथा बाकी भारत रथक्रांता। रथक्रांता की सीमा भारत की वर्तमान सीमाओं में ही समाप्त नहीं होती थी। वरन बाह्लीक गांधार उद्यान तथा तिब्बत भी उसमें सम्मिलित थे।

तथापि काश्मीर गौड़ और केरल मुख्य पीठ थे जहाँ अनेक प्रकार से स्त्री की पूजा का विवरण तांत्रिक पूजा के साथ-साथ चल रहा था। शक्तिसंगम तंत्र में इन तीन पीठों की भिन्न रूपा पूजा का वर्णन किया है। परवर्ती युग में इसका आभास इस प्रकार प्राप्त हुआ है—

कृष्णस्तु कालिका साक्षात् राममूर्तिश्च तारिणी।
वराही भुवना प्रोक्ता नृसिंही भैरवेश्वरी
धूमावती वामनः स्याच्छिन्ना भृगुकुलोद्भवः
कमला मत्स्यरूपः स्यात् कूर्मस्तु बगलामुखी
मातंगी बौद्ध इत्येषा षोडशी कल्कि रूपिणी।

—अर्थात् कृष्ण स्वयं कालिका है तारिणी राममूर्ति है। इसी प्रकार भुवना वराही भैरवेश्वरी नृसिंह वामन धूमावती इत्यादि मूल तंत्र में सोलह प्रमुख रूप गिनाये गए हैं। इनमें स्पष्ट ही वैष्णव प्रभाव दृष्टिगोचर है। इसके साथ

1 तन्नो धर्म शरीर का पीठं पूर्वं निर्मित-
तस्य शिरस्थलभागे उद्यानपरिकीर्तितम्
स्तनौ जालन्धर प्रोक्तौ कामरूपं भगं स्मृतं।
मुण्डमालातन्त्र।

व्यक्ति

निरत दिक्काल नियमहीन अर्चना तथा बलि से दूर स्वेच्छा नियम स्पर्श अस्पर्श से अलग सिर में तेल डालनेवाले कपड़े से अलग रख कर साफ करने को ही स्नान समझने वाले लंबे बालों को काढ़कर धारण करने वाले स्वेच्छा चार, दृष्ट मानस धर्म और अधर्म में अभेदी सन्तापी हरि का नाम और तुलसी का स्पर्श न करने वाले बिल्वपत्र को वर्जित और मल से मद को छोड़ने वाले निन्दा और चिन्ता से दूर, साथ ही मद्य पीने वाले मालती से विहार योनि से चुंबन लिंगन इत्यादि में रत अनन्यथी योनि चिंता करके जप करनेवाले ये लोग होम इत्यादि से दूर रहते हैं।

एड़ी और मुख धोने को ही स्नान कहनेवाले न अपनी देह को स्नान न मन को पापी समझनेवाले द्वैत भाव से छूटे हुए छिन्नमस्ता के पूजक श्मशान भस्मविभूतधारी शक्ति के मुख में मुख देकर जप करनेवाले विष्णवीन क्रम में थे।

भूमध्य में कुंकुम उसके बीच मालयागरु, अष्टांगबिंदु में कस्तूरी लगानेवाले सुगंधि श्वेत लौहित्य पुष्पों से अलंकृत अष्ट गंध धूप से भूषित रक्तमाला तथा अम्बरधारी मुक्ताहार से शोभित तथा गर्म पानी से स्नान करने वाले गृह में *चित्र भरनेवाले घंटानादप्रिय नानाभोग समन्वित मंत्र सुषमा* न्यासयुक्त स्वर्ण पात्रादि से रचित हार वलय अंगठी और आभरणों से भूषित नाना मधुर भोजन करनेवाले दुग्धपान और नाना भोग करनेवाले श्रीवर्गक्रम में थे।

इनके अतिरिक्त थोड़े-बहुत भेदों से भैरवक्रम कमलाक्रम महामार्गक्रम महाराजक्रम विश्वभावक्रम भूमक्रम सौभाग्यक्रम वीरक्रम पशुभावक्रम गौड केरल काश्मीर सम्प्रदायक्रम विशेष उल्लेखनीय हैं। गौड में वामाचेतन काश्मीर में कौलिक प्रवृत्ति तथा केरल में बलि अधिक मात्रा में थी।

यही संक्षेप में शाक्त प्रभाव का विराटरूप था।

व्यक्ति

ऊपर काल निर्धारित करते समय हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मत्स्येन्द्रनाथ नवीं शताब्दी के मध्यकाल के लगभग हुए और उनके जीवन काल के परवर्ती युग में समकालीन होने से गोरखनाथ का भी समय कुछ ही पीछे रहा होगा। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि योगी दीर्घायु होता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। तो उनका समय दसवीं शताब्दी तक पहुँच सकता है। गोरखनाथ का जीवन एक अत्यन्त दुरूह और जटिल तथ्यों का सामना है जिसमें किंवदन्तियों में से ऐतिहासिकता को छटक-छटक कर निकालना पड़ता है। उनके ऊपर अनेक विद्वानों ने वृहद रूप से लिखा है। किन्तु उससे यह अनुभूति नहीं होती कि आखिर इस व्यक्ति का जीवन क्या रहा होगा जिसका नाम गाँव-गाँव में अटूट श्रद्धा और भय के साथ लिया जाता है। उनका जन्म कहाँ था इस पर इस समय प्रकाश न डालकर आगे उनके प्रभाव से इस पर विचार करना अधिक उचित होगा। वह योगी थे महान् थे कि वह कवि थे या प्रचारक परन्तु वह एक हाड़-मांस के भी पुतले थे जिनके ऊपर भी आपत्तियाँ तथा कठिनाइयाँ आती थीं यह उनकी किंवदन्तियों से ज्ञात होता है। इस चमत्कार भरे चरित्र में भी मनुष्य की कोमल भावनाएँ थीं यह एक सत्य ही है। व्यक्ति का दुरूह होकर उसके पीछे इतनी कहानियों का जुड़ जाना उसके प्रखर और प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही द्योतक तथ्य है। यहाँ हम उनके जीवन पर विचार करते समय एक जीता जागता मनुष्य देखने में ही अपना ध्येय समझते हैं। किन्तु अलौकिकता या चमत्कारों को बिलकुल ही अलग करके देखना एक असम्भव सा कार्य दिखाई देता है।

जन्म तथा स्थान

गोरखनाथ का जन्मस्थान पेशावर का उत्तर पश्चिमी पंजाब था। जन्म के समय यह चमत्कार निस्सन्देह उनके साथ नहीं थे जो कालान्तर में ऐसे ही

---

1 हजारीप्रसाद ने नाथ सम्प्रदाय में जन्म स्थानों का सारांश इस प्रकार दिया है। इनके जन्म स्थान का कोई पता नहीं चलता। दन्तकथाएँ अनेक प्रकार के अनुमान को जन्म देती हैं और इसीलिए भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों को इनका जन्म-स्थान मान लिया है। योगिसम्प्रदायाविष्कृति में इन्हें गोदावरी तट

व्यक्ति जन्म तथा जन्मस्थान जाति रूप गुण स्वभाव सेवा निवास स्थान चरित्र योग पथ लोकायत दत्तात्रेय पाशुपत कापालिक अघोर कौलमार्ग मौनवाद बलवाद गुरु-उद्धार नई साधना मृत्यु।

गोपीचन्द गोरखनाथ को गिरनार से अपनी सहायता के लिए बुलाकर लाया। दयानाथ बड़ा समर्थ व्यक्ति था। उसने पहाड़ और गुफा को छीन लिया था। उसके पास एक ऐसी टोकरी थी जो अपने आप अस्तबस से सौंध इकट्ठी कर सफ़ाई कर देती थी। उसकी शक्ति से पहाड़ पर रहनेवाले 1,25 000 फ़क़ीरों की धूनी अपने-आप जलती रहती थी। उसके पास एक बैल था जो अपने-आप उसके पात्र (पात्र) को कुए से जल लाकर भर देता था। समाही से उसके पास भिक्षा-पात्र था जो स्वयं ही 1,25,000 फ़क़ीरों के खाने लायक भिक्षा इकट्ठी कर लाता था। उसके पास एक रस्सी और एक डंडा था जो उसकी आज्ञा पर मनुष्य को बाँधकर स्वयं पीटते थे। लेकिन जब गोरखनाथ निकट आए तब उसके यह सब चमत्कार ठंडे पड़ गए। दयानाथ यह समझकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने पहाड़ को उठाकर आकाश में फेंक दिया। एक फूंक से उसने भीषण आग लगा दी और कच्छ की दीनोधर पहाड़ी की ओर चल दिया। गोपीचन्द (सिन्ध का पीर पठाओ) गोरख के पास गया और बोला आप यहाँ बैठे हैं दयानाथ तो पहाड़ में आग लगाकर चला गया है। आकाश और पृथ्वी के बीच में धू धू जलती उस भयानक आग की ओर गोरखनाथ ने देखा। आग बुझ गई और पहाड़ खंड खंड होकर दो टूक पृथ्वी पर गिर गया। और तब गोरखनाथ ने देखा कि दीनोधर पर्वत पर योगी दयानाथ एक सुपारी पर सिर रखे शीर्षासन करता हुआ तप कर रहा था। यदि वह बारह मास तप कर ले तो तीन फूंक में समस्त सिन्ध को उड़ा दे तब गोरखनाथ ने अपना हाथ कच्छ की ओर बढ़ाया यद्यपि कोई उसे देख नहीं पाया और कान पकड़कर वे दयानाथ को सिन्ध लौटा लाए। गोरखनाथ ने दयानाथ से कहा लोगों को दुःख न दो मैं तुम्हें और तुम्हारे अनुवर्तियों को और परवर्तियों को वरदान देता हूँ कि उन्हें स्वच्छ श्वेत वस्त्रों और अच्छे घोड़ों की कमी कभी नहीं पड़ेगी। तब उन्होंने दयानाथ को

इसीलिए उन्हें अपने चमत्कार दिखाने पड़ते हैं या कहा जाता है कि उनके [illegible] की [illegible] [illegible] में चमत्कार [illegible] ही फैलती थी।

मानिकचन्द्र की अकेली [illegible] [illegible] होने के लिए भिक्षा की गई किन्तु गोरखनाथ की अद्भुत शक्ति के कारण उसकी मृत्यु नहीं हो सकी। [illegible] बार गोरखनाथ [illegible] [illegible] से [illegible] [illegible] हुए [illegible] के पीछे [illegible] हुआ [illegible] गोरख ने अपने को एक बड़ा जादूगर कहा है और 70 सिद्धों से भी अपनी शक्ति अधिक होने का दावा किया है। —[illegible]

[illegible] से मेल मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है।

क्योंकि हम किसी से कुछ लेते नहीं। —[illegible]

उन्होंने [illegible] के [illegible] जो उसकी [illegible] [illegible] की [illegible] उनके [illegible] [illegible] में [illegible] की [illegible]।

चमत्कार-भरी किंवदन्तियाँ मिलती हैं। पार्वती ने शिव से एक भक्त को भस्म दिलाई, भक्त की पत्नी ने भस्म फेंक दी शिव देखने गए, गोबर में बालक मिला। वह गोरख था। शिव ने उसे गुरु ढूँढने भेजा। गोरख ने समुद्र में पीपल के पत्ते पर रोटी अर्पित की। राघो नामक मत्स्य ने खा ली और बारह वर्ष बाद एक बालक दिया जो शिव की आज्ञा से मत्स्येन्द्र नाम से गोरख का गुरु हुआ। (बागची) मत्स्येन्द्र बंगाल के निकटस्थ चन्द्रद्वीप के वासी थे। (ना सं सभा की ग्रा लि) गोरख ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया।

निवास-स्थान

गोरखनाथ का घर सारा संसार था। उनके कोई बंधन नहीं थे। वे जहाँ चाहे घूमते थे। गाथाओं में ही उनके जीवन की झलक दिखाई देती है। यहाँ तक कि आगे चलकर तो इतनी गाथाएँ उनके जीवन से जोड़ दी गई जैसे वीरवल के साथ 6 महीने की छुट्टियों का भण्डार दिखाई देता है। निस्संदेह जहाँ मात्र उनका प्रभाव शेष है अधिकांश में वे मठ होंगे यद्यपि बहुत-से मठ उनके बाद भी स्थापित हुए हैं। इनका विवरण आगे सविस्तार दिया गया है। गोरखपुर और गोरखा जाति से गोरख नाम का विशेष सम्बन्ध है। कुछ लोगों का मत है कि यह दोनों नाम गोरख के नाम पर पड़े हैं। एक मत है कि गोरखा जाति के नाम पर गोरखपुर बसा। हम इसे अधिक मान्य नहीं समझते। नेपाल में शैव धर्म फैलानेवाले के नाम पर जाति का नाम असम्भव नहीं होते हुए भी एक अनुचित-सी लगती है। इसके अतिरिक्त इस विषय पर प्रामाणिकता से कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि स्थानों के विषय में किंवदन्तियाँ बहुत मिल गई हैं। अतः जो अब प्राप्त है उनका ही वर्णन उचित होगा। किन्तु वहाँ जाते वहीं उनका प्रभाव जमता था। कहीं भी सम्मान हीनता या उपेक्षा से उनका सत्कार नहीं होता था।[1] यदि होता था तो वे

---

1 गोरख ने शिष्य से कहा था : मैं पृथ्वी पर सोता हूँ। मेरे पास बिस्तर नहीं। गोरखनाथ कहीं मैं कंकड़-पत्थरों और श्मशान में रहता हूँ। योगी तो निर्धन होते हैं। धन उनके पास नहीं होता। —ब्रिग्स

गोरख [illegible] अमरगिरि, हरिद्वार, [illegible], [illegible] नेपाल [illegible] (कुमायूँ) [illegible], गिरनार, [illegible] [illegible], [illegible] बोगनी [illegible] [illegible] [illegible] काशी (आधुनिक [illegible]) [illegible], [illegible] [illegible] (आधुनिक गोरखपुर) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इत्यादि अनेकों स्थान पर।—[illegible]

इन गाथाओं में ही उनके साथ भी अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ सम्मिलित हैं। युद्ध, [illegible] [illegible] देना इत्यादि अनेक बातें हैं।

लोकायत

उस समय लोकायत अपनी भग्न अवस्था में आ रह गए थे। भौतिकवाद जब निकृष्ट रूप में अवस्थित था तब वह बौद्ध योगी और शैव संप्रदायों से योग और तन्त्र के माध्यम से इतना मिल-जुल गया था कि उसको अलग ढूंढ लेना तनिक कठिन काम है। उनकी सिद्धान्त तथा विचारधारा उस समय पक्षों में विभाजित हो चुकी थी। एक ओर यदि वह भैरवी चक्रों में पलती थी तो दूसरी ओर श्मशान में। और अध्यात्मतत्त्व के वे विरोधी अपनापन खोने लगे थे। शाक्त उपासना का अन्तर्भेद भी इतना अधिक हो चुका था कि महापुरुष भी उनके सम्मुख महात्म्यपूर्ण हो चुका था।

दत्तात्रेय से गोरखनाथ का युद्ध हुआ। दत्तात्रेय में भी अलौकिक शक्तियों का आभास पाया जाता है।[1] किंवदन्तियों से इंगित होता है कि दत्तात्रय गोरख के पूर्ववर्ती थे। गुरु को ढूंढते हुए गोरख स्वकीय चिरकाल गहवासी समीपस्थ महात्मा दत्तात्रय की गुफा पर गए। सिंघल से जब मत्स्येन्द्र के साथ गोरखनाथ लौटकर आये तब उनसे फिर मिले। दत्तात्रेय ने कहा क्या आप नहीं समझते हैं कि आत्मा का आत्मा साक्षी है। वह आत्मा समस्त देहों में समरस होने के सबके हिताहित को जानता है समझता है।[3]

मेरा अनुमान है कि दत्तात्रेय का प्रभाव उस समय काफी था। यह परम्परा नाथ सम्प्रदाय पर ही नहीं रुकी वरन् कबीर तक प्राप्त होती है। वेदान्त और शाक्त विचारधारा के बीच की प्रणाली ही सम्भवतः दत्तात्रय-पंथियों की शक्ति थी। दत्तात्रेय के अनुयायी यदि एक ओर माया के सिद्धान्त का अपरिपक्व रूप मानते थे तब भी वे शंकर की भाँति मुखर न होकर शाक्त वार्ता

---

1 गोरखनाथ और संन्यासी दत्तात्रय में जब तर्क हुआ तब गोरखनाथ पानी में मेंढक बनकर जा छिपे। दत्तात्रय ढूंढकर ले आये। दत्तात्रेय की जब बारी आई वे पानी बनकर पानी में समा गए। तब गोरख असमर्थ हो गये। —मिश्र

गोरख को कबीर से भी तर्क में पराजय है। कबीर को जब गोरख ढूंढने में असमर्थ हो गये तो उन्होंने उन्हें स्वीकार किया तब कबीर घोड़े की टोपी में से निकल आये। सम्भवतः यह मतावलम्बियों ने अपने मतों को श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए कथाएँ प्रतिपादित की हैं।

2 सोमयज्ञ की पत्नी [illegible] के [illegible] हुए दत्तात्रय की माँ। [illegible] को गुरु दत्तात्रेय ने एक बीज दिया था जो वट वृक्ष के रूप में बड़े वट बनाने में समर्थ था कि [illegible] [illegible] था। यह बीज [illegible] कहलाता था।

3 अवधूत का विवरण नाथ सम्प्रदाय में भी पाया है। यह कारण हो सकता है कि [illegible] पुराण में [illegible] [illegible] कहा गया है। —[illegible] पृ 180

दत्तात्रेय [illegible] विचारकों में से [illegible] किये गए हैं। यह ऊपर इंगित किया जा चुका है। दत्तात्रेय नामक का [illegible] प्राप्त होता है। दो स्तोत्रों में गुरु की महिमा प्रतिपादित की गई है।

से गोपीचन्द की मदद की थी। उन्होंने दो मूर्तियाँ बनवाई और ज्वालेन्द्र के क्रोध से उन्हें भस्म करवा के गोपीचन्द को बचा लिया। इसी कथा में ज्वालेन्द्र के वर से गोपीचन्द अमर हो गया।[1] यहाँ ज्वालेन्द्र की प्रबल शक्ति का आभास मुखर हो उठता है। इस कथा में यह गोरख की शक्ति से हुआ क्योंकि वे शिष्यों को शिक्षा देना चाहते थे। एक दूसरी कथा के अनुसार[2] गोरख ज्वालेन्द्र को इसी लिए दबा लेते हैं क्योंकि गोपीचन्द उनसे भयभीत था। गोपीचन्द के नगर में (बंगाल मे) एक बड़ा फकीरों का जमघट था वहाँ गोरख आ गए। इस भीड़ से बचने को जालन्धर कुएँ में जा बैठे और घोड़े की लीद से अपने को ढक लिया। लीद को जितना ही साफ किया जाता वह उतनी ही रात को फिर कुएँ मे आ इकट्ठी होती। तब मयनावती ने यह सब कहा। मत्स्येन्द्र ने आकर खतरा बता दिया। तब गोरख ने लोहा चाँदी सोने की तीन मूर्ति बनवाकर जालन्धर को परास्त किया।

गोरख ने मयना को वर दिया कि वह जल में कभी नहीं डूबेगी। उन्होंने एक कुएँ का पानी सोना कर दिया फिर उसे स्फटिक बना दिया। गोपीचन्द की बहन को उन्होंने जीवित कर दिया।[3]

जालन्धर ने एक बार युद्ध में अपने शिष्य को टीडी बना दिया फिर मनुष्य रूप दे दिया। वह गया मनुष्य गोपीचन्द को माँगने लगा। बाद बार वह भस्म कर दिया गया और भस्म से गोरख ने उसे जीवित कर दिया। गोरखनाथ ने एक बार जालन्धरनाथ की शक्ति और ज्ञान को जीतना चाहा। उन्होंने अपने एक शिष्य को भेजा जिसने जाकर विरोधियों के खाने के बर्तनों को तोड़ फोड़ दिया उनके वस्त्रों को नष्ट कर दिया और उनके शरीरों में घाव लगा दी।

ग्रियर्सन का मत है कि योगी हाड़ी नैपाल के पूर्व में कनफटा योगियों के आन्दोलन का प्रतीक है। रंगपुर में कनफटा योगी पाशुपत हैं और गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं।

हाड़ी और जालन्धर के विषय में ऊपर विचार किया जा चुका है। हाड़ी जिसका उल्लेख गोपीचन्द के गुरु के रूप में किया गया है एक डोम था।

---

1 [illegible]।

2 [illegible]—बंगला—साहित्य[illegible] से कथाओं से यह स्पष्ट नहीं होता कि शक्ति की परीक्षा के आंतरिक और भी इनमें आपस में कोई भेद था। जालन्धरनाथ का प्रभाव उस समय भी सम्भवतः [illegible] में था। [illegible] नहीं था कि किसे [illegible] जाता है उसके प्रत्येक गोरखनाथ है। उनके पूर्व इनका स्पष्ट भेद नहीं था।

3 [illegible] के आधार पर।

निकता की ही भाँति माया को जड़ नहीं मानते थे। वे एक और योग की शुद्ध प्रणाली की ओर मार्कपित थे जिसमें सांसारिक बन्धनों को छोड़कर अपने को ऊँचा माना जाता था तो दूसरी ओर उनमें शक्ति का विलास अस्वीकृत था।

पाशुपत

ऊपर पाशुपत शैवों का वर्णन आ चुका है इनके विभिन्न भेदों का भी उल्लेख हो चुका है। बाण और ह्वेनसांग ने पाशुपत को एक मुख्य मत लिखा है। इससे प्रगट होता है कि ईसा की 5 या 6 शताब्दी में यह खूब मुखर रूप में था। शंकर ने अपने भाष्य में उनकी आलोचना की है। क्योंकि वे ईश्वर को संसारभूत का कारण नहीं मानते थे। शिव पशुपति है, उन्होंने बिना कारण सृष्टि की है। पाशुपतों में 5 ही पदार्थ माने जाते हैं। इनकी आध्यात्मिक दृष्टि द्वैतवाद की है। कार्य में स्वातन्त्र्य शक्ति न होने से जीव 'पशु' कहा है। योग आत्मा और ईश्वर का सम्बन्ध है। इनमें क्राथन स्पंदन मंदन शृंगारण, अवितत्करण अवितत भाषण इत्यादि चलता था। दुःखान्त ही निवृत्ति या मोक्ष था। उनकी (शिव) अपनी प्रकृति है जिसे चित्त शक्ति कहा जाता है। किन्तु पशु पाश से बँधा हुआ है। जो तीन प्रकार का है। आणव अज्ञान कर्म माया। यह माया भी शंकर की माया नहीं है। दृश्य जगत् का प्रभाव डालने वाले में डाल देने तथा ढक लेने के लिए यह माया है। शक्ति पशु में निहित है जो अनुग्रह से काम उठती है। निपुण सम्भवतः तन्त्र का प्रभाव है। अथर्व शिरस् उपनिषद् में पाशुपतों का विशिष्ट 'व्रत' आदि के नाम से जिक्र आता है। शिव के 18 विभिन्न अवतारों में लकुलीश भाव अवतारों में माने जाते हैं। अप्पय दीक्षित ने शैव तन्त्रों को वैदिक तथा अवैदिक (स्त्री शूद्रों के लिए आवश्यक) रूप से द्विविधि मानकर भी दोनों का प्रामाण्य समान भाव से स्वीकार किया है।[1] इस पाशुपत धर्म का नाथ सम्प्रदाय में काफी प्रभाव था। शैव सम्प्रदाय की दार्शनिकता का रूप शंकर से पहले का नहीं मिलता है जिसका सान्निध्य शाक्त विचारधारा से रहा है। शंकर ने दार्शनिक रूप से उसे माँजने का बल करके उसे ब्राह्मण ग्राह्य बनाने का यत्न किया था किन्तु इसके पीछे तथा साथ एक विराट् परम्परा बन गई जो वे नहीं मिटा सके। पाशुपत न केवल भारत में वरन् फारस अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक अपने मन्दिर बनाकर उनमें उपासना करते थे। लिंग पुराण में यह तीन शाखाओं में विभक्त है वैदिक तान्त्रिक मिश्र। (ताराचन्द)

गोरखनाथ ने जालन्धर और कणिपा को पराजित किया। गोपीचन्द कथा में ज्यालन्धर जब कुएँ में गिरा दिये गए तब उनके निस्तरण के समय गोरखनाथ

1 कल्याण स्वाध्याय विशेषांक। पत्रिका आषाढ़ 1999 वि

मत के आदि प्रवर्तक भी 'नाथ' ही माने गए हैं। मेरा अनुमान है कि शिव के स्वरूप में जब बहुत-से मत आ इकट्ठे हुए तब यह भी उनमें से एक था। परवर्ती काल के लोकायत जब बँटने लगे तो अपने ब्राह्मण विरोध में उनमें से अनेक बौद्धों की ओर आकर्षित हुए। वे तथा पुरान कापालिक जब हिलमिल गए तो उनमें बहुत-सी बातें भी एक-सी हो गईं। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में कापालिक ने शंकर को हराया है। पर नाथ लेखक ने अपने को प्रथम अवधूत मत का माना है। कौलमार्ग और कापालिक मत का नाथ सम्प्रदाय से बना सम्बन्ध रहा है। प्राचीन शिवत्न देव और वामदेव का यह परवर्ती स्वरूप ही सम्भवतः कापालिक मत है इसके स्वभाववाद देहात्मवाद पर चार्वाक का प्रभाव पड़ा। बाद में आकाश तत्त्व को भी इसमें स्वीकृत कर लिया गया। प्रारम्भ में इनका ध्येय विरक्त होकर भी लोकायतों के प्रभाव से काम साधना हो चला।

हजारीप्रसाद की 'नाथ सम्प्रदाय' में जालन्धर तथा कृष्ण पाद के कापालिक मत पर विस्तारपूर्वक लिखा गया है। यहाँ उसका सारांश दिया जाता है।

कापालिक सम्प्रदाय गोरख के बारह पंथों में से नहीं माना जाता। यह वामारग (वाम मार्ग) कहलाता है। कर्पूरचर्य विनिश्चय की टीका में कापाली पाद (या भोली पाद) का श्लोक है जिसमें कापालिक का अर्थ इस प्रकार बताया गया है। प्राणी अर्थात् साधक का शरीर ही कलेवर है। जगत् की जो कोई भी स्त्री कपाल बनिता है और प्राणी के भीतर स्थित सोऽहं रूप आत्मा ही हेरुक भगवान् की मूर्ति है, जो इससे अभिन्न है भी पंच और इन्द्रिय आदि सूक्ष्म ग्राह्य तत्त्व तथा पृथ्वी प्रकृति स्थूल ग्राह्य तत्त्व को ग्रहण करने वाला मदन से ही तीन रत्न हैं। इनका यथा गौरव ध्यानकर्ता योगीश्वर परम सिद्धि को प्राप्त करता है। मालतीमाधव के एक श्लोक के अर्थ से भान होता है कि यह लोक नाड़ी चक्र आदि से परिचित थे। कापालिकों में नाथ तत्त्व बसता था। मालतीमाधव में भवभूति द्वारा जाना हुआ कापालिक मत परवर्त नाथपंथियों के समान ही नाड़ियों और चक्रों में विश्वास रखता था तथा शिव और जीव की अभिन्नता में आस्था रखता था और योग द्वारा चित्त के चांचल्य के रोकने से ही कैवल्य रूप में अवस्थित शिव रूप आत्मा का साक्षात्कार मानता था तथा शक्तियुक्त शिव की प्रभविष्णुता में ही विश्वास रखता था। पंचामृत की आकर्षण क्रिया से कुण्डलिनी का भी प्रयोग होता था। पंच अमृत शरीर स्थित पाँच द्रव रस हैं शुक्र शोणित मेद, मज्जा और मूत्र। इनको आकर्षण करके ऊपर उठाने की क्रिया से हो शरीर को वज्रवत् बनाया जा सकता है। अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। वज्रयानी साधकों म तथा कौलमार्गी तान्त्रिकों में भी यह विधि है। नाथ मार्ग म वज्रोली साधना इसी

लिया जाकर उसने जब गोपीचन्द के लिए अपनी भूख छोड़ दी तब दुःख और विषाद से गोपीचन्द ने उस खाने की ओर देखकर कहा मेरे कुत्ते जिस खाने को देखकर मुँह मोड़ लेंगे मैं एक राजा मुझे वह खाना खाना पड़ रहा है।

जब गोपीचन्द योगी बनाया गया तब वहाँ एक बड़ी भीड़ थी। गोरख फूलों से लदे रथ पर आए। गोपीचन्द ने कीमती उपहार वितरित किए। वैष्णव और शैव दोनों उपस्थित थे। जालन्धर भी वहीं थे। मयना गोपीचन्द की माता १६ साधुओं को लाई थी। फूलों लदे रथ से निकलकर गोरखनाथ उतरे। वहाँ कनफटे हाड़ी सिद्धों की संख्या की कोई गिनती नहीं थी। वे अनेक थे।

मयना के द्वार पर गोपीचन्द ने जब पत्ते तोड़े तो मयना ने कहा पत्ते भंग न कर उनके शरीर में दुःख होगा। गोपीचन्द ने 'ओम्‌ गुरु' कहा और जाके बैठ गया।

कापालिक

गोरखनाथ का जालन्धर से अनेक बार युद्ध होने का क्या कारण है? यह अनुमान करना भूल नहीं होगा कि जालन्धर में यदि बौद्ध प्रभाव अवशिष्ट था तो नाथ सम्प्रदाय के शैव रूप में गोरखनाथ हुए थे। एक कथा के अनुसार जालन्धरिपा या हाडिपा सिद्ध के रूपधर पारीका भुवन (या मेहारकुल) में राजा गोविन्द चन्द्र और उनकी विधवा माता मयनामती के घर नीच कर्म किया करते थे। शैव सम्प्रदाय से उनका यह सम्बन्ध गोरखनाथ का बुद्ध धर्म से भ्रष्ट होने की कथा से बहुत मिलता-जुलता है। किन्तु जालन्धर इस स्थान पर भी एक बहुत बड़े सिद्ध माने गए हैं। मालतीमाधव में हजारीप्रसाद ने उद्धृत करके *बताया है बौद्ध होकर भी शैव कापालिक के पास कपालकुण्डला जाती* है। यह समानता योग और शाक्त उपासना के अतिरिक्त और किस ओर इंगित करती है।

ऊपर जालन्धर पर की अन्य कथाओं का उल्लेख किया जा चुका है। राहुल जी ने इन्हें भोटिया ग्रन्थों के अनुसार आदिनाथ कहा जाना भी उल्लिखित किया है। ऊपर कापालिक आचार्यों का नाम भी आ चुका है। कापालिक

---

1 इस कथा में बौद्ध प्रभाव बहुत प्रकट है। हाड़ी सिद्धों का भी उल्लेख है और वह भी कि वे कनफटे थे। मोहनसिंह ने कनफटा मूर्ति में का महाराज के परवर्ती काल में बना जाना उल्लिखित किया है। नेपाल की उपस्थिति और शीतला का नाम परवर्ती प्रभाव ही *प्रगट है जैसे ज्ञानेश्वर चरित्र कहता है।*

2. मानिक चन्द्र राजा की कथा से।

3. हरिनारायण शास्त्री बोधाभन तथा कापालिक मोहेंजोदड़ो सर्वे रिपोर्ट 1930

भावात्मक जालन्धर गिरि नामक महामेरुगिरि का शिखर है। यही महासुख का आवास है। पहला आनन्द कायात्मक दूसरा वाचात्मक तीसरा मानसात्मक है। अन्तिम ज्ञानात्मक है। तभी सहजानन्द है। एक बार प्राण-वायु का निरोध करके यदि योगी इस मेरु शिखर पर वास कर सका तो निस्तरंग सरोवर की भाँति उसकी वृत्तियों के रुद्ध हो जाने से वह सहज रूप को प्राप्त हो जाता है।

परवर्ती शक्ति संग तन्त्र में कापालिक के विषय में लिखा है

कपालपात्रसम्भोजी मद्यमांसेषु तत्परः
स्त्रियोनि दर्शको नित्यं मुण्डमाला धरः सदा
श्मशानाग्नि प्रयोगीयः स च कापालिकः स्मृतः ।

प्राचीन काल से ही यह भेद को स्वीकार नहीं करते थे। संसार से अथवा विरक्ति का यह स्वरूप कितना प्राचीन है इसको आज जान सकना कठिन है। यह गार्हस्थ्य अवस्था कहलाती है। रामानुज के श्रीभाष्य में कपालधारी तथा कपाल न धारण करनेवाले दो तरह के कापालिक बताये गए हैं। कपालधारी काला मुख हैं। कालवदन भी कहलाते हैं। कापालिक कपाल छोड़कर भी कापालिक कहलाते रहे और कालामुख कपाल रखकर भी दूसरे नाम से पुकारे जाने लगे।[1]

कापालिकों के अनुसार शिव कल्मषहीन तथा सर्वशक्तिमान हैं। भस्म रमाना चाहिए। महेश ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति का स्वामी है। प्रकृति उपादान कारण है शिव निमित्तकारण। ये पहले शाक्तों की भाँति सम्भवतः किसी रूप में उपस्थित रहे हों[2] उनमें जब भोगवाद का अभिचार का प्रभाव फैल चला तब जनसाधारण उन्हें भी लोकायत कहकर भूल करने लगे। कौन जाने शिव के इस प्राचीन स्वरूप की विरक्ति में ही वेद बाह्य षट्चक्र, नाड़ी ज्ञान का प्रारम्भ नहीं रहा जो ब्राह्मणों पर कालान्तर में छा गया।[3]

---

1 [illegible] 1930।

2. अथर्ववेद में व्रात्य का वर्णन आता है कि व्रात्य घूमता रहता है संसार के भले की बात [illegible] और वह प्रजापति से अपना [illegible] स्वीकार करवा लेता है—[illegible] के भले के लिए (15/1/1) स्वामी भूमानन्द [illegible] व्रात्य का अर्थ इस प्रकार किया है व्रत+[illegible] +य—मनुष्य समाज का भला करनेवाले। पूर्ववर्ती वैदिक [illegible] में व्रात्य को [illegible] हीन माना गया है। यह हम ऊपर देख चुके हैं। —[illegible]

3 [illegible]

[illegible]

का सम्भावरोध है। शिव तान्त्रिकों के अनुसार नेति-नेति हैं। वे केवल ज्ञेय हैं। उपास्य शक्ति है। तभी शिव 'शक्तिनाथ' हैं। एक ऐसा समय था जब था जब सहजयानी और वज्रयानी साधक शून्य को निषेधात्मक न मानकर विध्यात्मक या धनात्मक रूप में समझने लगे थे। इसी की अभिव्यक्ति 'महा सुख' या 'सुखराज' शब्द थे। आनन्द चार प्रकार के हैं प्रथमानन्द परमानन्द विरमानन्द और सहजानन्द। सहजानन्द में अस्मिता लुप्त हो जाती है।

जालन्धर पाद का महासुख शैव तान्त्रिकों के सहजानन्द के बहुत निकट है। सम्भवतः इसी से परवर्ती साहित्य में जालन्धर शैव समझ लिये गए।

कृष्णपाद मानते थे कि इस शरीर में ही चरम प्राप्तव्य की प्राप्ति होती है। शरीर का जो मेरुदण्ड है वही कंकाल दण्ड कहा जाता है मेरु पर्वत है क्योंकि पैरों के तलवे में भैरव रूप धनुराकार वायु का स्थान है। कटि देश में त्रिकोण उदराग्नि है जिसके तीन दलों पर वर्तुलाकार वरुण का वास है और हृदय में पृथ्वी है जो चतुरस्र भाव से सब ओर व्याप्त है। इसी प्रकार कंकाल दण्ड के रूप में गिरिराज सुमेरु स्थित है। इसी गिरिराज के कन्दर कुहर में त्रैलोक्य चातु वस्तु सारा-का-सारा उत्पन्न होता है। इसी गिरिकुहर स्थित पद्म में यदि बोधिचित्त पतित होता है तो कालाग्नि का प्रवेश होता है और सिद्धि में बाधा पड़ती है क्योंकि गुह्यसिद्धि नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यदि सर्व सिद्धि का विधान बोधिचित्त (शुक्र, नाथपंथियों का बिन्दु) नीचे की ओर पतित हो और स्कन्ध विज्ञान विमूर्च्छित हो जाए तो उत्तम सिद्धि नहीं हो सकती। वासना को दबाना नहीं चाहिए। कामना के उपभोग में ही सच्ची सिद्धि है। समस्त बुद्धों की आगमन-भूमि जिस प्रकार समस्त विश्व ब्रह्माण्ड है उसी प्रकार यह शरीर भी है। इस मानस शरीर का प्रधान आधार मेरुदण्ड है जिसके भीतर तीन नाड़ियों से होता प्राण-वायु संचरित होता है। बाईं नाक से ललना दाहिनी से रसना नामक प्राणवायु को बहन्ती नाड़ियाँ चलती हैं। ललना प्रज्ञाचन्द्र है रसना उपाय सूर्य। यह नाथपंथियों की क्रिया शक्ति की समधीन है। अवधूती मध्यवर्ती नाड़ी सुषुम्ना के समान है। इस नाड़ी से जब प्राण-वायु ऊर्ध्वगति प्राप्त होता है तो ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नहीं रहता। तभी यह ग्राह्य ग्राहक वर्जिता कहलाती है। मेरु गिरि के शिखर पर महासुख है। वहाँ एक 64 दल का कमल है। यह कमल चार मृणालों पर स्थित है। प्रत्येक मृणाल के चार रूप हैं और प्रत्येक रूप के चार चार दल। इसी प्रकार यह $4 \times 4 \times 4 = 64$ दलों का कमल (पद्म) है जहाँ वज्रधर (योगी) इस पद्म का आनन्द उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का। इन चार मृणालों के दलों को शून्य अतिशून्य महाशून्य और सर्वशून्य कहा गया है। जो सर्वशून्य का आवास है वही उष्णी कमल है यहीं डाकिनी

में उनके द्वारा निर्णीत ज्ञान का नाम सिद्ध कौल तृतीय में निर्णीत ज्ञान का नाम सिद्धामृत और चतुर्थ युग में अवतरित ज्ञान का नाम मत्स्योदर है। इनमें (मत्स्योदर) विनिर्गत ज्ञान का नाम योगिनी कौल है।[1] शिव का ही बार-बार वर्णन करना महत्वपूर्ण है। बौद्ध परम्परा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता।

इससे यही आभास मिलता है कि कौलमार्ग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी। इसके भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न स्वरूप थे। पं. हजारीप्रसाद ने डा. बागची के अनुमान को उद्धृत करते हुए लिखा है कि मत्स्येन्द्र ने योगिनी कौलमत को कामरूप में सीखा था पहले वे सिद्धामृत मत के अनुगामी थे।

समस्त सम्प्रदाय शिव द्वारा ही अवतरित माना गया है यह इसकी प्राचीनता का द्योतक है। इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते कि इससे पूर्व वास्तव में इसका स्वरूप कैसा था। वाम मार्ग में कामरूप में ही जाकर प्रवृत्त हो जाना ही मत्स्येन्द्र के साथ प्रसिद्ध है। निश्चय ही इससे प्रकट होता है कि वाममार्ग सिद्धामृत में या तो स्वीकृत नहीं था या वह इतना मुखर नहीं था। सिद्धामृत मार्ग के अनुवर्ती मत्स्येन्द्र ने योगिनी कौल मत का प्रवर्तन किया था। नाथों में भी सिद्धमार्ग माना जाता था।

शिव की उपासना जो तन्त्र आदि तथा सिद्धियों से आक्रान्त हो चली थी जिस पर योग का भी प्रभाव था मत्स्येन्द्र के समय में अपना वास्तविक रूप छोड़कर वाममार्ग से ऐसी आसक्त हो गई कि उससे एक नये पंथ का प्रवर्तन हो गया जो स्त्री की शक्ति से अभिभूत था। कालान्तर में वाममार्ग के आम रास्ते पर जब शैव और बौद्ध एक साथ आकर खड़े हो गए और शिव और बुद्ध के स्थान पर स्त्री का महत्व अधिक हो चला तब परस्पर भूल पड़ने लगी और बाह्य रूप में सब ही एक-से दिखाई देने लगे जिसे इस युग से देखने पर (जैसे विदेशी को वैष्णव और बौद्ध सभी साधु सन्यासी लगते हैं) एक-सा प्रतीत होता है। निस्सन्देह परस्पर सम्मिश्रण से एक-दूसरे पर प्रभाव अवश्य पड़ा होगा किन्तु यह ऊपर ही स्पष्ट किया जा चुका है कि एक ही वस्त्र ओढ़ कर भी वस्तुतः अनेक सम्प्रदाय अनेक ही बने रहे।

प्र. च. बागची ने कौल भेदों की सूची कौल ज्ञान निर्णय की भूमिका में

---

1 नाथ सम्प्रदाय।

2 वही।

मत्स्योदर से पहले के निर्णीत ज्ञानों में सम्भवतः स्त्री पूजा नहीं थी अन्यथा गोरखनाथ को मत्स्येन्द्र को छुड़ाकर लाने की क्या आवश्यकता थी। सिद्धामृत मत के अनुयायी मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरख को गुरु का ... नहीं ... कहीं छुड़ाने पर और जगाने लगे आगे का लौटा लाये। तभी से मत्स्येन्द्र माने गए।

गोरखनाथ का अघोर से सम्बन्ध स्पष्ट नहीं मिलता। किन्तु कापालिक रूप से उनकी निकटता सिद्ध होती है। गोरखनाथ अघोरों की असभ्यता से दूर थे इसलिए कि गोरख का सिद्धिपरक मार्ग स्त्री से बहुत दूर था जो इन लोगों में स्वीकृत था।

अघोर

स्त्री से दूर अघोर थे अवश्य जो कालामुख का ही परवर्ती स्वरूप था। श्मशान में ही यह रहते थे। हड्डियाँ इनके समीप सदैव रहती थीं और यह भूले हुए संसार से भक्ष्याभक्ष्य खाते पड़े रहते थे। अघोर में कापालिकों की भाँति सिद्धि का तत्त्व नहीं पाया जाता। अघोरों में कहीं-कहीं ब्रह्मचर्य का प्रभाव भी पाया जाता है। यह परवर्ती प्रभाव भी हो सकता है। वुडरफ ने वेदाचार और वैदिकाचार में भेद किया है। मौन रूप में मौन वैदिकाचार तंत्र के स्पष्ट विभाजन से बाहर दिखाई देता है जिसका तान्त्रिक समानान्तर वेदाचार है।

नाथ परम्परा की समस्त पुस्तकें पढ़कर ऐसा ही लगता है कि पुराना सिद्ध नाथ मुख्य रूप में योगपरक था। और पंच मकारों या पंच पवित्रों की व्याख्या उसमें रूपक रूप में ही हुआ करती थी। कौल-ज्ञान-निर्णय में सहज मार्गियों की भाँति बोधिसत्त्व या बुद्ध के अवतारों का उल्लेख न होकर शिव (भैरव) का ही वर्णन किया गया है। अवलोकितेश्वर का उसमें नाम भी नहीं है।

कौलमार्ग

प्रथम युग में शिव द्वारा निर्णीत ज्ञान का नाम था कौलज्ञान द्वितीय युग

---

1 इस पूर्वरूपों से अनेक नाम आ चुके हैं। कालामुखों में कालवीर कुमारी पूजा जाते हैं। कालमोहन पुरी थी। कापालिक कालमुख, पाशुपत सोमसिद्धान्त दिगम्बर आदि [illegible] से ली गई व्यवस्था है। अघोर, पाशुपत [illegible] कालमुख नाथ सम्प्रदाय तथा शैव [illegible] नहीं है।

अघोर का अर्थ है घोर (संसार) से मुक्त।

[illegible] (शान्त रूप) पाशुपत (रौद्र रूप) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

होगा ? अकुल वीर तन्त्र में[1] ध्यान धारणा प्राणायाम की आवश्यकता नहीं। (श्री 112) दया विमर्श और अध्यात्म की भी नहीं है। (123-25) इससे हमें गोरख के साधना विवरण को समझने में सरलता होगी। मत्स्येन्द्र के प्रारम्भिक रूप के प्राय काफी ग्रन्थ और तत्त्व ज्ञानकारिका में आए हैं जिसमें यौगिक व्याख्या दी गई है। मत्स्येन्द्र जिस योगिनी कौल में फँसे थे सम्भवतः उसी का भ्रमावशिष्ट स्वरूप उस मत में भी घुस गया जिसके पीछे कापालिक और बौद्धमत की समान पृष्ठभूमि थी। यहाँ कुल और अकुल का अर्थ देख लें। कुल शक्ति है अकुल शिव है। दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। कुल कभी नष्ट नहीं होता। यह 36 तत्त्वों का जगत् अव्यक्त रूप से व्यक्त करता है यही सृष्टि है जो शिव की सिसृक्षा है। आम्नायों के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। आत्मा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। किन्तु कौल साधक स्त्री को निवृत्तिपथ के लिए आवश्यक मानता है। वह स्त्री से सहज स्वीकार करता है। इस सहज वाले का कहना है कि जो सुख और प्राप्ति कष्ट पथ से है वही इस आनन्द से है। इसलिए इससे छूटने का प्रयत्न व्यर्थ ही अपनी निर्बलता का प्रकाश है। निर्विकार होने के लिए इन वस्तुओं में भ्रमकर इन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। मुख्य अद्वैतभाव है। अकुल पूर्ण अद्वैत है। द्वैत की भावना कुल में लगी रहती है जो कुल से परे है वही अकुल है। अकुल ही वह सहज है जो कुण्डली के ऊपर की अवस्था है। शास्त्रज्ञान से संतुष्ट लोग मोहित ही बने रहते हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिलती। अकुलवीर में सब धर्मों का लय हो जाता है। प्रभु ही अशेष जगत् के सर्वाधार हैं। कोई न्याय वैशेषिक कोई सोमसिद्धान्तवादी है। मीमांसा पंचस्रोत वाम तथा दक्षिण सिद्धान्त यह सब शैवागम है परन्तु पाप में बँधे के समान है। मुक्ति जिस पर स्थित है वही भवबन्धन से मुक्त है। जप अर्चना स्नान होम इत्यादि सब व्यर्थ है यह इसका ब्राह्मण रूढ़ि-विरोधी स्वरूप है। न कौल के लिए नियम है न उपवास

---

1 [illegible] ।
न [illegible] ॥ 16 ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ 17 ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ 18 ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥ —अकुल वीर तन्त्र [illegible]

की है। जैसे रोमकूपादि कौल वृष्णोत्थ कौल वह्नि कौल कौल सद्भाव पादोत्तिष्ठ कौल इत्यादि। मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध योगिनी कौल से है।[1] कौल दो प्रकार के बताये गए हैं कुलक जिसमें द्वैत भाव बना रहता है तथा सहज जिसमें साधक और शिव बिलकुल एकाकार हो जाते हैं। कुलक को कुण्डली भी कहते हैं और सहज को समरस (अकुल वीरतन्त्र)।

कौल-ज्ञान-निर्णय में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया है—सृष्टि प्रलय मानसलिंग का मानसोपचार से पूजन निग्रह अनुग्रह आकर्षण हरण प्रतिमा चलाना घट पाषाण स्फोटन आदि सिद्धियाँ प्राप्ति निरञ्जन ज्ञान जीव स्वरूप जरा-मरण पलित का निवारण अकुल से कुल की उत्पत्ति तथा कुल का पूजनादि गुरु पंक्ति सिद्ध पंक्ति और योगिनी पंक्ति चक्रध्यान अष्टचक्रों न्यासविधि पीठप्रसिद्धिवाप्यानमुद्रा महाप्रलय के समय भैरव की आत्मरक्षा मत्स्य विभाग तथा कौल ज्ञान का अवतरण आत्मचार शिवपूजन और कुल द्वीप विभाग देहस्थ चक्रस्थिता देवियाँ कपालभेद कौलमार्ग का विस्तार, योगिनी संचार और देहस्थ सिद्धों की पूजा।

अकुल वीर तन्त्र के अतिरिक्त कुण्डली और सामरस्य का कहीं भी कौल ज्ञान-निर्णय में वर्णन नहीं आता यद्यपि हठयोगस्थित अनेक पद्मचक्रों का उसमें वर्णन आता है।

ऊपर काश्मीर शैव सम्प्रदाय तथा शाक्तों के शिव शक्ति के भेदाभेद पर हम संक्षेप में प्रकाश डाल आए हैं। यह कहना काफी होगा कि शक्ति के विषय में मत्स्येन्द्रनाथ का मत प्रारम्भिक अवस्था में शाक्त अधिक प्रतीत होता है। किन्तु उसका दार्शनिक आधार काश्मीर शैव सम्प्रदाय से विशेष भिन्न नहीं है। अकुल वीर तन्त्र के विषय में हजारीप्रसाद का कथन है कि यह मत्स्येन्द्र का गोरख के मुक्ति दिलाने के बाद का स्वीकृत सिद्ध मत है। इस कुल और अकुल के भेद से पहला कौल ज्ञान उनके योगिनी कौल का प्रतिपादन करता है और दूसरे में गोरक्ष संहिता से अनेक बातें मिलती जुलती हैं। किन्तु जिस गुरु को गोरख ने जगाया क्या फिर भी उनका कोई गोरख से अतिरिक्त मत रहा

---

1 महायोगिनि कौले मत्स्येन्द्र पादमन्तारिते।
कामरूपे इदं ज्ञानं योगिन्या गृहे गृहे॥

कन्दकौल सुषिरकौल महाकौल सिद्धामृतकौल महत्कौल ठानुयोगकौल शक्तिकौल ज्ञानकौल तथा सिद्धिर, सिद्ध एवं श्मशान भेदाय इत्यादि अनेक भेद हैं। हजारीप्रसाद का अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि यह नामावली सोलह अधिकांश सिद्धि नाम हैं।

होगा ? अकुल वीर तन्त्र में[1] ध्यान धारणा प्राणायाम की आवश्यकता नहीं। (श्लो 112) इड़ा पिंगला और चक्रध्यान की भी नहीं है। (123-25) इससे हमें गोरख के साधना विवरण को समझने में सरलता होगी। मत्स्येन्द्र के प्रारम्भिक रूप के प्राय: काफी ग्रन्थ और तत्त्व ज्ञानकारिका में आए हैं जिसमें यौगिक व्याख्या दी गई है। मत्स्येन्द्र जिस योगिनी कौल में फँसे थे सम्भवत: उसी का भग्नावशिष्ट स्वरूप उस मत में भी घुस गया जिसके पीछे कापालिक और बौद्धमत की समान पृष्ठभूमि थी। यहाँ कुल और अकुल का अर्थ देख लें। कुल शक्ति है अकुल शिव है। दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। कुल कभी नष्ट नहीं होता। यह 36 तत्त्वों का जगत् अव्यक्त रूप से व्यक्त करता है यही सृष्टि है जो शिव की सिसृक्षा है। आम्नायों के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। आत्मा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। किन्तु कौल साधक स्त्री को मिथुनिपद के लिए आवश्यक मानता है। वह उसी से सहज स्वीकार करता है। इस सहज वाले का कहना है कि जो सुख और प्राप्ति कष्ट पथ से है वही इस आनन्द से है। इसलिए इससे छूटने का प्रयत्न व्यर्थ ही अपनी निर्बलता का प्रकाश है। निर्विकार होने के लिए इन वस्तुओं में लगकर इन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। मुख्य अद्वैतभाव है। अकुल पूर्ण अद्वैत है। द्वैत की भावना कुल में लगी रहती है जो कुल से परे है वही अकुल है। अकुल ही वह सहज है जो कुण्डली के ऊपर की अवस्था है। शास्त्रज्ञान से सन्तुष्ट लोग मोहित ही रह जाते हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिलती। अकुलवीर में सब धर्मों का लय हो जाता है। प्रभु ही अशेष जगत् के सर्वाधार हैं। कोई न्याय वैशेषिक कोई सोमसिद्धान्तवादी है। मीमांसा पंचस्रोत वाम तथा दक्षिण सिद्धान्त यह सब वेदागम है परन्तु पाश में बँधे के समान है। मुक्ति जिस पर स्थित है वही भवबन्धन से मुक्त है। जप अर्चना स्नान होम इत्यादि सब व्यर्थ है यह इसका ब्राह्मण रूढ़ि-विरोधी स्वरूप है। न कौल के लिए नियम है, न उपवास

---

1 इडास्थाने न चास्य च पिंगला [illegible] ।
न इडा पिंगला शान्ता न [illegible] ॥ 16 ॥
न [illegible] न च [illegible] ।
तथा अकुल[illegible] न च [illegible] ॥ 17 ॥
न [illegible] ( ) तथा [illegible] ।
न [illegible] ॥ 18 ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ 25 ॥ —अकुल वीर तन्त्र ए

विरोध (7) कुलसेव और पीठों की चर्चा (8) वशीकरण का प्रयोग (9) पंचपवित्र (या पंचमकार) (10) डाकिनी शाकिनी आदि देवियों का एक बड़ा समूह (11) आत्म और नैरात्म्य का अद्भुत विरोध और सामंजस्य (12) विरोध करने पर भी अपने मंत्र तथा रूढ़ियाँ और स्थान-प्रियता (13) ब्राह्मण विरोध (14) सिद्धिपथ (15) शिवसिद्धान्तमत (16) बौद्धों में महासुख (17) सर्वात्म से शून्य का विरोध और सामंजस्य (18) असामाजिक स्वरूप (19) देहस्थित चक्र नाड़ी पद्म ज्ञान (20) बलिक्रिया का बीभत्स और कोमल दोनों रूप (21) टोना मारण उच्चाटन वशीकरण पुरश्चरण इत्यादि।

योगवाद

शक्ति तत्व का सामाजिक रूप देखने पर यह केवल योगवाद-सा दिखाई देता है। उसकी दार्शनिकता ऊँची होने पर भी यह सामाजिक रूप में एकांगी और व्यक्तिगत प्रयत्न-सा दिखाई देती है। इसमें जाति-पाँति के बन्धनों को तोड़ दिया गया। योग तन्त्र की भाँति यह तत्व उस समय के प्रायः सभी मतों में अपना प्राधान्य जमा चुका था। और इसी से मग्न होकर इसी के माध्यम से इति का लक्षण भी व्याप्त हो चला था। अधिकांश पश्चिमी दर्शकों और

---

1 माना चक्र में जाति-पाँति नहीं मानी जाती किन्तु व्यवहार पर उसे स्थान गढ़ रखा है।

सुन्दरीतन्त्र—

मायी तैली देवदासी तमनाथिका न्यादि।
नर तलीतरल्प सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता ॥ 1 ॥

शक्ति संगम तन्त्र—

कालीतारा छिन्नमस्ता सुन्दरी बगला रमा।
मातङ्गी भुवनेशानी सिद्धविद्या च भैरवी।
धूमावती च दशमी महाविद्या दश स्मृताः ॥ 2 ॥

कामाख्यातन्त्र—

योगिनी चक्रपूर्वेण कामनी भैरवेश्वरी।
अस्मादुत्पाद्य पक्षित्वा दैव मार्गे प्रपूजिता ॥ 3 ॥

मेरुतन्त्रम्—

तत्री भक्ती योगत् भोगत् च भक्तो योगत् परम्
स्वप्नयोगादर्द देव मुक्तिमुक्ति फलानाम् ॥ 4 ॥

तन्त्रान्तर—

शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे (पारस्पर सूक्ष्मे) नाम धाम न विद्यते
शिवं विना शिवशक्ति नावात न क्वचित् भवेत ॥

सब धर्मों का आगमन या पुराणों का नवीन रूप से संगठन। सम्भवतः इसमें गोरखनाथ को एक कोई मसक देने में सहायक रहा हो। किन्तु समता ऐसा है कि यह विशुद्धिमार्ग कुछ नये तथ्यों पर आश्रित था जिसे गोरखनाथ ने अब खूब बढ़ा-चढ़ाकर तैयार कर लिया था और वे अब उसका प्रतिपादन करने में समर्थ हो गए थे। यह भी हो सकता है कि उनके ब्राह्मण तत्त्व का यह अपरोक्ष विशुद्धतावाद का रूप रूढ़िवादी ब्राह्मणधर्म को नीचा दिखाने के लिए उठ खड़ा हुआ था। यह आगे स्पष्ट हो जाएगा।

गुरुद्धार

उस समय गोरखनाथ ने अपने गुरु को उस स्त्री साधना से बाहर निकाल लिया। इतिहास ने विस्मय से देखा होगा कि नवयुवक शिष्य अपने वयोवृद्ध गुरु को उपदेश दे रहा था विनीत-सा उनके चरणों के पास बैठकर। कितना महान् था मत्स्येन्द्र का व्यक्तित्व जिसने अहंकार और दम्भ नहीं किया वरन् सत्य का उद्भट प्रकाश देखकर सारे कलुषजाल को वह छोड़ने को उद्यत हो गया[1]। *वह जो पहले सिद्धामृत मत का अनुयायी था बीच में वाममार्ग में फँस* गया था अब फिर लौट आया था पवित्र जीवन की ओर।

नई साधना

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरख की मुख्य विशेषता उनका ब्रह्मचर्य पर विशेष जोर देना था। इसको सरसरी दृष्टि से देखने पर कोई बहुत बड़ी बात

1 सिंहल के गुरु को छुड़ाकर गोरख उनके तथा मीन (उनके पुत्र) के साथ सुरसपुरी मायापुर गए। [illegible] गोरख नहीं [illegible] था। मत्स्येन्द्र ने मीन को दीक्षा दी। फिर तीनों [illegible] पर्वत पर गए। वहाँ गोरखनाथ के समाधिस्थ होने पर मत्स्येन्द्र ने सेवा की।

—गो० सि० सा०

संभवतः [illegible] की इसी कथा की ओर मोहन सिंह ने इंगित किया है।

गोरख बाल्यावस्था में उनके त्रियराज में फँसने की बात जानने के विषय में कहते हैं (गो० सि० तथा अन्य स्थानों में भी यह कथा मिलती है।)

जागै रचौ गुरु जागै रचौ रचौ जोग मोह माया।
आतमा परचै राखौ गुरुदेव सुन्दर काया ॥ (टेक)
[illegible] रत्न [illegible] गुरु [illegible] मैं।
[illegible] मैं [illegible] गुरु [illegible] [illegible] ॥ 1 ॥
[illegible] गुरु [illegible] [illegible]।
[illegible] रत [illegible] गुरु [illegible] न पीजै ॥ 2 ॥
[illegible] [illegible] दूरी [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] गुरु [illegible] ने [illegible] ॥ 3 ॥

है। संक्षेप में इसका रेखाचित्र यों बन सकता है —

रेखाचित्र स्पष्ट है। स्त्रीहीन कौल मार्ग में सिद्धामृत मत समझना चाहिए और देवियों में त्रिपुर सुन्दरी योगिनी कौल हाकिनी शाकिनी इत्यादि। बिन्दुमय रेखा से मत्स्येन्द्र के साधन पथ को समझना चाहिए। जिस कोष्टक में से बाण निकाला दिखाया गया है उसी में सम्भवतः जालन्धर थे। तत्कालीन धार्मिक मार्ग का यही प्रधान रूप दिखाई देता है। पृष्ठभूमि नामक अध्याय तथा उपसंहार इन दोनों के अन्त में दी हुई तालिका का मिलान कर लेने से सहूलियत हो सकेगी। भारतीय मध्य युग के सन्धिकाल में गोरखनाथ को कितना बड़ा काम मिला था इस रेखाचित्र से कुछ अंश तक इसकी ओर इंगित होता है। आगे हम इसी विषय को सविस्तार देखेंगे।

नहीं लगती क्योंकि शाक्त मत के तान्त्रिक और कौलों का उद्देश्य योगी का चरम प्राप्तव्य ही तो था। गोरख ने नई क्या वस्तु प्रतिपादित की? अगले अध्याय में हम देखेंगे कि इस एक विशेषता से गोरखनाथ ने भारतीय इतिहास की कितनी धाराओं का एकीकरण कर दिया था। उसका प्रभाव हम उनके प्रभाव प्रकरण में देखेंगे।

यह व्यक्ति था जो कि कुटियों से राजमहलों तक समान रूप से अपनी गति रखता था उसका समाज में न कोई धन-पक्ष था न पद-पक्ष ही। वह केवल व्यक्ति था। केवल योगी। उसमें यदि एक ओर सहजयानियों की मस्ती थी तो वह दूसरी ओर अपने मत के फैलाने के लिए अत्यन्त व्यापक दृष्टिगत होता है। भारतीय इतिहास में इस चरित्र के स्थान के समझने के लिए तत्कालीन अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से इसका मिलान करने की आवश्यकता

एक जन बंधि गईला रहि गयी ओई।
बंधत मछिंद्रनाथ पूत जोग न होई ॥ 4 ॥
एक गुरु यदि गईला रहि गईला सारे।
कहंत गोरखनाथ गुरु जोग बताई ॥ 5 ॥
आभिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता।
बनारी मयीने गोरख अवधूता ॥ 6 ॥ —गोरखबानी

तथा

कहो हो मछिन्द्र गोरख बोले अलख अभय बहु देवा।
निरति करी मैं सोचो गुफिया हमहे सतगुरु दै भाषा ॥ (टेक)
कामनी बाणी योग न होई मन तुम पावै भेद।
यहां जावै तहां फिरि आवै अनुमानि बिन भेद।
(नुर्वे) प्रारब्ध पोषि (दोष) वर्तनी (दूर करै)
जोगन (अध्यय) जीव जीव का पाया।
गोरख ब्रह्मरन्ध्र मौ मन देव है इस ही ध्यान निरन्तर।
पवन अरु नीर न अंबर बोले आपै आपमें भासा।
अनुगन गोरखनाथ इम तेरे निरन्तर दीपे अवघ समाना ॥ —गोरखबानी

गुरुगीता को गोरखनाथ ने यहां तथा अर्पित कर दी है। —गुरुगीता

यदङ्घ्रि कमल मकरन्द गुरुं माया ... िर्पितमात्मा ... ।
कृपा ... वर्त ... अभवरूभिजरत प्रभवे ... नमामि गुरुवरं सदाऽस्वय।
...वेदान्त नि ... यदि ... निरंजनं ... ।
... । ...
—योगमार्गतिलक

दर्शन और योग

दर्शन और योग*

गोरख की साधना में शक्ति थी तभी उसने भुजा उठाकर उस विराट तूफान को रोक दिया। अपने युग के एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति मत्स्येन्द्र नाथ को उसने अपनी बात का समर्थक बना लिया था। उसने एक अद्भुत क्रांति की थी। क्या गोरखनाथ स्त्री से सचमुच छूट गए थे? अब हमें यही देखना चाहिए।

कुण्डलिनी

हठयोग प्रदीपिका में जिन उल्लेखनीय योगियों का नाम आया है उनमें आदिनाथ के बाद मत्स्येन्द्र सर्वप्रथम हैं। शाबर, आनन्द भैरव चौरंगी मीन के साथ गोरखनाथ भी आए हैं। जिस श्लोक में मत्स्येन्द्र और गोरख का जहाँ नाम है वहाँ टीकाकारने टीका में आद्या शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है। हीति प्रसिद्ध मत्स्येन्द्रश्च गोरक्षश्च तौ आद्यौ येषां ते मत्स्येन्द्र गोरक्षाद्या। आद्य शब्देन चामत्कारनाथ भर्तृहरि गोपीचन्द्र प्रभृतयो ग्राह्या। हठयोग की इस स्पष्ट और पुष्ट परम्परा के पहले भी इस देश में मार्कण्डेय का हठयोग था। इस मार्कण्डेय के हठयोग का क्या स्वरूप था यह स्पष्ट नहीं है। षडंग और अष्टांग योग का भेद विशेष इंगित करने में असमर्थ है, क्योंकि एक दूसरे ग्रन्थ में विरोधी तत्त्वों का समावेश प्राप्त हो जाता है। गुप्त साम्राज्य के पतन काल के समय लिखे गए योग-वाशिष्ठ में कुण्डलिनी शक्ति के उद्बोधन द्वारा प्राप्त होनेवाली सिद्धियों का वर्णन है। कुण्डलिनी शरीर के मर्म स्थान में चक्र के आकार वाली सैकड़ों नाड़ियों का आश्रय आंत्र वेष्टनिका (आँतों से घिरी हुई) नाम की एक नाड़ी है। उसका आकार वीणा के अग्र भाग की गोलाई, जल भँवर, या ओंकारार्द्ध तथा कुण्डल चक्र के समान है। यह देव असुर, मनुष्य पशु नक्र मृग कीटादि में है। यह ऐसे सोई हुई है

---

* यह व्याख्यान निम्नलिखित ग्रन्थों की सहायता से लिखा गया है —

1 हठयोग प्रदीपिका, स्वात्माराम। 2 गोरक्षसिद्ध और उसके सिद्धान्त [illegible] [illegible]। 3 शिवसंहिता। 4. घेरण्ड संहिता। 5 गोरक्ष पद्धति। 6. अमरौघ शासनम्।

कुण्डलिनी सांख्य पातंजल योग दर्शन शंकर वेदांत समानता और शैव शाक्त मत और उसका समाज गोरक्षनाथ का दर्शन हठयोग तथा उनके सिद्धान्त गोरखपंथ सिद्धि रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद एक परीक्षा व्यक्तिवाद, भारतीय इतिहास शृंखला पूर्ववर्ती तथा परवर्ती ।

के पास परस्पर मिले हुए मुखवाली बोकनियों के समान मांस का पिण्ड इस प्रकार कांपते हुए स्थित है जैसे कि ऊपर और नीचे से बहनेवाले दो जलों के बीच स्थित सदा हिमनेवाला चेतस कूंभ। उससे भीतर उसकी लक्ष्मी कुण्डलिनी शक्ति ऐसे स्थित है जैसे मूंगे की पिटारी में मोती की माला। श्वास की माला के समान वह नित्य सरसराती है और दण्ड पीड़ित सर्पिणी के समान ऊर्ध्वमुखी है।

उस कुण्डलिनी में पूरक प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राणी समरूप से स्थित हो जाता है तब सुमेरु के समान स्थिरता और गुरुता की सिद्धि हो जाती है। जिस प्रकार पूरक प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक और मानसिक परिस्थिति को सहकर कुण्डलिनी शक्ति अपने मूलाधार स्थान से ऊपर उठकर सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरंध्र पर्यंत आती है और दण्डाकारविभ होकर सर्पिणी-सी ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती है और सब नाड़ियों की शक्ति को भी अपने साथ ऊपर ले जाती है तब उसमें शरीर का उड़ा ले जाने की ऐसी सामर्थ्य हो जाती है जैसे हवा से भरी मीरंध्र मशक जल पर तैरती है। जिस समय अन्य नाड़ियों के व्यापार को रोकनेवाले रेचक प्राणायाम के प्रयोग से कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्म नाड़ी (सुषुम्णा) के भीतर को होकर मस्तिष्क द्वार उन्मुक्त कर वहाँ से बारह अंगुल ऊपर की ओर मस्तिष्क में जाकर एक मुहूर्त के लिए भी स्थिर हो जाती है तो आकाशगामी सिद्ध लोगों का दर्शन होता है। रेचक के अभ्यासरूपी युक्ति से प्राणों को मुख से 12 अंगुल बाहर बहुत समय तक स्थिर करने के अभ्यास से योगी दूसरे पुरुष के शरीर में प्रवेश कर सकता है। रेचक के अभ्यास से जब योगी अपने जीव को कुण्डली के निवास स्थान से बाहर इस प्रकार निकाल सके जैसे हवा में से सुगन्ध को तब वह इस चेष्टा-रहित शरीर को लकड़ी और पत्थर के समान त्याग देता है और दूसरे शरीर में चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन इच्छानुसार प्रवेश करके उसकी सम्पत्ति का भोग कर सकता है। इस प्रकार योगी दूसरे शरीर के भोगों को भोगकर, यदि उसका शरीर बना रहा तो उसी में नहीं तो अपनी रुचि के अनुसार किसी दूसरे शरीर में प्रवेश करके स्थिर रहता है। अथवा अपनी स्थिति को समस्त जगत् में फैलाकर सारे शरीरों में व्याप्त होकर सर्वत्र स्थिर रहता है। हृदय कमल के चक्र के कोण के ऊपर (अग्नि) तेज का एक कण ऐसा चमकता है जैसे सोने का भँवरा अथवा श्याम मेघ में विद्युत् कण। वह प्रकाश कण विस्तार भावना के द्वारा वायु की भाँति फैलने और ज्ञानरूप से शरीर में पूर्णिमा चमकने लगता है। वह अग्निकण विस्तार पा समस्त अंगों सहित शरीर को जला देता है जैसे सोने को अग्नि। शरीर के पार्थिव और जलमय

जैसे जाड़े से मार्ग कुण्डली मारकर सर्पिणी। उर से लेकर भ्रू तक सबको स्पर्श करती चंचल वृत्ति वाली मनोरथ सम्पन्न है। उस नाड़ी के भीतर, जो कदली कोष की सी कोमल है, वीणा की सी स्वरवाली एक परा शक्ति है। कुण्डलाकार होने के कारण उसका नाम कुण्डलिनी है। वह प्राणिमात्र की परम शक्ति गति देने वाली है। क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति फुँकार मारती वह ऊर्ध्वमुखी निरन्तर साँस लेती समस्त शरीर में स्पन्दन उत्पन्न करती है।

हृदय कोष में आनेवाली सब नाड़ियाँ उससे इस प्रकार सम्बद्ध हैं जैसे समुद्र में नदियाँ मिलती हैं उत्पन्न होकर विलीन हो जाती हैं। नाड़ियों के मिलन और सम्बन्ध से सब ज्ञानों का बीज सामान्य ज्ञान से उसे पुकारते हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का बीज कुण्डलिनी शक्ति में स्थित है और प्राण के द्वारा वह बीज संचालित होता है। यह कुण्डलिनी शक्ति स्पंदन स्पर्श और ज्ञान सब की मुख्यकला है। संकल्पयुक्त होने से उसका नाम कला है और चेतन होने से चित् है। जीवन से जीव मनन से मन और बोध से बुद्धि होती है यह प्रसिद्ध है। अहंकार प्राप्त होने से यह पुर्यष्टक कहलाती है। अपान वायु का रूप धरकर यह शक्ति सदा अधोन्मुखी होती है। समान वायु से नाभिस्थित तथा उदान मार्ग से ऊर्ध्वमुखी होती है। जब गति नीचे होने से यह शरीर से निकल जाती है और मनुष्य मर जाता है। इसी भाँति मध्य में रहकर यह ऊपर निकल जाए तो भी मनुष्य को मृत्यु प्राप्त होती है और यदि ऊपर नीचे न बहकर किसी जीव की परम शक्ति मध्य भाग में निरुद्ध होकर स्थिर हो जाय तो वह प्राणी सब रोगों से मुक्त हो जाता है। पुर्यष्टक नाम जीव की आत्मा नामक शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। वह शरीर में इस प्रकार है जैसे फूल में सुगंध देने वाली मंजरी। इस देह रूपी यन्त्र के उदरभाग में नाभि

---

7 दि सर्पेन्ट पावर, आर्थर एवेलान। 8 शक्ति एण्ड शाक्त वुडरौफ। 9 नाथ सम्प्रदाय हजारीप्रसाद द्विवेदी। 10 गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज ब्रिग्स। 11 अनु दशि स्टोन एवेलान। 12 महानिर्वाण तन्त्र एवेलान। 13 सिद्धसिद्धान्त संग्रह भाग डेसक्रप्स। 14 सरस्वती भवन सीरीज़ भाग्यम् 2 गोपीनाथ कविराज। 15 सर्वदर्शन संग्रह। 16. पुरश्चर्यार्णव भाग 1। 17 गोरक्ष संहिता। 18. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह। 19 गोरखनाथ एण्ड मिडीवल हिन्दू मिस्टिसिज्म मोहनसिंह। 20 दि वर्ल्ड एज पावर रियलिटी वुडरफ। 21 कामकलाविलास एवेलान। 22 कौलज्ञान निर्णय एवेलान। 23 कौलज्ञान निर्णय बागची। 24 कल्याण शिवांक। 25 सरस्वती भवन स्टडीज भाग 2, 6। 26 एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स। 27 प्रोसीडिंग्स आफ दि ओरिएण्टल कान्फ्रेंस 2, 5 6 12वां सेशन।

द्वैतं यथा नास्ति चिदात्म जीवयो
स्तथैव भेदोऽस्ति न जीव चित्तयो ।
यथैव भेदोऽस्ति न जीव चित्तयो
स्तथैव भेदोऽस्ति न देह कर्मणो ।।3।। (3/95/12)

घड़ा जिस प्रकार मिट्टी ही है उसी प्रकार प्रकृति भी आत्मा ही है। आत्मा का स्पन्दन प्रकृति है। ब्रह्म से उत्पन्न हुए मनों को ब्रह्म ही समझना चाहिए। मन ब्रह्म की शक्ति है। उसकी मनोमय स्पन्द शक्ति उससे अनन्य है—एक ही है। ईश्वर जगत् के बिना नहीं है। ईश्वर अहंभाव और जगत् के बिना नहीं रहता। चित् की सत्ता जगत् की सत्ता है और जगत् की सत्ता चित् की सत्ता है। सब भेद और विकार ईश्वर में आकाश के नीलेपन के समान ही स्थित हैं। जैसे—

ब्रह्म व्योम जगज्जालं ब्रह्म व्योम दिशो दश
ब्रह्म व्योम कलाकालदेशद्रव्य क्रियादिकं
पदार्थजात शैलादि यथा स्वप्ने पुरादिव
चिदेवेदं परं व्योम तथा जाग्रत्पदार्थ भू ।

सब चितक्य ब्रह्म ही है और कुछ भी नहीं है।

सांख्य

सांख्य के प्रवर्तक कपिल मुनि हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि जन्म-मृत्यु से कैवल्य मार्ग उन्होंने शिव से ही सीखा है। अब तत्त्वसमास नामक सांख्य सूत्रों का संक्षिप्त हिन्दी में अनुवाद किया जाता है। सांख्य और योग को पृथक्-पृथक् अविवेकी लोग ही जानते हैं न कि पण्डित लोग। सम्यग् अर्थात् सन्यासी एक में ही दोनों का फल प्राप्त करता है। गीता में सांख्य योग को ज्ञान योग तथा संन्यास योग के नाम से ही पुकारा गया है। संसार में सब सुखी होना चाहते हैं। दुःख की जड़ अज्ञान है। संगति—मूल तत्त्व दो प्रकार के हैं एक जड़ और एक चेतन। जड़ के अवान्तर भेद 24 हैं 25वाँ चेतन तत्त्व है। जड़ तत्त्व के प्रथम दो भेद प्रकृति और विकृति है। प्रकृति 8 हैं। प्रधान अर्थात् मूल प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ शब्द तन्मात्रा स्पर्श तन्मात्रा रूप रस तथा गन्ध तन्मात्रा । 16 विकृतियाँ हैं (पाँच स्थूल भूत—आकाश वायु, अग्नि जल पृथ्वी 11 इन्द्रियाँ—5 ज्ञानेन्द्रियाँ × श्रोत्र त्वचा नेत्र रसना और घ्राण और 5 कर्मेन्द्रियाँ—वाणी हस्त पाद उपस्थ और गुदा तथा 11वाँ मन है)। नये तत्त्व के उपादान कारण को प्रकृति तथा इसके विपरीत को विकृति

दोनों भागों को बनाकर अपने-आप भी वह कण विमुग्ध प्राण द्वारा कहीं ऐसे गायब हो जाता है जैसे वायु द्वारा नीहार। उस समय सुषुम्णा नाड़ी के जल जाने पर कुण्डलिनी शक्ति आकाश में ऐसी स्थित होती है जैसे अग्नि से निकली हुई धुएँ की लटा। उस समय वह कुण्डलिनी शक्ति अपने भीतर मन बुद्धि जीव अहंकार-सहित और नाना प्रकार की वासनाओं से पूर्ण आकाश में ऐसी सुशोभित होती है जैसे कि नगर से निकला हुआ धुएँ का स्तम्भ। ऐसी अवस्था में उसका प्रवेश चाहे जिस वस्तु—कमलदण्ड पहाड़ तृण दीवार, पत्थर, आकाश पृथ्वी—में हो सकता है। वही कुण्डलिनी जब स्थूल भाव को धारण करना चाहती है तो फिर इस भावना द्वारा रस से इस प्रकार भरने लगती है जैसे सूखा हुआ चढ़स पानी से भरे जाने पर फूल जाता है। रस से पूर्ण होकर वह जिस आकार को चाहे ऐसे धारण कर लेती है जैसे चित्रकार के मन की रेखाएँ नाना प्रकार के रूप धारण कर लेती हैं। दृढ़ भावना द्वारा वह इन्द्रियों की इस प्रकार रचना कर लेती है जैसे कि माता के गर्भाशय में पड़ा सूक्ष्म बीज स्थूल आकार को धारण कर लेता है। तब वह जीव-शक्ति इच्छा नुसार बड़े-से-बड़ा (सुमेर के समान) और छोटे-से-छोटा (तृण के समान) आकार धारण कर सकती है।[1]

जैसे तुषा और उसकी चलने की क्रिया आप और उसकी गर्मी सदा एक ही होती है वैसे ही चिति और स्पन्द शक्ति एक ही है। मनोमयी स्पन्द शक्ति ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जबकि चिति शक्ति क्रिया देवी क्रिया से निवृत होकर अपने स्थान की ओर आत्मा में वापस आ जाती है और वहीं पर शान्त भाव से स्थित रहती है तो उस अवस्था को शिव (शान्त ब्रह्म) कहते हैं। क्रिया देवीचिच्छक्तिरूपी उस महान् आकृतिवाली स्पन्द शक्ति का अपने असली रूप में स्थित रहने का नाम शिव है। चिति की चेतनता कुछ स्पन्दन बिना नहीं रहती। प्रकृति से परे पुरुष दिखाई न देनेवाला है। भ्रमरूपा प्रकृति परमेश्वर की इच्छारूपी स्पन्दात्मक शक्ति है तभी तक भ्रमणशीलता है जब तक कि वह नित्य तृप्त और अनामय शिव का दर्शन नहीं करती। संवित् मात्र सत्ता से तादात्म्य होने पर जब प्रकृति दैवयोग से पुरुष से स्पर्श करती है तब वह उससे तादात्म्य ग्रहण करती है। शिव की इच्छा चिच्छक्ति शिव को प्राप्त कर शान्त हो जाती है।

---

1 यो वा और व सि स्पन्देश पृष्ठ 267 274।

2 यो वा और व सि स्पन्देश, पृष्ठ 313-315।

तथा 8 प्रकार की सिद्धि हैं। बस मूलभूत धम हैं—अस्तित्व योग वियोग शेष वृतित्व एकत्व अर्थवत्व अन्यता अकर्तृत्व और बहुत्व। अव्यक्त की परम्परा के अनुकूल प्रवृत्ति सृष्टि है। प्राणि सृष्टि 14 प्रकार की है—तीन प्रकार के बंध तथा तीन प्रकार के मोक्ष हैं तीन ही प्रमाण हैं। यह जाननेवाला दुःख से नहीं बचाया जा सकता। हेय हेय हेतु, हान तथा हानोपाय सांख्य के मुख्य सिद्धान्त है। सांख्य दर्शन पुरुष का बहुत्व है। ईश्वर प्रणिधान से समाधि लाभ होता है। क्लेश कर्म उनके फल और वासनाओं से असम्बद्ध पुरुष विशेष ईश्वर चेतन है। ईश्वर ईशनशील अर्थात् इच्छा-मात्र से संसार का उद्धार करने में समर्थ है। मनीषी इंद्रिय मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं। सर्वज्ञता का बीज ईश्वर में निरतिशय है। यह सारा संसार पुरुष की स्वभाव-रूपा स्थिति का ज्ञान करने के लिए है। अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होता है। यह 'हान' है और यही मोक्ष है। निर्मल विवेक ख्याति हान का उपाय है। जानना करना साक्षात् बनाना अधिकार, गुणों का प्रयोजन समाप्त कर अपने कारण मे लीन होना गुणों से परे हो अपने स्वरूप में स्थित होना यह सात प्रान्त भूमि प्रज्ञा है। जिसमें और कुछ शेष नहीं रहता। चित्त में निरोध परिणाम तथा संस्कार शेष निवृत्त हो जाते हैं। चित्त को बनानेवाले गुण पुरुष का भोग अपवर्ग का प्रयोजन पूरा करके अपने कारण में लीन हो जाते हैं और पुरुष अपने कैवल्य रूप मे अवस्थित हो जाता है। पुरुषार्थ से शून्य गुणों का निज कारण में लीन होना कैवल्य है। चिति शक्ति की स्वरूपा वस्थिति ही कैवल्य है।

पातंजल योग दर्शन

पातंजल दर्शन पर सर्व दर्शन संग्रह तथा अन्य[1] ग्रन्थों से यहाँ सारांश दिया जाता है। सेश्वर सांख्य मत ही पतंजलि का योग शास्त्र है। इसके चार पाद हैं समाधि पाद साधन पाद विभूति पाद कैवल्य पाद। पहले पाद में योग शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति का निरोध है। द्वितीय में तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग तथा निर्देशपूर्वक व्युत्थित चित्त का क्रिया योग यमादि पाँच बहिरंग साधन का वर्णन है।

---

1 पातंजल योग प्रदीप स्वामी ओ आत्मानन्द। [illegible] पातंजल की तैयारी श्रीपाद दामोदर सातवलेकर। 3 योगसूत्र रामशरण चतुर्वेदी। 4. योग दर्शनम् मधुसूदन। 5 योग कार्मिकाएं। 6 दि वहोल्टन इ दि योग [illegible] । 7 यौगिक साधना [illegible]। 8 सर्वदर्शन संग्रह।

कहते हैं। जड़ तत्त्व के 24 विभागों में से जो 8 प्रकृतियाँ बतलाई गई हैं उनमें से प्रधान—मूल प्रकृति ही एक केवल प्रकृति है—बाकी प्रकृति और विकृति दोनों हैं। महत्तत्त्व (समष्टिचित्त) प्रधान (मूल प्रकृति) की विकृति और अहंकार की प्रकृति है। चेतन तत्त्व पुरुष है। जड़ तत्त्व से सर्वथा विलक्षण है। इस चेतन तत्त्व की सन्निधि के कारण पूर्वोक्त जड़ तत्त्व में एक प्रकार का क्षोभ हो रहा है जिससे प्रधान में महत्तत्त्व महत्तत्त्व में अहंकार अहंकार में तन्मात्राओं और इन्द्रियों का और तन्मात्राओं में पाँच स्थूल भूतों का परिणाम हो रहा है। चेतन तत्त्व संख्या की सीमा से परे है। जड़ तत्त्व की उपाधि से उसमें संख्या का आरोप कर लिया जाता है। उसी विकल्प से पुरुष में बहुत्व कहा जाता है। *चेतन से प्रतिबिम्बित महत्तत्त्व में जब समष्टि अहंकार बीज रूप से छिपा* हुआ हो तो उसको समष्टि अस्मिता कहते हैं। जड़ तत्त्व में सब प्रकार के परिणामों का निमित्त कारण पुरुष है और इन सारे परिणामों का प्रयोजन भी पुरुष का भोग और अपवर्ग ही है। प्रकृति के सत्त्व रजस् तथा तमस् तीन गुण हैं। सृष्टि और प्रलय इन तीनों गुणों की अवस्था विशेष है। 11 इन्द्रियाँ और 5 स्थूल भूत इन 16 केवल विकृतियों का जो तीन गुणों के केवल विकार हैं वर्तमान स्थूल रूप को छोड़कर अपने कारण अहंकार और 5 तन्मात्राओं में क्रम से लीन हो जाना प्रलय कहलाता है। सृष्टि के तीन भेद हैं—अध्यात्म अधिभूत तथा अधिदैव। अध्यात्म—बुद्धि अहंकार, मन इन्द्रिय तथा शरीर से सम्बद्ध है। अधिभूत—जो अन्य पशु पक्षी अन्य *प्राणियों से तथा अधिदैव*—पृथ्वी सूर्य आदि दिव्य शक्तियों से सम्बद्ध है। आध्यात्मिक दुःख-सुख दो प्रकार का है—शारीरिक और मानसिक। बुद्धि की पाँच वृत्तियाँ हैं। वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं—प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा तथा स्मृति। प्रमाण तीन प्रकार का है—प्रत्यक्ष अनुमान और आगम। विपर्यय मिथ्या ज्ञान है जैसे रज्जु में सर्प भ्रम। विकल्प भेद में अभेद है। अभाव की प्रतीति निद्रा है। स्मृति इन पाँचों वृत्तियों द्वारा अनुभूत ज्ञान का स्मरण है।

पाँच ज्ञान के स्रोत हैं—ज्ञानेन्द्रिय नेत्र श्रोत्र घ्राण-रसना और त्वचा। पाँच वायु हैं प्राण अपान समान व्यान उदान। प्राण का निवासस्थान हृदय अपान का गुदा समान का नाभि व्यान का नाड़ी जाल तथा उदान वायु सूक्ष्म शरीर को शरीरान्तर या लोकान्तर में ले जाता है। कर्म की पाँच शक्तियाँ हैं—बोलना पकड़ना चलना मूत्र-त्याग मल-त्याग। इन कामों को करनेवाली पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं—वाणी हस्त पाद उपस्थ और गुदा। अविद्या पंच पर्वा है—अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश। अशक्ति 28 प्रकार की है जिनमें बुद्धि की अशक्ति 17 तरह की है। इसमें 9 प्रकार की तुष्टि

कहलाती है। जो वितर्क और विचार समाधि के परे तथा आनन्दानुगत हैं उन्हें विप्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है अर्थात् वे जन्म से ही योग प्रवृत्त होने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं और पूर्वजन्म की योगसिद्धि उन्हें नये जन्म में सहायता देती है। जिन्हें ऐसा नहीं होता उन्हें उपाय प्रत्यय समाधि होती है।

ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है। प्रकृति और पुरुष से यह ईश्वर भिन्न है। क्लेश कर्म कर्म फल से असंग यह विशिष्ट है—चेतन ईश्वर है। इन्द्रिय और मनोमय आत्मा भोक्ता है। माया प्रपंच का उपादान कारण है और माया का प्रभु प्रेरक परमेश्वर उसका निमित्तकारण है। ईश्वर में अन्य पुरुषों से विशेषता है कि वह त्रिकाल से ऊपर बताई बातों से असम्बद्ध है। वह काल से बद्ध नहीं है। उसका वाचक ओम अक्षर है। ओम का बार बार चिंतन ईश्वर प्रणिधान है। जिसके द्वारा प्रत्येक चेतना का साक्षात्कार होता है। ईश्वरोपासना से जीव और ईश्वर दोनों का ज्ञान होता है। यह अविद्याविशिष्ट जीव है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि मन तो अनन्त है। अर्थात् विभु है इसकी वृत्ति संकोच और विस्तारवाली है। समाधि की एकाग्रता से सत्व रजस् को दबाता है जिससे सूक्ष्म शरीर एकाग्रता वृत्ति दिखाने में असमर्थ हो जाता है। तब विवेक ख्याति से परे आत्मा अपने शुद्ध रूप में ठहरती है। दौर्मनस्य अपूर्ण इच्छा से क्षोभ अंगमेजयत्व अर्थात् शरीर कंपन श्वास अर्थात् वायु पर अधिकार न होना तथा प्रश्वास होना यह योगी के लिए विघ्न हैं।

एकत्व के अभ्यास से यह दूर हो सकते हैं। इसलिए वायु पर अधिकार करना आवश्यक है। वायु दस प्रकार के बताए हैं प्राण अपान समान उदान व्यान नाग कर्म कृकर देवदत्त और धनंजय। ये प्राणवायु हैं। योगी याज्ञवल्क्य ने इनके कार्यों को बताया है। प्राण पर अधिकार होने से शरीर इन्द्रिय और मन पर भी अधिकार होता है। प्राणों को वश में करने को ही प्राणायाम कहते हैं। गन्ध रूप रस स्पर्श और शब्द से सब बँध जाते हैं। मन स्थिर होता है। शोक-रहित ज्योतिष्मती वृत्ति मन को साधती है। योगी वीतराग हो जाता है अथवा ध्यान अभिमत (इच्छित) में टिकता है। अब परमाणु और आकाश सूक्ष्मतम और महानतम दोनों का वशीकार हो जाता है। जो वस्तु जैसी है वैसी ही उसकी धारणा होती है। स्मृति शुद्ध हो जाने पर अर्थ-मात्र से भासित होनेवाली—रूप के ज्ञान से रहित चित्तवृत्ति निर्वितर्क समापत्ति कहलाती है। चित्त यद्यपि बिलकुल शून्य नहीं होता यदि वैसा हो तो वह पदार्थ को ग्रहण नहीं कर सकता परन्तु उसे ऐसा प्रतीत अवश्य होने

तृतीय में देश बन्ध चित्त धारणा ध्यान समाधिविषय इत्यादि का उल्लास है। चतुर्थ में जन्म औषधि मंत्र तप और समाधिजन्य सिद्धि कहकर कैवल्य का मर्म बताया गया है। प्रधान प्राचीन 25 तत्त्व हैं। 26वाँ परमेश्वर है। यह परमेश्वर स्वेच्छाक्रम से निर्माण शरीर में अधिष्ठान करके लौकिक और वैदिक सम्प्रदाय की वर्तना करता है और प्राणि-मात्र पर अनुग्रह करता है। योग के 8 भेद हैं। राज योग अर्थात् ध्यान योग ज्ञान योग अर्थात् सांख्य योग कर्म योग अर्थात् *निष्काम कर्म अनासक्ति योग भक्ति योग हठ योग इत्यादि।* सब योग राजयोग के अन्तर्गत हैं। केवल राजयोग के लिए हठयोग की विद्या का उपदेश किया जाता है। यह हठयोग प्रदीपिकाकार का भी कथन है। लययोग और कुण्डलिनीयोग तो राजयोग ही है।

चित्तवृत्ति का निरोध ही जो योग है तो चित्त की पाँच भूमियाँ हैं। मूढ़ावस्था 'तमोगुण' क्षिप्तावस्था 'रजो गुण' विक्षिप्तावस्था 'सतोगुण' एकाग्रावस्था 'निरुद्धावस्था' तथा 'विवेकख्याति द्वारा पुरुष भेद का साक्षात्कार। चित्त जड़ है पर ज्ञान पुरुष से प्रतिबिम्बित है। पुरुष की चित्तवृत्ति चेतन-मात्र होती है। पुरुष और वृत्ति तब एक-से दिखाई देते हैं। अक्लिष्ट—वैराग्य आदि अभ्यास से प्राप्त होती है—उत्पन्न होती है। वृत्तियाँ प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति हैं। प्रमाण सांख्य जैसे ही तीन हैं। विपर्यय मिथ्या ज्ञान है। विकल्प शब्द से उत्पन्न ज्ञान है अभाव की प्रतीति निद्रा है। तन्मात्र-विषयक ज्ञान स्मृति है। चित्तवृत्ति-निरोध के दो उपाय हैं—अभ्यास और वैराग्य। अभ्यास से भूमि दृढ़ होती है। दिखती और सुनाई देती बातों में जिसकी तृष्णा अशेष हो चुकी है उसे वशीकार नामक वैराग्य होता है। विकार हेतु होने पर भी चित्त डगमगाता नहीं है। यह अवस्था आगे बढ़कर परवैराग्य कहलाती है। वैराग्य की चार संज्ञा है—यतमानव्यतिरेक एकेन्द्रिय वशीकार, रागद्वेष से आंशिक निवृत्त जब मन में भी नहीं रहती तब चौथी अवस्था वशीकार कहलाती है। वितर्क विचार, आनन्द अस्मिता, अनुगमात से यह अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि है। वितर्कानुगत विचारानुगत आनन्दानुगत अस्मितानुगत समाधि ही सम्प्रज्ञात समाधि है। इसमें वस्तु संशय और विपर्यय (अविद्या) से रहित दृश्यमान होती है अस्मितानुगत में बीज रूप से जो अहंकार रहता है वह अनुभव करता है 'मैं सुखी हूँ'। अन्नमय कोष से प्राणमय कोष वहाँ से मनोमय कोष विज्ञानमय कोष आनन्दमय कोष होकर आत्मा शुद्ध आत्मतत्त्व तक पहुँचता है। इसमें वह स्थूल कर्म ज्ञानेन्द्रियों से होकर अहंकार वहाँ से चित्त महत्त्व होकर ज्ञान और आलोक प्राप्त करता है। बार-बार सम्प्रज्ञात समाधि से विकार बहुत कम रह जाने पर वह दशा असम्प्रज्ञात समाधि

संयोग का कारण अविद्या है। विवेक ख्याति अर्थात् विवेक ज्ञान पुष्ट हो तो वह हान का उपाय है। निर्मल विवेकख्याति में प्रज्ञा उत्पन्न होती है। उसकी सात प्रकार की सर्वोच्च भूमि होती है। ज्ञेयशून्य हेयशून्य प्राप्यप्राप्त चिकीर्षाशून्य (जो करना था वह कर लिया) चित्त विमुक्ति हुए लीनता आत्मस्थिति अवस्था से होता योगी जीवन्मुक्त कहलाता है। चित्त जब अपने कारण में लीन होता है तब उसे विदेह मुक्त समझना चाहिए। योगांग अनुष्ठान से अशुद्धि क्षय होने पर ज्ञान दीप्ति से विवेक ख्याति प्रकाशित होती है। अब यम कहते हैं वे अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह हैं। अस्तेय का अर्थ अन्याय से धन न छीनना है तथा अपरिग्रह का अर्थ भोग सामग्री से अधिक न जोड़ना है। जाति देश काल समय से अविच्छिन्न नियम—यम जो सार्वभौम है—वे महाव्रत कहलाते हैं। शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वर-प्रणिधान यह नियम है। शौच दो हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। सब कर्मों का ईश्वर में समर्पण ईश्वर प्रणिधान है। जब चित्त में वितर्कभाव उठें तब उन्हें उनके विपरीत भावों के चिंतन से बचाना चाहिए। वितर्क हिंसा आदि यमनियम विरोधी हैं। सत्य में योगी की दृढ़ता हो जाने पर वह क्रिया फल का आश्रय बनता है अर्थात् अमोघ वचन इत्यादि। ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से वीर्यलाभ होता है। शौच से अपने अंगों से जुगुप्सा होती है तथा दूसरों में असंसर्ग। आभ्यन्तर शुद्धि से चित्त की शुद्धि मन की स्वच्छता एकाग्रता इंद्रिय विजय आत्म दर्शन-योग्यता प्राप्त हो जाती है। संतोष से उत्तम सुख होता है। तप से अशुद्धि-क्षय होने पर शरीर और इंद्रिय शुद्ध होते हैं। स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात् होता है। समाधि की सिद्धि ईश्वर प्रणिधान से होती है। अब आसन का लक्षण बताते हैं। स्थिर सुखमासनं। जो स्थिर व सुखदायी हो वह आसन है। जिस रीति से स्थिरतापूर्वक बैठ सकें वही आसन है। इसमें कठिनता का आभास नहीं है। जब योगी स्वाभाविक चेष्टा नहीं करता आसन की सिद्धि होती है जिससे द्वन्द्व का प्रहार बन्द होता है। आसन से श्वास प्रश्वास को रोकना प्राणायाम है। योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार प्राण और अपान को मिलाना प्राणायाम है। प्राणायाम की चारो अवस्था समाप्त होने से प्रकाश का आवरण अर्थात् विवेक ज्ञान का परदा क्षीण यानी फट जाता है। धारणा में मन की योग्यता होती है। इन्द्रियाँ चित्त का अनुकरण करने लगती हैं। प्रत्याहार से इन्द्रियों का उत्कृष्ट वशीकार होता है। पौराणिक मत है कि प्राणायाम द्वारा पवन और प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियवशीकृत करके शुभ आश्रय में चित्त को स्थान दे।

साधन पाद में योग के पाँच बहिरंग साधन—यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार बतलाये गए हैं। अब विभूतिपाद आरम्भ करते हैं। इसमें अन्तरंग

लगता है। अब ध्यान सवितर्क और सविचार समापत्ति और समाधि में भेद है प्रथम में ध्याता ध्यान और ध्येय का ज्ञान है। अगले दो में ध्यान विषयक शब्द तथा अर्थ के ज्ञान से मिला विकल्प रहता है। समाधि में मात्र ध्येय स्वरूप रहता है। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध—इन पाँचों तन्मात्राओं से प्रथम आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी-संज्ञक सूक्ष्म परमाणु उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म परमाणुओं से आकाशादि स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं। जो तत्त्व कारण में लीन हो जाता है अथवा उसका बोध कराता है वही लिंग है। प्रधान प्रकृति इन दो बातों से रहित है—अतः यह अलिंग है। अध्यात्म प्रसाद होने से प्रज्ञा ऋतम्भरा होती है अर्थात् सत्य धारण करनेवाली। पर वैराग्य से उसके भी निरोध हो जाने पर जब सब संस्कार समाप्त हो जाते हैं तब निर्बीज समाधि होती है। यह समाधिपाद हुआ।

मध्यम अधिकारी के लिए साधन पाद है। तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान योग है। अविद्या ही सारे क्लेशों की जड़ है। अनित्य में नित्य अपवित्र में पवित्र दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मा को समझने का ज्ञान ही अविद्या है। दृष्ट और दर्शन का एक-सा भासित होने वाला ज्ञान अस्मिता क्लेश है। पुरुष दृष्टा है। चित्त का दर्शन उसका एक कारण है। पुरुष चैतन्य क्रियारहित केवल अपरिणामी स्वामी है जबकि चित्त जड़ क्रियामय त्रिगुणमय और स्व अर्थात् सम्पत्ति है। पर दोनों ही तो एक से दिखाई देते हैं। जिससे ममत्व और अहमत्व उत्पन्न होता है। राग द्वेष मृत्यु-भय पैदा होते हैं। इन्हें योगी को असंप्रज्ञात समाधि से अपने कारण में लीन कर लेना चाहिए। क्रिया योग से क्षय की हुई उपर्युक्त स्थूल वृत्तियों का सूक्ष्म होकर दग्ध-सा बीज-सा बनाकर ध्यान से त्यागने को क्लेश समाप्त करना कहते हैं। जो यदि बचे रह गए तो अगले जन्म में भोगने पड़ते हैं जो जाति आयु और भोग के नाम से सामने आते हैं। विषय सुख के भोगकाल में भी परिणाम दुःख ताप दुःख और संस्कार दुःख बना रहता है। अतः विवेकी पुरुष को विषयजन्य सुख तो दुःख ही है। दुःख त्याज्य है। दृष्टा और दृश्य का संयोग हेय हेतु (दुःख का कारण) है। प्रकाश क्रिया स्थिति जिसका स्वभाव है भूत और इन्द्रिय स्वरूप तथा भोग और अपवर्ग प्रयोजन है वह दृश्य है। जो गुण तीन हैं उनकी चार अवस्थाएँ हैं—विशेष अविशेष लिंगमात्र और अलिंग। विशेष 16 अविशेष 6 लिंगमात्र सत्तामात्र महत्तत्व तथा अलिंग मूल प्रकृति है। यह अलिंग पुरुष के लिए व्यर्थ है। दृष्टा देखने की शक्ति-भर है। शुद्ध होकर भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार वह देखनेवाला है। यह पुरुष के हेतु ही समस्त दृश्य है। स्व और स्वामि शक्ति के स्वरूप की उपलब्धि का कारण संयोग है। अर्थात् यह वास्तव ही संयोग कहलाता है। अदर्शन इसी

शरीर अपने उपादानों में लीन हो जाता है क्योंकि यह सब प्रकृति के ही तो परिणाम हैं। चिति शक्ति का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना कैवल्य है। अर्थात् व्युत्थान समाधि और निरोध के संस्कार मन में लीन हो जाते हैं मन अस्मिता (अहंकार) में अस्मिता बुद्धि (चित्त) में और चित्त प्रधान प्रकृति में लय हो जाती है।

पतंजलि के योग सूत्र का समय दूसरी या तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व समझा जाता है। पतंजलि के योग सूत्र में तप का नाम आता है। तप शरीर को कष्टप्रद साधनाओं में ले जाता है। ऋग्वेद में भी विभूति पाद में वर्णित सिद्धि क्रम से उन्नत योगियों के से मुनियों का वर्णन मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में योग बिलकुल प्रकट ही था। ऊपर हम बौद्ध और जैनों में इसका प्रभाव प्राचीन काल से ही देख चुके हैं। अब इस पर विचार प्रकट करने के पहले आवश्यक है *कि शंकर के वेदान्त दर्शन को भी संक्षेप में देख लिया जाए,* जिसकी अन्त में परीक्षा करके हम आगे बढ़ेंगे। सांख्य ने प्रकृति प्रधान मानी। उससे बुद्धि बुद्धि से अहंकार अहंकार से सूक्ष्म तथा स्थूल तन्मात्राएँ। आत्मा चेतन है। वह अपने प्रकाश में अवस्थित है जिससे चेतन और जड़ भ्रम में पड़ते हैं जिससे अहंकार का उदय होता है। पृथ्वी गन्ध जल रस अग्नि दृष्टि, वायु, स्पर्श आकाश श्रवण यह तत्त्व तथा तन्मात्राएँ हुईं। इन्द्रियों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब यह जब क्रिया से दूर हो गया तो शंकर ही वह प्रकाण्ड मेधावी था जिसने उस सबको एक ढंग से आगे रखा। सांख्य का प्रभाव अवश्य था। शंकर ने आत्मा के चारों ओर आवरण माने। सांख्य में जहाँ मनस् बुद्धि और अहंकार थे वहाँ वेदान्त में मनस् विज्ञान और अहंकार ने स्थान ले लिया। इसमें बौद्ध प्रभाव काफी मुखर था।

शंकर वेदान्त

प्रधान अचेतन माया अविद्या यह सब शब्द बौद्धों में चलते थे। वस्तु समष्टि का एकत्व ब्रह्माण्ड का एकत्व जिसके अतिरिक्त द्वितीय नहीं अवास्तव समस्त के समस्त गुणों से अतिरिक्त वास्तविक सत्य और अस्तित्व की स्वभाव स्थिति—*इस मत के बावजूद उनमें भी अपने भिन्न मतान्तरों के साथ चलते*

---

1 दी कामन सेन्स आफ हिन्दुइज्म बहुवार । इण्डियन थीइज्म मैकनिकल । 3. दी फिलासफी आफ उपनिषद्स ड्यूसेन । 4 वेदान्त सिद्धान्त एक मार्ग दर्शन रंगराज शर्मा । 5 वेदान्त फिलासफी एट ... मुलर ... । 6 दि वेदान्त फिलासफी । 7 दी फिलासफी आफ दी वेदान्त ... । 8 दि इण्डियन दर्शन आफ राम मनोहर राय, वाल्यूम 1 9 वेदान्त दर्शन । 10 दो वर्ड्स on ... रिपब्लिक, इण्डस ।

धारणा ध्यान समाधि का निरूपण है। इन तीनों को मिलाकर संयम कहते हैं। जब ध्यान का स्वरूप शून्य-जैसा हो जाता है तो उसे समाधि कहते हैं। संयम की सिद्धि से प्रज्ञा का आलोक फटता है। यम नियम की अपेक्षा यह तीनों अन्तरंग हैं। किन्तु निर्बीज समाधि की अपेक्षा बहिरंग हैं। क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्तावस्थाएँ अर्थात् व्युत्थान के संस्कार का दबना और निरोध अर्थात् परवैराग्य या रुकने के संस्कार का प्रकट होना इन दो संस्कारों में चित्त का लगना निरोध परिणाम कहा जाता है। व्युत्थान के संस्कार वृत्तियों के निरोध होने पर भी नहीं रुकते। निरोध संस्कार स्थिर करने से चित्त की प्रशान्त गति होती है।

धर्म परिणाम (अन्य धर्म प्राप्ति) लक्षण परिणाम (काल परिणाम भविष्य—उदित—भूत) तथा अवस्था परिणाम का संयम होने पर भूत भविष्य का ज्ञान होता है। नाभिचक्र में काया व्यूह का ज्ञान है। इसके संयम से शरीर का ज्ञान होता है। सब जानने का उपाय प्रातिभ ज्ञान कहलाता है। हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है। उस स्वार्थ संयम से प्रातिभ श्रावण वेदना आदर्श आस्वाद वार्ता ज्ञान—यह छह सिद्धियाँ होती हैं जो समाधि में विघ्न और व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं। पाँचे भूत जय से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं जो अणिमा लघिमा महिमा प्राप्ति प्राकाम्य वशित्व ईशित्व इत्यादि हैं। चित्त और पुरुष की समान शुद्धि होने पर कैवल्य होता है। इस पाद में तीनों अंग उनकी संज्ञा परिणाम संयम की तीन प्रकार की सिद्धियाँ —पूर्वान्त परान्त और मध्य समाधि से भुवन ज्ञान काया व्यूह ज्ञान इन्द्रिय जय बताकर चित्त के अपने कारण में लीन हो जाने को मुक्ति कहा गया है।

अन्तिम कैवल्य पाद का वर्णन करते हैं। सिद्धियाँ पाँच प्रकार की हैं। जन्मजात सिद्धि जो जन्म से ही निहित मिलती है औषधिजा सिद्धि रसायनादि से प्राप्त होती है मन्त्रजा सिद्धि तपजासिद्धि तथा समाधिजा सिद्धि। समाधि से उत्पन्न चित्त ही कैवल्य के उपयोगी है अन्य बाधक है। अस्मिता से योगी निर्माण चित्त होते हैं। अर्थात् काया बदलकर शीघ्र प्रारब्ध कर्म भोग लेते हैं। एक चित्त सब चित्तों का प्रवर्तक है। उसी से प्रवृत्ति भेद होता है। ध्यानज अर्थात् चित्त समाधि से उत्पन्न होने पर अनाशय वासनारहित होता है। उसकी आत्मा कैवल्य की ओर उन्मुख होती है वह विवेक ख्याति से भी अलग हो जाता है। उसकी अवस्था को धर्ममेघ समाधि कहते हैं। प्रसंख्यान अर्थात् प्रकृति और पुरुष का विवेक साक्षात्कार भी दूर होने लगता है। तब धर्ममेघ समाधि होती है जो विवेक ख्याति का ही फल है। सर्वोत्तम फल है। पुरुष तब केवल हो जाता है। अनादिकाल का लिंग अर्थात् चिह्न ऐसा शरीर भी विरत हो जाता है और (सूक्ष्म शरीर) लिंग

जीव दिखाई देते हैं। प्रत्येक जीव मे ब्रह्म ही सत्य है। जो भेद है वह माया का परिणाम है।

सांसारिक रूप में अर्थात् व्यवहार में अनेक जीव अनेक कार्य रत हैं। अज्ञानी जीव माया के आवरण को फाड़कर देख सकने में असमर्थ है। इसलिए ब्रह्म को न देख सकने के कारण जीव मायाकृत उपाधि में मन लगाता है और सत्य को शरीर में ढूंढ़ता है। इन्द्रिय मनस् में खोजता है। आत्मा जो वास्तव में चित् चैतन्य और असीम तथा अभिन्न है वह सीमित हो जाती है और उसकी शक्ति ज्ञान सब सीमित हो जाते हैं। तब वह पाप-पुण्य से घिरता है। जिसके चक्र को उसे भोगना पड़ता है। पूर्वजन्म के कर्मों का फलाफल भोगते जीव को ईश्वर उसके कर्मों का फल देता है। यह अनन्त-अनादि चक्र निरन्तर चलता रहता है। इस संसार से मुक्ति का उपाय वेदों मे बताया है। कर्मकाण्ड यद्यपि अपने स्थान पर उचित है किन्तु उससे यह काम पूरा नहीं हो सकता है। ज्ञान काण्ड में भी सगुण परमात्मा की निम्न अवस्था है। निर्गुण उच्च है सर्वोच्च है। पराविद्या जाननेवाले के लिए आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं है। परमात्मा ही विदेह मुक्ति है। वह अपने-आप माया को पीछे खींच लेता है।

शंकर के वेदान्त में धर्म और दर्शन आकर एक हो गए हैं। इस प्रकार जीव जगत् और परमात्मा तीन बातें सामने आती हैं। परमात्मा शिव है जीव प्राणी है। ब्रह्म सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है और कुछ नहीं है। शंकर ने सारांश रूप करोड़ों ग्रन्थों को मथकर रख दिया। वेदान्त मे ब्रह्म के तीन रूप हैं—ब्रह्म परमात्मा ब्रह्म और माया जगत् तथा ब्रह्म और जीव। इस त्रिपुटी का अन्त स्वयं ब्रह्म है। परमात्मा है। ब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं है। वह एक है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह मात्र परम आत्मन् है। दृश्य अदृश्य जगत् का वह ही कारण है। वह परिवर्तनशील नहीं है। वह सीमित में असीम है। माया के द्वारा वह भूल है जो सब सृष्टि मे रहकर भी इस सबसे परे है। विवर्तवाद से वह दृश्य है। सृष्टि नई सृष्टि नहीं है। वह विवर्त है। ब्रह्म तो नहीं बदलता पर जीव उसे देख नहीं पाता। रज्जु और सर्प की भांति नहीं होती है। रज्जु बिना सर्प की भ्रान्ति नहीं होती। इसी प्रकार ब्रह्म बिना जगत् की भी नहीं हो सकती। रज्जु सर्प नहीं हो जाती न ब्रह्म जगत् हो जाता है। अन्धकार ही अविद्या है। ब्रह्म जो परे है वही जगत् का कारण है। यह विवर्तवाद का सिद्धान्त योगवासिष्ठ में भी मिलता है। पर इतना मुखर नहीं। शंकर में चार्वाक का प्रत्यक्ष बौद्धों का अनुमान सांख्य का शब्द और श्रुति नैयायिक का उपमान प्रभाकर मीमांसा की अर्थापत्ति तथा भट्ट की अनुपलब्धि सब ही आवश्यक हैं। योगवासिष्ठ मे ब्रह्म भावना मनोमय और

थे। अविद्या से ही चेतना भ्रांति वर्णएा की छवि में वस्तु सत्व का मिथ्याभाव भी उनमें था। शंकर में भी यह मिलता है। वास्तव में यह विचार बहुत दिनों से पनपते आ रहे थे। योगवासिष्ठ और त्रिपुर सम्प्रदाय की दार्शनिकता में ऐसी मिलती-जुलती शब्दावली का प्रयोग प्रचलित था। सांख्य का बौद्ध वेदान्त और शैव तथा वैष्णव मत पर प्रभाव पड़ा। सांख्य के सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त को हेर-फेर करके प्रायः सबने स्वीकार कर लिया। चेतन तत्त्व प्रकृति महत् अहंकार और भूत का प्रमाण स्वीकार कर लिया गया। इनके नाम अवश्य बदल दिये गए। शंकर से पहले उत्तर मीमांसा का व्यास कृत वेदान्त चला आ रहा था। शंकर ने इसे साफ किया और स्फटिक की भाँति उपस्थित किया। उनमें उपनिषदों से यह चमक आई थी। उपनिषदों के दर्शन का प्रभाव सांख्य और बौद्ध मत पर पड़ा था यह ऊपर देखा जा चुका है। अब शंकर के हाथ में यह हुआ कि उपनिषद् में ईश्वरवाद पुष्कर ऐसे निकला कि बौद्ध मत के सार चिन्तन को वह अपने साथ खींच लाया जिसमें तत्कालीन बिखरे हुए मत आकर लय हो गए। यह दार्शनिक तत्त्वों का एक प्रार्थचिन्तन धार्मेतर चिन्तन के साथ यहाँ सूर्य के समान देदीप्यमान हो उठा। जिस प्रकार बौद्ध इस व्यामा को नहीं सह सके स्वयं ब्राह्मण भी इस वस्तु को देखकर चमत्कृत हो गए और उन्होंने मुक्तकंठ जय-जयकार किया। शंकर ने शैव सिद्धान्त को ऐसे खींचकर अपना लिया कि बहुत-से शैव तो इसी से टूक-टूक होकर गिर गए। आगे हम देखेंगे कि रामानुज ने कैसे शंकर का सार तत्त्व लेकर वेदान्त को एक नया रूप दिया जो और भी सशक्त सिद्ध हुआ।

निःश्रेयस अर्थात् संसार और अविद्या से छूटकर मिलना ही परम प्रयोजन है। इसके लिए आत्मन् का ज्ञान आवश्यक है। यह प्रवृत्ति सहज धर्म है। जिसका ज्ञान शुद्ध है वह निःश्रेयस का सान्निध्य प्राप्त करता है। इस से समस्त पुरुषार्थ प्राप्त होता है। इस परम पुरुषार्थ को प्राप्त करना सरल नहीं है।

जो कुछ है वह ब्रह्मन् है। वह परमात्मन् है। चैतन्य ज्ञान वह एकमात्र है। उसके गुण नहीं है। ज्ञान भी उसका स्वरूप-मात्र है। वह अतीत निर्गुण है। उसके पूर्ण और अमय होने के कारण संसार कैसे होता है? यह काम माया या अविद्या करती है। यह न सत् है न असत्। अतः इसे सदसद्विलक्षण कहा जा सकता है। माया में उपादान है अर्थात् संसार है। ब्रह्म अधिष्ठान रूप में संसार से सम्बद्ध है क्योंकि माया उसकी शक्ति है। इस अवस्था में ब्रह्म को ईश्वर कहना चाहिए। माया ईश्वर की आज्ञा से भेद प्रकट करती है और नाम रूप का उदय होता है। इससे संसार और उसके अनेक दृश्य उत्पन्न होते हैं। माया से वस्तु के उपाधि लगती है। ब्रह्म सबमें व्याप्त रहता है। माया के कारण सब अलग-अलग दिखाई देता है। और इसी कारण अनेक

तमस् उसका शुद्ध सत्वरूप ब्रह्म है । सर्वज्ञ ईश्वर उसका स्वामी है । इन दो के सम्बन्ध से जगत् का प्रकटीकरण है । माया अनिर्वचनीया है । उसके कार्य से जानी जा सकने योग्य वह कार्यानुमेया है । जीव स्वरूप में माया उपाधि पूर्ण है । ईश्वर सम्बन्ध में विश्वमाया जीव स्वरूप की उपाधि अविद्या है । विज्ञान से वह दूर हो जाती है अतः वह सत् नहीं है । किन्तु वैसे वह सर्वत्र रहती है । इसलिए वह असत् भी नहीं है । इस प्रकार ईश्वर से मिलकर सृष्टि कर्त्री होते हुए भी आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति धारण करती हुई भी ब्रह्म ही है । वह सबमें सृष्टि में व्याप्त है मायी (स्वयं शिव) मायी है । माया तुच्छा निर्वचनीया और वास्तवी है, श्रुति युक्ति और लौकिक बोध का यही मत है । वह स्वयं स्वतन्त्र नहीं है किन्तु वह दृश्यरूप से ही तो प्रथम कही जा सकती है । चिदाभास से नहीं होते हुए को होता हुआ सा दिखा देती है । उसमें दुर्घटत्व की शक्ति है । वह तो प्रश्न रूप है । जगत् उसका इन्द्रजाल है । वह अचिन्त्य है । इस अचिन्त्य रचना शक्ति से पूर्ण माया है । वह ईश्वर जिसकी माया दासी है वह माया के सम्बन्ध में प्रकट होता है । उसे ही महेश्वर अन्तर्यामी जगद्योनि समझना चाहिए । माया एक दीर्घ स्वप्न है ।

अनात्म जड़ और आत्मन् इन दो के स्वरूप में ज्ञान विभाजित है । ज्ञान के लिए ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान की आवश्यकता है । ज्ञान निम्न और उच्च दो प्रकार का है । प्रथम अनात्मन् है दूसरा आत्मन् । ब्रह्म मूल ऊपर है शाखा प्रशाखा जगत् नीचे फैलती है ।

जगत् दो प्रकार का है—जड़ और अचिन्त्य । माया जड़ है जगत् असत् है पर अपनी व्यावहारिकी सत्ता में वह है ।

कथन ठीक वैसा ही है जैसा गौतम को धारणा तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में हुआ था । इसी तरह से शंकर के दर्शन में ब्राह्मण कर्मकाण्ड पूरा का पूरा घुस गया ।

ब्रह्म जिज्ञासा के लिए विवेक विराग षट्सम्पत्ति शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा गुरु और समाधि की आवश्यकता है । इसीसे आत्मज्ञान होता है । शरीर में चिदाभासयुक्त अंतःकरण कूटस्थ चैतन्य और आवरण शक्ति तीनों हैं । अहंकार से जीव अपने को कर्ता भोक्ता समझता है । उसे चिज्जड़ ग्रन्थि कहते हैं । अहंता ममता परता उसमें घुल जाती है । मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—पामर, विषयी और मुमुक्षु । क्रम से मुक्ति होती है । सम्यग् दर्शन से ही जीव जगत् परमार्थ का सत्य ज्ञात होता है । जीव—चैतन्य अधिष्ठान लिंग देह और चिच्छाया का एकत्रीकरण है । प्रत्यगात्मा अपने ही आलोक में दीप्त रहती है । आत्म के प्रकाश से प्रतिबिम्बित अन्तेन्द्रिय को साक्षात्अंतःकरण कहते हैं । यह सब मिलकर अहं बनते हैं । जीव का पूरा रूप देह, इन्द्रिय मन

प्राण-निरोध ही मुख्य है । संसार में दुःख ही दुःख है । संसार मनस् का अस्पष्टीकृत स्वरूप है । यह बुद्धि अहंकार और चित्त का रूप धारण करता है । कर्म कल्पना वासना प्रकृति उसके अनेक रूप हैं । अविद्या सात प्रकार की है । बीज जाग्रत जाग्रत महाजाग्रत जाग्रत स्वप्न स्वप्न स्वप्न जाग्रत तथा सुषुप्ति । यहाँ ब्रह्म बौद्धों के आलयविज्ञान की भाँति ब्रह्म और जगत से उत्पन्न होता है । (धवमोच)

शंकर वेदान्त में इसका प्रभाव है । ब्रह्म तो नेति-नेति है इस नेति-नेति में बौद्ध मत का प्रभाव है कि जो परम है वही वहाँ महायान का शून्य है क्योंकि स्वरूप और गुण का अत्यन्त अभाव है । तैत्तरीय उपनिषद् में यह भाव आता है । ब्रह्म के दो रूप बताये जाते हैं । सगुण और निर्गुण प्रथम ही ईश्वर है । द्वितीय तो वही है जिसे नेति-नेति कहा जा सकता है । ईश्वर ही स्रष्टा पालक और शासक है । वह सर्वशक्तिमान अनन्त आकाश से भी विस्तृत और सूक्ष्म से भी विराट् है । वह फलदाता है वह वैषम्यनैर्घृण्य (विषमता और घृणा) से नहीं बाँधा जा सकता । प्राणी की असाम्य दशा उसके पाप-पुण्य का दोष है, ईश्वर इसमें निर्लेप है । वह सदसद् का रूप है । मूल रूप में तो सगुण और निर्गुण ब्रह्म एक ही है क्योंकि ब्रह्म तो एक ही है । ईश्वर केवल सगुण ब्रह्म है । मनुष्य की बुद्धि देश काल निमित्त से घिरी है । जब बुद्धि संसार से खिंचकर ब्रह्म में लय होती है तो वह स्वरूपानुसंधान है । अद्भुत सृष्टि का अधिष्ठान ब्रह्म है क्योंकि सृष्टि की सत्ता उसके अपने कारण से नहीं है । कारण तो ब्रह्म ही है । वह सत् है सत् एक है सब नहीं वह ज्ञान है अनन्त है एकान्त है अद्वैत है अखण्ड अद्वैत है । वह सर्वव्यापी अत्यन्त सूक्ष्म है । इस ब्रह्म का पूर्ण स्वरूप सच्चिदानन्द है । चैतन्य होने से वह चित् है आनन्द मय होने से वह आनन्द है । वह समान भाव से सबमें व्याप्त है वह अमृत है । वह अक्षर है । शरीर में वह अध्यात्म है । वह एक लौह गोल के समान अग्निताप से तापित अपने आप चमकता है सारे संसार में उसका प्रकाश व्याप्त होता है । अन्तर बाहर व्याप्त उससे जगत् भासित होता है । माया उस की विक्षेप शक्ति है विस्तार करनेवाली है । दृश्यमान विश्व में जीव काया माया में फँसा है ज्ञान मार्ग से प्रतिबिंब स्पष्ट होता है । बुद्धिधारणा से तत्त्व आत्मानन्द होता है । ईश्वर का जाननेवाला ज्ञानी ईश्वर सृष्टि को समझता है और जीव सृष्टि को लाँघकर मनोराज्य में विचरण करता है ।

जगत् के कारण और भ्रांति को समझने का इच्छुक जीव थोड़ी ही दूर चलकर घबरा जाता है । माया के अनेक नाम हैं—प्रकृति अविद्या शक्ति या अचिन्त्य नहीं या अचिन्त्य यह यह नहीं । जीव निरन्तर उसे यह अचिन्त्य 'वह' समझता है । परन्तु 'या' में अटकता है । माया त्रिगुणात्मिका है—सत्त्व रजस्

इस प्रकार संक्षिप्त किया जाता है।[1] सांख्य में —जगत्=प्रकृति परिणाम में धर्मोत्पत्ति तत्वात्मक। जगत्कारण=त्रिगुणात्मक प्रकृति। ईश्वर=नहीं। जीव=असंग चेतन विभु नाना भोक्ता। बन्ध हेतु=अविवेक। बन्ध=अध्यात्मादि त्रिविध दुःख। मोक्ष=त्रिविध दुःखध्वंस। मोक्ष साधन=प्रकृति-पुरुष-विवेक। अधिकार=वैराग्य विरक्त। प्रधान काण्ड=कर्मकाण्ड। वाद=परिणामवाद। आत्मपरिमाण संख्या=विभु नाना। प्रमाण=प्रत्यक्ष अनुमान शब्द। ख्याति=अख्याति। सत्ता=जीव जगत् परमार्थ सत्ता। उपयोग=तत्व पदार्थ शोधन।

योग में —जगत प्रकृतिपरिणामधर्मोत्पत्ति तत्वात्मक। जगत् कारण=कर्मानुसार प्रकृति और सन्निधामक ईश्वर। ईश्वर क्लेश कर्म विपाक आशय अपरामृष्ट पुरुष विशेष। जीव=असंग चेतन विभुनाना कर्ता भोक्ता। बन्ध हेतु=अविवेक। बन्ध=प्रकृति पुरुष संयोगजन्य अविद्यादि पंचक्लेश। मोक्ष=प्रकृति पुरुष संयोगजन्य अविद्यादि पंचक्लेश निवृत्ति। मोक्ष साधन=निर्विकल्प समाधिपूर्वक विवेक। अधिकार=विक्षिप्त चित्तवान। प्रधान काण्ड=उपासनाकाण्ड। वाद=परिणामवाद। आत्मपरिमाण संख्या विभुनाना प्रमाण=सांख्य के तीनों। ख्याति=अख्याति। सत्ता=जीव जगत् परमार्थ सत्ता। उपयोग=चित्त की एकाग्रता।

वेदान्त में —जगत्=नानात्व क्रियात्मक माया का परिणाम चेतन का विवर्त। जगत् कारण=अभिन्न निमित्तोपादान ईश्वर। ईश्वर=मायाविशिष्ट चेतन। जीव=अविद्याविशिष्ट चेतन। बन्धहेतु=अविद्या। बन्ध=अविद्या तत्कार्य। मोक्ष=अविद्यातत्कार्य निवृत्तिपूर्वक परमानन्द ब्रह्म की प्राप्ति। मोक्ष साधना=ब्रह्मात्मैक्यज्ञान। अधिकार=मलविक्षेप दोषरहित चतुष्टय साधन सम्पन्न। प्रधानकाण्ड=ज्ञान काण्ड। वाद=विवर्तवाद। आत्मपरिमाण संख्या-विभु एक। प्रमाण=षट्। ख्याति=अनिर्वचनीय। सत्ता=परमार्थव्यात्मक सत्ता व्यावहारिक और प्रातिभासिक जगत् सत्ता। उपयोग=तत्वज्ञानपूर्वक मोक्ष।

संक्षेप में यही भेद और समानता है। विस्तार से इस विषय में न जाकर यह कह देना काफी होगा कि भारतीय विचारधारा का एक यह पक्ष था। जबकि दूसरा अभी पक रहा था। वह रामानुज के हाथों अपनी स्पष्ट भक्ति की रूपरेखा लेकर अभी कुछ दिन बाद प्रकट होनेवाला था। किन्तु इनके अतिरिक्त एक तीसरी विचारधारा और थी। वह शिव और शक्ति नाम से अभिहित की जा सकती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैसे एक विचार

---

1 सत्यानन्द स्वामी।

बुद्धि का संघात है। शरीर तीन हैं—स्थूलोपाधि सूक्ष्मोपाधि कारणोपाधि। तुरीया सुषुप्ति अज्ञान से जीव को विपरीत ज्ञान माया के प्रभाव से होता है वह परमात्मा को भिन्न देह ही समझने लगता है। वस्तुतत्त्व का सम्यक् ज्ञान होने पर मोक्ष हो सकता है। इसके लिए विवेक ज्ञान की आवश्यकता है। जीव को अपने को परमात्मा से अभेद समझना चाहिए। निदिध्यासन समाधि से भेद मिटते हैं दुःख-निवृत्ति होती है। तत्त्वमसि का अनुभव होता है और वेदान्ती कह उठता है सर्वं खल्विदं ब्रह्म। तभी शंकर ने अपरोक्षानुभूति में कहा है—दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।

जीव— यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

समानता और भेद

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषद् के ब्रह्म सम्बन्धी उद्गार बौद्ध दर्शन तथा सांख्य को शंकर ने एक उत्कृष्ट दर्शन के रूप में ढाल दिया जिसमें परमात्मा संसार जीव और मृत्यु के अनन्तर की बातों को इकट्ठा करके रख दिया। वेदान्त में तत्त्वमसि तथा आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पंडित —आदि सिद्धान्त स्वीकार किये गए। किन्तु व्यावहारिकी सत्ता के द्वार से जो शंकर का व्यवहार ब्राह्मण सत्ता के हाथ में चला गया वह सब फिर ऊँचे सत्य की बातें हो गईं। शंकर ने कहा था कि जो मेरे अद्वैत को जानता है वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल मेरा गुरु है। किन्तु यह नहीं हो सका। शंकर ने बौद्ध मत को छिन्न-भिन्न कर दिया और ऐसी हालत कर दी कि सार्व भिक्षुता का अभिमान ही उससे छिन गया। अब उसका दूसरा स्वरूप प्रबल रह गया जो कौल मार्ग में चला गया था। उसे यहीं न देखकर शाक्त सम्प्रदायों के साथ देखना उचित होगा। कपिल का शिव से तब सीधा सम्भवतः शैव मत का आर्यों पर आरम्भिक प्रभाव बताता है जब आर्यों ने सोम की उपत्यका की बातों को लेकर ही उन्नत किया था।

शंकर ने ब्राह्मण धर्म को निर्द्वन्द्व रूप से पुनः प्रतिष्ठापित किया। उसने यह स्पष्ट किया कि वेद और उपनिषद् के माननेवालों में व्यर्थ ही विवाद है और वह भी लघुतम भेदों पर। उन्हें छोड़ो और एकत्र हो जाओ। अपना कार्य स्वयं शंकर को ज्ञात था।

सांख्य पातंजल योगदर्शन बौद्धदर्शन इत्यादि के अनन्तर वेदान्त दर्शन को

जाता है। परशुराम तथा सनत्कुमार ऐसे ही अनेक नाम मिलते हैं, जिनमें दत्तात्रेय का नाम पहले आ चुका है।

शाक्त मत और उसका समाज

वज्रयान ने शून्यता के साथ महासुख की जो कल्पना की तो शून्यता ही को वज्र माना। यह देवी रूप है—जिसके प्रगाढ़ आलिंगन में मानव-चित्त (बोधि-चित्त या विज्ञान) सदा बद्ध रहता है तथा यह युगल-मिलन सब काल के लिए शुद्ध तथा आनन्द उत्पन्न करता है। यहाँ जगत् की उत्पत्ति का कारण वैषम्य कहा गया। समता प्रलय की सूचिका मानी गई। वज्रयान में वैराग्य का दमन करनेवाला वीर है। विशुद्ध होने पर ललना और रसना (ऊपर कापालिक मत में यह नाम आ चुके हैं) अवधूती के रूप में बदल जाती है। अवधूतिका के लिए डोम्बी शब्द आता है। वाम शक्ति और दक्षिण शक्ति के मिलान से जो अग्नि या तेज उत्पन्न होता है उसकी प्रथम अभिव्यक्ति नाभिचक्र में होती है। इस अवस्था में वह शक्ति अच्छी तरह विशुद्ध नहीं होती। *सहजिया माया में इसका सांकेतिक नाम चाण्डाली है। जब चाण्डाली* विशुद्ध हो जाती है तब उसे डोम्बी या बंगाली कहते हैं। वज्रयान की चरम अनुभूति वास्तव में पूर्णाद्वैत की भावना ही है।

शाक्त उपासना की दार्शनिकता भी यही अद्वैत है। शाक्त मत के अपने दर्शन के साथ कुछ विशेष सामाजिक व्यवहार थे जिनको दर्शन के साथ रखकर समझ लेने से सरलता होगी। ऊपर अहं को मिटाने की उनकी तीव्र चेष्टा का उल्लेख हो चुका है। यहाँ अब कुछ नियमों का दर्शन किया जाता है।

वेद-विरुद्ध रूप में तन्त्र में एक यह विशेषता है कि यहाँ शरीर को कष्ट देना अस्वीकृत है। भूखे-प्यासे त्रालिका की उपासना नहीं करनी चाहिए। जब शिव और जीव एक ही हैं तो अपने-आपको तैरीच देने से क्या लाभ है? शिव ही तो जीव के रूप में भूख प्यास से व्याकुल रहता है। ब्रह्मा ब्रह्मलोक में है। विष्णु विष्णुलोक में रुद्र कैलाश में श्रीकृष्ण गोलोक में किन्तु महादेवी अर्थात् शिव की शक्ति सब समय में सब स्थानों पर है। उनके अनेक भेद हैं। शैव वैष्णव गाणपत्य और तथा चीनाचार, बौद्ध सभी रूपों से उनकी पूजा की जाती है। साधक दिव्यभाव वीरभाव तथा पशुभाव से उनकी पूजा के अधिकारी हैं। विभिन्न तन्त्रों में बिखरे हुए उनके अनेक अनेक नाम हैं।

स्त्री बनकर यदि साधक उपासना करे तो वह वामाचार में ब्रह्मचारी भी रह सकता है। श्मशानसाधना से ही यह वासना जल जाती है। श्मशान जो

---

1 वामाचार भवेत् तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम्

धारा को शंकर ने माँजा, दूसरी को रामानुज ने, उसी प्रकार तीसरी का भार गोरखनाथ के कन्धों पर आ पड़ा था। उपसंहार में हम उनकी सफलता और असफलताओं पर संक्षेप में विचार करेंगे। जैन धर्म को अलग छोड़कर यही तीन धाराएँ हमारे आलोच्यकाल की मुख्य विचारधाराएँ हैं। इतिहास का यह युग जैन धर्म का नहीं वरन इन तीन का है क्योंकि सब-कुछ जो उथल-पुथल में नया रूप ग्रहण कर रहा था वह इन्हीं तीन के हाथ। अब दार्शनिक पक्ष में शिव और विष्णु का युद्ध समाप्तप्राय था। भक्ति के क्षेत्र में वह तुलसी तक चला रहा। इसको यहीं स्थापना उचित है क्योंकि विषय हमारे आलोच्यकाल के बाहर का हो जाता है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि योगवासिष्ठ में कुण्डलिनी ज्ञान था किन्तु चक्र ज्ञान उसमें विशेष नहीं है। पतंजलि के टीकाकारों ने मध्यान्तर काल में हठयोग की आसन क्रियाओं को उसके आसनवाले सूत्र के साथ जोड़ दिया है। निस्सन्देह ही ये क्रियाएँ हठयोग प्रदीपिका से प्रभावित हैं। हठयोग प्रदीपिका गोरखनाथ के बाद की रचना है। तब योग के दो रूप भारत में थे यह स्पष्ट हुआ। एक सांख्य का आर्ययोग दूसरा आर्येतरों का योग जिसमें शरीर की अन्तर-बाह्य चेष्टाएँ कहीं अधिक थीं जबकि सांख्य तथा पतंजलि के राजयोग की स्वीकृति में योग को एक उच्चस्तर से देखा गया था। पतंजलि में प्राणायाम है और उसके पूरक कुम्भक रेचक इत्यादि भेद का सविस्तार वर्णन हुआ है। पतंजलि में तप शब्द का प्रयोग है। हठयोग में तप से इंगित शरीर को कष्ट देने की भावना नहीं है। यह घेरण्डसंहिता और शिवसंहिता में प्रगट है। ऊपर हम देख चुके हैं कि कापालिक मत और कौल मार्ग में योग और नाड़ी ज्ञान पद्म चक्रज्ञान था। अब हमें उसीको सविस्तार देखना चाहिए। आर्यसामाजिकता के भीतर की दार्शनिक विचारधारा को हमने संक्षेप में देखा। हमारे आलोच्य काल में उसने एक अद्भुत स्पष्ट स्वरूप ग्रहण कर लिया। यह शंकर के हाथों ही पूर्ण हो सका। आर्यसामाजिक व्यवस्था के बाहर शिव तत्त्व और बुद्ध तत्त्व कैसे हिल-मिलकर शाक्त मत पर एक होकर आ गए थे इस पर विचार किया जा चुका है। अब इसकी दार्शनिकता हठयोग नाड़ी तथा चक्रज्ञान इत्यादि विषयों का लेकर गोरखनाथ के हठयोग और दर्शन को देखना चाहिए।

किंवदन्ती है कि शंकर ने षट्चक्र योग का विरोध किया था। उनका कापालिक भट्ट से विवाद हुआ। शिव ने भैरव को अपने में लय कर लिया। शंकर ने तान्त्रिकता का भी विरोध किया था।

योग के इस रूप को देखने पर ज्ञात होता है कि यह साधना भी अपने भीतर अनेक आर्यसामाजिक व्यवस्था में स्वीकृत नामों को दिखाती है—जिसमें वसिष्ठ उल्लेखनीय है। हठयोग की एक परम्परा में भी वसिष्ठ का नाम

श्रीगणेश्वर चक्रे वा न भेदं कारयेद् सुधीः
भेदं वै कुरुते यस्तु स चैव शिवहा भवेद् ।[1]

देवी भक्त भेद बुद्धि से काम नहीं लेते । वह तो ऐक्यभाव के माननेवाले हैं । भेद तो किसी भी सम्प्रदाय से नहीं करना चाहिए यदि उनमें भी देवी के प्रति भक्तिभावना है । देवी की इस ऐक्य संविधायिनी शक्ति की भावना में वह पृष्ठभूमि मिल जाती है जिसके कारण सब स्त्रियों को एक-सा माना गया है ।

स्त्री को सत्ता के समान माना गया है । वह पाँचवाँ तत्त्व है । शवासन करते समय साधक चाण्डाल या भीषड़ के शव पर बैठकर मन्त्रपाठ करता है । कौल मार्ग में वह गुरु-उपदेश के अनुसार शव पर सीधा लेट जाता है । चितारोह या चितासाधन में वह अपवित्र भूमि चिता पर बैठकर मन्त्रपाठ करता है । साधक की अग्नि हविष्य तथा मांस आदि सबमें ही तो ब्रह्म है जो यह ध्यान करके क्रिया में रत होता है वह ब्रह्म को प्राप्त करता है । उक्त विचार ब्रह्म को सब-कुछ अर्पण कर देने वाले सिद्धांत से बहुत मिलता-जुलता-सा है । ऊपरी स्नान आवश्यक नहीं । अंतःकरण शुद्ध होना चाहिए । परब्रह्म को जो अर्पित है वह पवित्र है । गङ्गा का जल और शालिग्राम चाण्डाल के स्पर्श से अपवित्र हो सकते हैं किन्तु

परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टोच विद्यते ।

उस भोजन को खाने में जाति-पाँति को मानने की कोई भी आवश्यकता नहीं है । एक-दूसरे की थाली का उच्छिष्ट खाने से भी नहीं हिचकिचाना चाहिए । वह तो चाण्डाल के हाथ से भी खाया जा सकता है । कुत्ते के मुँह से भी उसे निकालकर खा लेने में हानि नहीं है । वेदान्त के ज्ञानी ब्राह्मणों को भी ब्रह्मार्पित भोजन चाण्डाल के हाथ से खा लेना चाहिए । सौ ब्राह्मणों की हत्या में उतना पाप नहीं जितना उसे खाने से अस्वीकार करने में है । इस साधना में लगे मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह सत्यवादी हो दयावान हो और सदैव ब्रह्मचिन्तन में तत्पर हो । कौलसाधना में शास्त्र शैव और, गाणपत्य वेदपाठी ब्राह्मण सब लिये जा सकते हैं । कलियुग में पशुभाव नहीं है । दिव्यभाव प्राप्त करना कठिन है । वीर साधना फलवती हो सकती है । सृष्टि के पहले शक्ति में तमस् रूप से सब निहित रहता है । देवी सर्वरूपिणी सर्वस्वरूपा मूल प्रकृति के रूप में अपनी विश्वविराट् वैभव हिरण्यगर्भ अव्याकृत प्रज्ञा और अव्यक्त है । सृष्टि उसका तम—रज—सत—रस पूर्ण चिदानन्द प्रकाश है । वह महाकाल को निगल जाती है । वह मायाकालिका

---

1 अप्रकाश ।

प्रकार के हैं। एक विद्या दूसरी योगिनीरूपा महाकाली। किन्तु जिस स्त्री को देवता मान लिया जाता है वह फिर भोग की वस्तु नहीं रहती।

कल्प के प्रारम्भ में चिन्मयी महादेवी जब देवता की तपस्या से प्रसन्न हो गईं तब गहन गम्भीर जलराशि पर बहते हुए उन्होंने विराट् रूप धारण किया और उन्हें दिखाई देने लगी। महादेवी की आज्ञा से तब देवता ने सुषुम्णा में करोड़ों ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर और ब्रह्माण्ड देखे। देवी के हृत कमल में अद्भुत विस्मय करते हुए उन्होंने वहाँ शब्दब्रह्म की मूर्ति आगम निगम और अन्य शास्त्रों को धारण करते हुए देखी। उन्होंने देखा कि आगम उसमें परमात्मा थे। चारों वेद ग्रंथों सहित जीवात्मा थे। षड्दर्शन तन्मात्राएँ, महा पुराण और उपपुराण स्थूल शरीर स्मृति हाथ तथा अन्य ग्रंथ थे और अनेक शास्त्र उनके केश थे। 50 मातृकाएँ उनके हृत्कमल के किनारों पर, दलों पर, केसर पूर्ण थीं। उस विराट् रूपिणी के उस कमल के भीतर आगम सहस्रों सूर्य चन्द्रमाओं के समान देदीप्यमान धर्म और ब्रह्मज्ञान से पूर्ण थे जिनमें माया को नष्ट कर देने की शक्ति थी। वे सर्व सिद्धियों से भरे हुए थे और ब्रह्मनिर्वाण की सामर्थ्य धारण करते थे। महादेवी की अनुकम्पा से देव ब्रह्मा ने सब वेद वेदान्त पुराण स्मृति और अन्य शास्त्र पूर्णरूप से जान लिये। बाद में ब्रह्मा और विष्णु ने यह विद्या शिव से ग्रहण की।

देवीगीता में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु, ईश्वर, सदा शिव आदि देवी के चरणों पर बैठे महाप्रेत हैं। पंचभूत से निर्माणित वे पंचतत्त्व के ही प्रतीक हैं। देवी स्वयं ओम है चित् है और पर सबसे परे है। उनकी उपासना में जो रत है वह सब विघ्नों से मुक्त है। वह उन्मुक्त कुन्तला कपालधारिणी है।

उस देवी के अनेक रूप हैं। वह अनेक देवताओं के सम्बन्ध में अनेक रूप धारण करती है। देवी का आदि और अन्त नहीं है। अनेक संप्रदायों में उसके ही भिन्न-भिन्न रूपों की उपासना प्रचलित है।

> गणेशार्के हरीशानां दुर्गारूपा सरस्वती
> महालयामा महाविद्या पूजनीया यथा क्रमम्।
> न कुर्याद् भेदमेतेषां कौलिको वैष्णवस्तथा
> गणेशार्कं हरीशान् दुर्गाणी परमार्थवित्।
> पूजयेदैक्यभावेन देवीभक्तस्तु बुद्धिमान्
> देवीचक्रेऽर्चयेत् सर्वान् विशेषिमेऽथवा शिवे
> शालग्राम शिलायाम वा दुर्गपीठेऽथवा शिवे।

1. योगिनीतन्त्र, छठा पटल।

श्रीमद्गोश्वर चक्रे वा न भेदं कारयेत् सुधी
भेदं वै कुरुते यस्तु स पंच शिवहा भवेत् ।[1]

देवी भक्त भेद बुद्धि से काम नहीं लेते। वह तो ऐक्यभाव के माननेवाले हैं। भेद तो किसी भी सम्प्रदाय से नहीं करना चाहिए यदि उनमें भी देवी के प्रति भक्तिभावना है। देवी की इस ऐक्य संविन्मयी शक्ति की भावना में वह पृष्ठभूमि मिल जाती है जिसके कारण सब स्त्रियों को एक-सा माना गया है।

स्त्री को लता के समान माना गया है। वह पाँचवाँ तत्त्व है। शवासन करते समय साधक चाण्डाल या गीदड़ के शव पर बैठकर मन्त्रपाठ करता है। योग मार्ग में वह गुरु-उपदेश के अनुसार शव पर सीधा लेट जाता है। चितारोह या चितासाधन में वह अपवित्र कुम्भी चिता पर बैठकर मन्त्रपाठ करता है। साधक की अग्नि हविष्य तथा फल आदि सबमें ही तो ब्रह्म है जो यह ध्यान करके क्रिया में रत होता है वह ब्रह्म को प्राप्त करता है। उक्त विचार ब्रह्म को सब-कुछ अर्पण कर देने वाले सिद्धांत से बहुत मिलता-जुलता-सा है। ऊपरी स्नान आवश्यक नहीं। अंतःकरण शुद्ध होना चाहिए। परब्रह्म को जो अर्पित है वह पवित्र है। गङ्गा का जल और शालिग्राम चाण्डाल के स्पर्श से अपवित्र हो सकते हैं किन्तु

परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टोष विद्यते ।

उस भोजन को खाने में जाति-पाँति को मानने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। एक-दूसरे की थाली का उच्छिष्ठ खाने में भी नहीं हिचकिचाना चाहिए। वह तो चाण्डाल के हाथ से भी खाया जा सकता है। कुत्ते के मुँह से भी उसे निकालकर खा लेने में हानि नहीं है। वेदान्त के ज्ञानी ब्राह्मणों को भी ब्रह्मार्पित भोजन चाण्डाल के हाथ से खा लेना चाहिए। सौ ब्राह्मणों की हत्या में उतना पाप नहीं जितना उसे खाने से अस्वीकार करने में है। इस साधना में सभी मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह सत्यवादी हो दयावान हो और सर्वेव ब्रह्मचिन्तन में तत्पर हो। कौलसाधना में शाक्त शैव सौर, पाशुपत्य वेदपाठी ब्राह्मण सब लिये जा सकते हैं। कलियुग में पशुभाव नहीं है। दिव्यभाव प्राप्त करना कठिन है। वीर साधना फलवती हो सकती है। सृष्टि के पहले शक्ति में तमस् रूप से सब निहित रहता है। देवी सर्वरूपिणी सर्वस्वरूपा मूल प्रकृति के रूप में जननी विश्वविराट् तैजस् हिरण्यगर्भ अव्याकृत प्रज्ञा और अव्यक्त है। सृष्टि उसका तम—रज—सत—रस पूर्ण चिदानन्द प्रकाश है। वह महाकाल को निगल जाती है। वह आद्याकालिका

1 ख्वायमस।

है। मूलप्रकृति और तुरीयब्रह्म का मिलन यह मायाकामी है।[1] पूर्वजन्मों के कार्यों के फलस्वरूप आत्मा कौलमत की ओर आकर्षित होती है। इस कौल धर्म में ही कलियुग में सत्य त्रेता और द्वापर की भाँति कुलेश्वर मदिरा पी जा सकती है। जो साधु [illegible] [illegible] और [illegible] करते हैं वे कुल साधु कहलाते हैं। वे किसी भी रूप में रह सकते हैं—

अन्तः शाक्ता बहिः शैवा सभामध्येच वैष्णवा
नानारूपधरा कौला विचरन्ति महीतले।

कौल साधक के इस प्रकार अनेक रूप हैं।

कुलस्त्रियं कुलगुरु कुलदेवी महीश्वरि
नित्यं यत्पूजयेद्देवि सकुलाचार उच्यते।[2]

कुलदेवी की पूजा नितान्त आवश्यक है। इस कौल साधना के भिन्न रूपों में भी छोटे-बड़ों का स्थान है—

कौलिकोऽङ्गुष्ठकः प्राप्तो वामः स्यात् तर्जनी समः
चीनक्रमो मध्यमः स्यात् सिद्धान्तीयो ह्यनामकः
कनिष्ठः शाबरो मार्ग इति वामस्तु पंचधा।[3]

वाममार्ग के यही मुख्य पाँच स्वरूप हैं। इनमें शैव भी हैं। यह सात पाशुपत तो निकृष्ट हैं—

शिखीमुंडी जटी चैव त्रिशिरंडी क्रमेण च
चक्रवर्ती महापाणि वीर शैवस्तथैव च
सप्त पाशुपताः प्रोक्ताः तथा वैष्णवास्तथा।

इन सबमें प्रायः शक्ति ही प्रधान तत्त्व है। उस तत्त्व के साथ अपने अपने परिमाण में योग भी सम्मिलित है। इस योग में शरीर के भीतर सूक्ष्म लिंग माने गए हैं।

तभी मेरुतन्त्र में कहा है—

संयोगो देहलिंगस्य नाशकः कालयोगकृत्।

कौलमार्ग संसार में वासना फैलाने का पथ नहीं है। उसका उपदेश स्वयं शिव ने दिया है।

संसार के हितार्थ ही शिव ने पार्वती को कौल शिक्षा दी है। शिव ने सतयुग त्रेतायुग तथा द्वापर में श्रुति से संसार को मुक्तिपथ बताया था।

---

1 ज्ञानसिद्धीय तन्त्र

2 [illegible] । नित्य कुलस्त्री, कुलगुरु और कुलदेवी की पूजा करनी ही कुलाचार कहलाता है।

3. वेदमार्ग कौल संपूर्ण नाम तर्जनी, चीनक्रम कौल का मध्यमा सिद्धान्तीय अनामिका तथा शाबर मार्ग कनिष्ठा के समान है।

कलियुग के लिए कौल ही सर्वोत्तम मार्ग है। यह तन्त्र में प्रकट हुआ है। आगम में शिव पार्वती को शिक्षा देते हैं। निगम में इसके विपरीत होता है।

मन्त्र का लिंग उसके देवता के बदलने के साथ बदल जाता है। शारदा तिलक के अनुसार हुं फट् पुरुष देवता का चिह्न है स्वाहा स्त्रीलिंग है। पुंल्लिंग का अन्त नमः से होता है।

महानिर्वाणतन्त्र में शिव ने पार्वती से कहा है। हे माता! शक्ति पूजा की पाँच आवश्यकताएँ यह हैं। मद्य मांस मत्स्य मुद्रा तथा मैथुन। यह ही पंच तत्त्व हैं। इनके बिना शक्ति पूजा केवल अभिचार है। वज्रयान में भी इन पाँच तत्त्वों का उल्लेख है। वहाँ यह नितान्त आवश्यक है। बोधिसत्व तो इनके बिना बिलकुल अपूर्ण है। चक्रपूजा में इन सबकी आवश्यकता है।

प्रवृत्ति के पाँच रूप वास्तव में निवृत्ति के ही सरलतम साधन हैं। इनसे साधक को घृणा नहीं करनी चाहिए। मद्य तो विशेष प्रिय वस्तु है।

महानिर्वाणतन्त्र में देवी के प्रश्न करने पर सदाशिव कहते हैं। सत्य और त्रेता तथा द्वापर में चार वर्ण थे और चार ही आश्रम थे। कलि में पाँच वर्ण हैं—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और सामान्य (निम्नजाति)। हे देवी अब केवल दो आश्रम हैं। ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ तो समाप्त हो गए। गार्हस्थ्य और संन्यास शेष हैं। संन्यास भी अनैतिक और आध्यात्मिक रूप से निर्बल है। वे वैसे नहीं रहते जैसे पहले रहते थे। जाति वर्ण आश्रम से ऊपर तो केवल अवधूत रहता है। जो ब्रह्म में ध्यान लगाता है उसके लिए आवश्यक है कि वह अच्छा आदमी हो। गृहस्थ को अपनी पत्नी को कभी दण्ड नहीं देना चाहिए। उसे उसका ऐसे सम्मान करना चाहिए जैसे अपनी माता का। बुद्धिमान व्यक्ति को अपनी स्त्री को अकेला ही मेलों में नहीं भेज देना चाहिए। मनुष्य की देह धन इच्छा और मुक्ति का घर है। उसका कभी क्रय विक्रय नहीं होना चाहिए। यदि वह बेचा गया है तो मेरी आज्ञा से वह क्रयविक्रय अस्वीकृत है। भैरवी चक्र या तत्त्व चक्र के अतिरिक्त मनुष्यों को अपनी-अपनी जाति में विवाह करना चाहिए। तन्त्रान्तर के अनुसार ब्राह्मण सब जातियों की स्त्री से विवाह कर सकता है। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र से। वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय के अतिरिक्त तथा शूद्र पहले तीन के अतिरिक्त सबसे कर सकता है, सामान्य मात्र सामान्य से। विधवा भी पुनर्विवाह कर सकती है। केवल एक बन्ध है कि स्त्री एक पति के रहते दूसरे से विवाह नहीं कर सकती। वीरसाधक के हाथ में कैसा भी कच्चा-पक्का चाण्डाल भक्ष्य किरात या हूण द्वारा छुआ भोजन पहुँचकर पवित्र हो जाता है। चक्र में जातिदर्प नरक में डालनेवाला होता है। चक्र में जो एक मास उपासना करता है वह राजा हो जाता है। साल भर से मृत्युंजय नित्य करने से तो उसे निर्वाण मिल जाता है। शक्ति

अग्नि का भस्म है जैसे वरुण का पाश है। हे परमेश्वरी शैव पत्नी और उसके पुत्र को पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति प्राप्त करने वाले से सम्पत्ति के अनुरूप धन पाने का अधिकार है। परवर्ती विचार होकर भी महत्त्वपूर्ण है। पुत्र को अपने माता-पिता प्रजा को अपना राजा पत्नी को पति तब तक नहीं छोड़ना चाहिए जब तक वे घोर अपराधी न हों। जो दूसरे की सम्पत्ति प्राप्त करे उसे बनवाने का धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए। संसार में दो तरह के कर्म हैं। अच्छे और बुरे, बुरे का फल सदैव अत्यन्त कष्टदायक होता है। ऐसे ही मनुष्य सोने और लोहे की शृंखला में फँसा है। ज्ञान के बिना कहीं मुक्ति नहीं है। धीराज्ञमस् ज्ञान से आत्मा के निर्मल होने पर निष्काम कर्म से प्राप्य ही ब्रह्म है जिसके लिए निरन्तर तत्त्व विचार की आवश्यकता है।

मुक्ति जप होम या सौ यज्ञों से नहीं मिलती। वह तो ब्रह्मज्ञान से मिलती है। जो अज्ञान से मिट्टी और पत्थर लकड़ी और धातु की मूर्तियों को ईश्वर समझकर उपासना में रत हैं वे तो कभी मुक्त नहीं हो सकते। यदि वायुभक्षण पत्तल खाना और जल भक्षण से मुक्ति मिलती तो साँप गाय भैंस पक्षी और जलचर सभी के मुक्त हो गए होते। ब्रह्म सद्भाव सबसे उच्च अवस्था है। ध्यान भाव मध्यम है। स्तुति और जप अन्तिम है। जो बाह्य उपासना करते हैं वे तो निकृष्टतम हैं। योग जीव और आत्मन् की एकता है पूजा पूजक और पूज्य की। किन्तु जो जानता है कि सब ब्रह्म है उसके लिए न जप न योग न पूजा कुछ भी आवश्यक नहीं है। जो ब्रह्म ज्ञाता है उसके लिए तो पाप और पुण्य कुछ भी नहीं। वह प्रकट रूप से सृष्टि में रह कर भी नहीं रहता। एक आत्मा होने के कारण मनुष्य मनुष्य से प्रेम करता है। (जो ब्राह्मण क्षत्रिय तथा अन्य जातियाँ ब्रह्म मंत्र की उपासक हैं वे भले ही गृहस्थ हों यती हों। पूर्णाभिषेक संस्कारों से दीक्षित व्यक्तियों को शैवाव धूत समझना चाहिए।) जो कौल चांडाल अथवा यवन को कुल धर्म में उन्हें नीच समझकर दीक्षा नहीं देता वह स्वयं नीच है। जो स्त्री का अपमान करता है वह पतित है। जैसे हाथी के पद चिह्नों में सब पशुओं के पग चिह्न खो जाते हैं वैसे ही कुल धर्म में सब धर्म लय हो जाते हैं।

कौल धर्म से परे कोई और धर्म नहीं है। इसको मानने से साधक स्वाधीन इन्द्रिय संचार करता है। वह पञ्चमर्यविजय की क्षमता रखता हुआ निर्द्वन्द्व नित्य शक्तिमान होता है।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि कौल मार्ग के कुछ अपने विशेष नियम थे। जो उन्होंने अपने विशेष धर्म के लिए स्वीकृत कर लिये थे। ये नियम परवर्ती काल में कुछ वैदिक होने का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु अपने प्रारम्भिक स्वरूप में वे निःसन्देह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में एक

उथल-पुथल मचा देने की शक्ति रखनेवाले सिद्धान्त थे जिनसे ब्राह्मण धर्म पर केवल प्रहार ही हुआ करते थे चाहे वह शैव मत का प्रभाव हो चाहे बौद्ध का।

सिद्धि तत्त्व की एक बड़ी प्रधानता मानी जाती थी। यक्षिणी आदि उपविद्याओं का भी प्रचार था।

किन्तु कौल साधना में बोधि-साधना की ही भाँति गुरु को बहुत आवश्यक बताया गया है। वह पथ प्रदर्शक है। गुरु का स्थान अत्यन्त उच्च माना गया है। उसके बिना साधक ठीक पथ पर नहीं चल सकता।

रुद्रयामल में—

गुरुरेव परो मन्त्रो गुरुरेव परो जपः
गुरुरेव परा विद्या नास्ति किंचिद् गुरुं विना।
यस्य तुष्टो गुरुर्देव तस्य तुष्टा महेश्वरी
येन सन्तोषितो देवि गुरुः स हि सदाशिवः ॥[1]

किन्तु साथ ही ब्रह्म वैवर्त में—

ये गुरुद्रोहिणो मूढा सततं पाप कारिणः
तेषां तु यावत् सुकृतं दुष्कृतं स्यान्न संशयः ।[2]

भैरवन में—

घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पंचमी
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः।
पाशबद्धः पशुः प्रोक्तः पाशमुक्तः सदाशिवः
तस्मात्पाशहरो योऽत्र सगुरुर्नामिहोच्यते ॥[3]

कौलरत्नावली में—

न गुरोः सदृशं वस्तु न देवः शंकरोपमः
न च कौलात्परो योगो न विद्या कालिका समा।

---

1. गुरु ही परममन्त्र तथा परम जप है। गुरु ही परा विद्या है। उसके बिना कुछ नहीं। जिससे गुरु प्रसन्न है उससे महेश्वरी भी प्रसन्न है। जिससे वह सन्तुष्ट है उससे सदाशिव सन्तुष्ट है।

2. जो गुरुद्रोही हैं वे सतत पाप करते हैं। निःसंदेह उनके सुकृत भी बुरे कर्म हैं।

3. घृणा शंका भय लज्जा जुगुप्सा कुल शील जाति आठ पाश हैं। पाशबद्ध पशु है, पाशमुक्त सदाशिव। गुरु ही पाशहर है।

4. गुरु सदृश कोई वस्तु नहीं। न देवता शंकर समान को। कौल से परे योग नहीं। विद्या कालिका समान नहीं।

और—

मद्यपुष्पेण सर्वत्र पूजयेत्कौलसुन्दरीम् ।

कौल सुन्दरी की सर्वत्र मद्यपुष्प से उपासना होनी चाहिए ।

कौल मार्ग में स्त्री को अनेक सुविधाएँ हैं ।

यामल में—

नियमः पुरुषै ज्ञेयो न योषितसु कदाचन् ।[2]

वीर तन्त्र में—

नन्यासो योषितांचाप न ध्यानं मन्त्र पूजनं ।

केवलं जप मात्रेण मंत्रा सिद्धयन्ति योषिताम् ।।[3]

नियम और सिद्धि की कठिनाइयाँ तो केवल पुरुषों के लिए हैं ।

मेरी—

स्त्रियं शतापराधांचा पुष्पाणि न ताडयेत् ।

दोषान् न गणयेत् स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत् ।[4]

तथा

कन्या कुमारिका नग्ना उन्मत्ता अपि योषितः ।

न निंदेत जुगुप्सेत् न हसेन्नावमानयेत् ।

एक वृक्षं श्मशानांच समूहं योषितामपि ।

नारीच रक्त वसनाम् दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः ।[5]

—स्त्रियों का कैसा भी अपराध हो तो उन्हें फूल से भी नहीं मारना चाहिए। उनका अपमान नहीं करना चाहिए। स्त्री के प्रति इस अतीव सम्मान में यदि एक ओर शक्ति के दैवी स्वरूप के प्रति श्रद्धाभाव है तो दूसरी ओर स्त्री के शरीर से वीरतम अनुरक्ति है। शाक्त सम्प्रदायों की विचारधारा में एक विशेष प्रकार का इन्द्रभाव व्यस्त रहा है। गोरख में ऊपर देखा जा चुका है

---

1 सर्वत्र मद्य पुष्प से कौल सुन्दरी की अर्चना करे ।

2 नियम पुरुष को जानने चाहिए, स्त्रियों के लिए यह आवश्यक नहीं ।

3 स्त्रियों के लि[illegible] न न्यास, न ध्यान न पूजा केवल मन्त्र के जपमात्र से उन्हें सिद्धि मिल जाती है ।

4. स्त्रियों को सैकड़ों अपराध पर भी पुष्प से भी नहीं मारना चाहिए । उनके दोष न गिनकर केवल गुणों को प्रकाशित करे ।

5 कन्या कुमारी नग्न और उन्मत्त हुई स्त्री को देखकर भी न उसकी निन्दा करे न जुगुप्सा न हँसे और न अपमानित करे ।

एक वृक्ष या श्मशान या समूह में स्त्रियों को देखकर, चाहे वह रक्त वसना ही क्यों न हो भक्ति से उसकी वंदना करे ।

उसके प्रति कितना कर्कश विद्रोह था। कौल साधक के लिए प्राणायाम एक आवश्यकता है क्योंकि शरीर की वायु को वश में करना साधक की सिद्धि में सहायक है। अनेकों तन्त्रों में श्वास प्रश्वास के भेद किये गए हैं। यह प्राणायाम साधना की योग पद्धति का एक अंग है जिससे साधक अपने को जितेन्द्रिय करने का प्रयत्न करता है। यह जितेन्द्रिय गोरखनाथ की भांति नहीं है। कौल साधक का चरम लक्ष्य यौन सम्बन्धों के मार्ग से ही प्राप्त होता है। प्राणायाम के साथ बीज तथा पद्मों का भी सविस्तार वर्णन किया गया है। वायु से शरीर को अमृत से आप्लावित करके साधक को पंच भूतों का लय करना चाहिए। किन्तु चरमावस्था में देवी रूप के चिन्तन का ही उल्लेख है।

इसमें वर्ण और मातृका उनके रंग उच्चारण और विशेषताओं का भी अपना हाथ रहता है।[1]

भूत शुद्धि के लिए आवश्यक है कि साधक उस परा विद्या को समझे जिससे आकाश वायु, अग्नि जल इत्यादि से कलेवर उत्पन्न होता है।[2] यह

---

1 वामनासा पुटेनाथ पूरयित्वा समीरणम् ।
सन्निरुध्य धीमांश्च कुम्भकं विभावयन् ॥
तदेव बीजं देवेश संस्मरन् समीरयेत् ।
अनुक्रमेण शमेन कुर्यात् देवि विचिन्तयन् ॥
सोवरेचेन्मारुतं ततो वामपुटेन च ।
वामेन वायुपुटेन तावन्तं सम्प्रार्थ ॥
विभाव्य चरमात्मानं ज्ञात्वा परमात्मने ।
सानुस्वार वायुबीजं सम्यक्सम्पुटितम् ॥
तस्मात् कन्दात् समुत्पन्ना देहव्यापिन्य सुन्दरि ।
मूर्धानं सनातन शुभ्र तदोत्था निरामय ॥
शोषयित्वा निपात्य पंचभूतानि वै पुरा ।
अमास्याम स्थापयित्वा तत्र बीजं पुनः प्रज ।
ध्यायान्तरादिभिस्तस्ये सहैव परमात्मनि ।
बीजात्मकं समाकृष्य स्थापयित्वा हृदम्बुजे ॥
दलीकस्मस्वरमानं चिन्तयेत्परामूर्तिकाः । (महानिर्वाण संहिता)

2. मासि देराथ वं कारं धूम वायु विचिन्तयेत् ॥
तेनैव शोषयित्वा तनु भोजनाक्षया ।
कर्मातिरनं चतु नयन कुम्भयित्वा समाचरेत् ॥
अग्निरम्भाजन दहे देवेन तेन वा पुन (यामल)

3 पुरुषप्रकृत्योर् इदं पश्चिम परमात्मना ।
परमक्षरमिमा विद्या प्रकृतिर्गुण परा ॥

रूप में अग्नि को मानता है, और इस प्रकार ध्यान करते हुए अधर्म तथा धर्म की हवि से दीप्त सुषुम्णा के पथ से वह उसे ऊपर उठाता है, और अन्त में वह प्राणायाम करता है।

इस साधना में वह सब कुछ स्वाहा के रूप में उस अग्नि को अर्पित कर देता है।[1] चिदात्मकशक्ति वह अग्नि रूपी कुण्डलिनी ही है।[2]

इसके साथ ही घट स्थापन आदि के विश्वास भी चलते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि यह दार्शनिकता केवल अन्तस्थ है। इसकी साधना के बाह्य रूप में सब प्रकार की पूजा प्रचलित है।[3] जिसमें सभी सम्प्रदायों के लोगों का सहयोग है। चिदग्निक का पूजन करके उत्तम सोने या चाँदी के घट की स्थापना करनी चाहिए। किन्तु साथ ही भाव तो मानस धर्म है वह शब्दों से कैसे व्यक्त किया जा सकता है। गूंगे का गुण तो गूंगा ही जान सकता है।

रूप तो देवी का है। वह नाना नामधरा त्रिपुरसुन्दरी ही उस भाव की स्वामिनी बनी रहे यही उसकी कामना है।[4]

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
ज्ञान प्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥ — स्वाहा रहस्य

1 धर्माधर्म निर्मितेन मेरुपथे।
मेदान्तकर परिनिष्ठिति सविरश्मौ ॥
कक्षिमंदिवरपुन मरीचिविकारा मूलौ।
नित्यं जुहोमि सनुचरि शिवसम्यागम् ॥

2. मातृकार्णव—
मामान्तरशिव प्रोक्ता चले शक्ति शिवात्मकम्।
अग्नि कुण्डलिनी प्रोक्ता बन्धनो मेरु संस्थिते ॥

3 चिदगगन—
कैवल्यो गगनस्तस्य तीरस्तेन कुलेश्वरि।
यतिनेन्द्र प्रणुतीश शानमत कुरु सुभ्रु ॥
शिवशक्तिरत संपूज्य स्थाप्येदष्टकुम्भम्।
शातकुम्भं नाशिकं रजतस्यापि निर्मिते ॥

4. भावचूडामणि—
भावस्तु मानसो धर्मः शाब्द यदि कथ्यते।
तस्मात्स्वभावो न वक्तव्यो विद्वद्भिर्गुरुतल्प ॥
यथैकमूकमातृसम्मोदितो मूको।
तत्र भावविदाश्यन्तु स्वमा परिभाव्यते ॥

5 त्रिपुरार्णव—
यैव दामोदरा सर्वोत्तम भैरवी कामाक्षी।
रम्भाम चैत्रीदेवी त्रिपुरसुन्दर भैरवी।

अब वह अपने समस्त स्थूल सूक्ष्म तत्त्वों को शुद्ध कर रहा है।[1] वह चाहे सारा राष्ट्र, देश सुखी हो शान्त हो किन्तु उसकी भावना व्यक्ति की कुण्डली की ओर आकर केन्द्रित है वह पुकार उठता है—

> न मातर्वहि मे भिक्षां कुण्डलीम् दर्शयाम्यहं ।
> भैरवोऽहं न चान्योऽस्मि

मैं स्वयं भैरव हूँ और कुछ भी नहीं।

गोरख का दर्शन हठयोग तथा चक्र सिद्धान्त

ऊपर कुण्डलिनी और षट्चक्रों के नाम आ चुके हैं जो इस प्रकार हैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूर, अनाहत विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र इनके अतिरिक्त सबसे ऊपर सहस्रार चक्र है। उपनिषदों में भी योग का उल्लेख है। हजारीप्रसाद ने लिखा है—यदि यह मान लिया जाए कि षडंग योग गोरखनाथ का प्रवर्तित है, आसनों की संख्या अधिक मानना हठ-योगियों का प्रभाव है और नादानुसन्धान इन लोगों की विशिष्ट साधना है तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि योग उपनिषदों में से अनेक गोरखनाथ के परवर्ती हैं। कुछ में प्राचीनता के चिह्न अवश्य हैं परन्तु अधिकांश पर उनका प्रभाव पड़ा है। यह मत अभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह तो कहना ही व्यर्थ है कि गोरखनाथ के पहले योग की बड़ी जबरदस्त परम्परा थी जो ब्राह्मण और बौद्धों में समानरूप से मान्य थी। नाना ग्रन्थों में नाना भाव से योग की चर्चा हुई है और बौद्ध साधकों के पास तो कायायोग का साहित्य अन्यान्य वर्गों से कहीं अधिक था। इन सबसे गोरखनाथ ने सारसंग्रह किया होगा। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके पूर्ववर्ती अनेक ग्रंथ लुप्त हो गए और यह जानने का हमारे पास कोई उपाय नहीं रह गया है कि कहाँ से कितना अमृत उन्होंने संग्रह किया था।

पृथ्वी, जल तेज वायु आकाश अहंकार, बुद्धि मन श्रोत्र त्वक् चक्षु, जिह्वा घ्राण वचन पाणि पाद पायु उपस्थ शब्द स्पर्श, रूप रस, गंध एवं आकाश, [illegible] आत्मा [illegible] है।

> [illegible] कुण्डम्
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

1 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

विद्वानों ने गोरखनाथ के अनेक ग्रंथों का वर्णन किया है। हजारीप्रसाद जी ने अपनी पुस्तक में प्रायः उन सभी स्रोतों को देख डाला है। फिर भी वे इस निश्चय पर नहीं पहुँचे कि उनमें से कितनी रचनाएँ स्वयं गोरखनाथ की हैं। गोरखनाथ के हठयोग के विषय में विचार करते समय हम निम्नलिखित तथ्यों पर पहुँचते हैं कि उनको पद्म चक्र नाड़ीज्ञान मातृकाओं तथा कुण्डलिनी ज्ञान और षडंग तथा अष्टांग योग की एक बहुत बड़ी धरोहर मिली थी। उस धरोहर की रूपरेखा को समझने के लिए ही धार्मसामाजिक व्यवस्था में स्वीकृत तथा उसके बाहर की व्यवस्था में स्वीकृत बौद्ध तथा अन्य प्राप्त स्रोतों को इतने विस्तार से देखा गया है। अमरौघ शासन हठयोग प्रदीपिका शिवसंहिता घेरंड संहिता गोरक्ष पद्धति सिद्धसिद्धान्त संग्रह तथा गोरक्षसिद्धान्त संग्रह से उनके हठयोग में अन्य साधारणतया प्रचलित भेद विशेष नहीं दिखाई देते। अमरौघ शासन से प्रगट हो जाता है कि हठयोग उनका माध्यम था अन्त नहीं।

हठ शब्द के ऊपर नाथ सम्प्रदाय में हजारीप्रसाद ने पुराने-पुराने आचार्यों का मत संकलन किया है। अतः उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। हठ ह और ठ का संयोग है। ह और ठ सूर्य और चन्द्र का संयोग है अथवा इडा पिंगला का अथवा दोनों श्वासों का शरीर का आधा भाग सूर्य है आधा चन्द्र इन दोनों को मिलाकर सुषुम्णा में केन्द्रित करना योगी का लक्ष्य है।

चक्रों की गणना के विषय में मतभेद है। गोपीनाथ कविराज ने गोरक्ष शतक और गोरक्ष पद्धति से गोरखनाथ के चक्रज्ञान का वर्णन किया है। उनके अनुसार संक्षेप में यह क्रम है। यह रचना हस्तलिखित ही है।

संख्या	दल	चक्र	रंग	स्थान	देवता	शक्ति	ऋषि	विशेषता
1	—	आधार	लाल	पायु	गणेशनाथ	सिद्धि बुद्धि	—	—
2.	—	महापद्म	—	—	मीननाथ	—	—	—
3.	—	स्वाधिष्ठान	पीत	लिंग	ब्रह्मा	सावित्री	—	—
4.	6	सुषुम्ना	—	सुषुम्ना	—	—	—	—
5.	7	गर्भ	—	गर्भस्थान	—	—	—	—
6.	8	कुंडलिनी	—	कटिप्रदेश	अग्नि	—	—	—
7	—	मणिपूर	—	नाभि	विष्णु	—	—	—
8.	—	लिंगचक्र	—	—	—	—	—	—
9	12	अनाहत	श्वेत ज्योति	अनाहत हृदय	महादेव उमानाथ	उमा	हिरण्यगर्भ	पश्यन्तीवाक् सामवेद
10.	16	विशुद्ध	धूम्र	कंठ	जीव	मायाशक्ति	विराट	परावाक् अथर्ववेद जालन्धर बंध
11	33	आज्ञा	उद्योत-वर्ण प्रभा	भ्रूस्थान	प्राणनाथ	परमाशक्ति	—	शरीर का दशमुख द्वार, (योगसूत्र के अनुसार कंठ कूप)
12	32	मनस	रक्तो-द्योत प्रभा	त्रिवेणी स्थान ब्रह्मा विष्णु महेश के मिलने का स्थान	—	—	—	कामचक्र और योगिनी चक्र से सम्बन्धित

संख्या	दल	चक्र	रंग	स्थान	देवता	शक्ति	ऋषि	विशेषता
13.	34	चिबुक	—	चिबुक	प्राण	सरस्वती	क्रोध	सूर्य के समान चक्र, संसार की समस्त भाषाओं का उद्गम
14.	3	बसवान	लाल श्वेत महत	नासिका इडा पिंगला सुषुम्णा अर्थात् गंगा यमुना सरस्वती का मिलन स्थान—त्रिवेणी	प्रणव	सुषुम्णा	महाहंकार	यहाँ अ उ म का स्थान है
15.	36	कर्णमूल	काला पीला मिश्रित	कान के ऊपर	नाद	श्रुति	—	36 मातृकाओं का स्थान
16.	2	भाला (भ्रांति)	माणिक्य वर्ण प्रभा	भ्रूमध्य	ईश	सुषुम्णा	—	विज्ञानावस्था अनुपम वाक् प्रणव की अर्ध मात्रा
17	26	त्रिवेणी	—	भ्रू के ऊपर	आकाश	—	—	ओम सम्बन्धी त्रिवेणी असली नीचे के बसवान चक्र से कैसे संबंधित है।
18.	32	चंद्र	श्वेत, लाल	भाल	चंद्र	अमृत अमर	अमृत (सोलह कला के साथ)	यहाँ सूर्य चन्द्र-गृह में अमृत पीने जाता है

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने और भी विस्तार से इसका तुलनात्मक अध्ययन किया है। इसमें यदि एक ओर बाहुल्य-विविधता के कारण प्राचीनता का पुट है तो दूसरी ओर इसमें बहुत-सी बातें परवर्ती-सी प्रतीत होती हैं। मेरा अनुमान है कि गोरख की पूर्ववर्ती अवस्था में जब षट्चक्र और नाड़ीज्ञान बिखरा पड़ा था उसको लेकर परवर्ती काल में उनके चक्रज्ञान तथा शैव और वैष्णव मत को मिलाने के उद्देश्य से यह लिखा गया है। सम्भवतः यह नाथ सम्प्रदाय में ब्राह्मण मत के प्रभाव का प्रतीक है जो परवर्ती काल में निःसंदेह हुआ था। दूसरी तरह इसे यों कह सकते हैं कि नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव से जैसे कापिलायनी वैष्णव योगधारा[1] भी उसी के क्षेत्र में आ गई थी यह भी उससे कुछ मिलता-जुलता-सा प्रयत्न था।

चक्रों का बाहुल्य होने पर भी वस्तुतः तथ्य वही है।

आर्थर एवेलान ने अपनी 'दि सर्पेण्ट पावर' नामक पुस्तक में षट्चक्रों तथा कुण्डलिनी पर विस्तार से प्रकाश डाला है। हजारीप्रसाद ने अपनी 'नाथ सम्प्रदाय' में उस कोष्टक चित्र का कुछ अंश दिया है। यहाँ दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करके कुण्डलिनी के जागृत होने के पहले तथा जागृत होने के बाद की अवस्था को ऊपर दिये हुए चक्रज्ञान से तुलना के लिए दिया जाता है। मेरा विचार है कि इस दूसरी अवस्था को ही गोरख का कार्य और उनकी दी हुई व्यवस्था समझना अधिक ठीक होगा। हजारीप्रसाद ने लिखा है कि गोरख षट्चक्र, 16 आधार   लक्ष्य तथा व्योम पंचक को आवश्यक मानते हैं। किन्तु सिद्धसिद्धान्त पद्धति में 9 चक्र, 16 आधार, 3 लक्ष्य और व्योम पंचक माने गए हैं। इनमें ऊपर वर्णित षट्चक्रों के अतिरिक्त घण्टिका मनोमय और ब्रह्मचक्र अतिरिक्त हैं। ब्रह्मचक्र सहस्र दल है। इस वर्णन में प्रथम चक्र का नाम भी ब्रह्म चक्र है और अन्तिम का भी। प्रथम त्रिआवर्त भग-मण्डलाकृति है। उसके बीच कंद में शक्ति निवास करती है। यह कामरूप पीठ है। दूसरा चक्र चतुर्दल पद्म है। उड्डियान पीठ है। अगला चक्र कुण्डलिनी का स्थान है। अनाहत चक्र 12 दलों के स्थान पर 8 दल का है। उसमें दीप्त हंसकला नामक लिंग है। इड़ा पिंगला के बीच में सुषुम्णा अनाहत कला है। आज्ञाचक्र के स्थान पर तालुचक्र है जिससे अमृत बहता है। इन छोटे भेदों को छोड़कर परिष्कृत समन्वय तथा आत्मसात् करके स्पष्ट रूप यह दिखाई देता है—

1 नाथसम्प्रदाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी।

कुंडलिनी तथा चक्र

कुंडलिनी का रूप	चक्र (नाम)	खंडनाम	स्थान	दल संख्या	तत्त्व का वर्ण	तत्त्व और गुण तथा क्रिया	वर्ण
	मूलाधार (परा)	अग्नि	पीठ के अधो-भाग में पायु और मुष्क-मूल केबीच	4	पीत	56 पृथ्वी आकर्षण गंध	व श ष स
	स्वाधिष्ठान (पश्यंती)		मेरुदंड में मेढ़ के ऊपर	6	श्वेत	62 जल संकोचन रस	ब भ म य र ल
	मणिपूर	सूर्य	मेरुदंड में नाभि के पास	10	लाल	52 तेज प्रसरण रूप	ड ढ ण त थ द ध न प फ
	अनाहत (बुद्धि से मिलकर वैखरी)		हृदय के पास	12	धूम्र	54 वायु गति स्पर्श	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ
	विशुद्ध	चंद्र	कंठ के पास	16	श्वेत	72, आकाश अवकाश शब्द	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
	आज्ञा		भृवों के मध्य	2	—	64 मनस	ह क्ष

कुण्डलिनी के जागृत होने पर

मंडल का आकार तथा ग्रंथि	बीज और वाहन	देवता और वाहन	धातु शक्ति	लिंग और योनि	सम्बद्ध तत्व और इन्द्रिय	पीठ	गुण	लोक	देवता
वर्गाकार	लं ऐरावत	ब्रह्मा हंस	डाकिनी	स्वयंभू त्रिपुर त्रिकोण	गंध तत्व चरण घ्राणेन्द्रिय	कामाख्या		भूर्लोक	
ब्रह्मग्रन्थि							तमस		अग्नि
अर्धचन्द्र	वं मकर	विष्णु गरुड़	राकिनी	—	रस तत्व हस्त रसना	—		स्वर्लोक	
त्रिभुज	रं मेष	रुद्र वृषभ	लाकिनी	—	रूप तत्व चक्षु पायु	—		महर्लोक	
विष्णु ग्रंथि							रजस		सूर्य
षट्कोण	यं कृष्णमृग	ईश	काकिनी	बाण लिंग त्रिकोण	स्पर्श तत्व त्वचा उपस्थ	पूर्णगिरि		जनलोक	
वृत्त	हं श्वेतगज	सदाशिव	शाकिनी	—	शब्द तत्व कान वाक	जालंधर		तपोलोक	
रुद्रग्रंथि							सत्व		चन्द्र
—	ओम्	शंभु	हाकिनी	इतर लिंग त्रिकोण	महत् तत्व सूक्ष्म प्रकृति हिरण्य गर्भ	उड्डियान (योगसार के अनुसार [illegible])		सत्यलोक	

दुरूह और प्राय छोटे-छोटे भेदों में रमानेवाले इस विषय के पारिभाषिक विस्तार में न जाकर अब कुण्डलिनी को देखना ही अधिक आवश्यक है। कुण्डलिनी शक्ति है। शक्ति और शिव का मिलन योग है। शिव केवल दृश्य रूप में ही सीमित-सा प्रतीत होता है। माया शक्ति ही के कारण पूर्ण भी अपूर्ण-सा भासित होने लगता है। असीमित सीमित अल्प अल्पमय। शक्ति सच्चिदानन्द रूपिणी चिद्रूपिणी है। शिव पूर्ण है। शक्ति के द्वारा वे सृष्टि करने के योग्य हो पाते हैं। यह शाक्त तथा शैव प्रत्यभिज्ञा का मत है। इस भाव से संसार में शिव और दृश्य का सृजन करने वाली शक्ति ही है। माया से यह विक्षेप भी करती है आवरण भी। वह चेतना अपने-आपको भी स्वयं से आवरण में छिपा लेती है। तब संस्कारों के कारण ही पुन विक्षेप करती है। परासंवित अवस्था सबसे परे है। वह शक्ति एकांत नहीं कहला सकती। उसके लिए शिव शक्ति तत्त्व सर्वोपयुक्त शब्द है। परासंवित में अहं और इदं सब मिले हुए हैं।

ऊपर काश्मीर शैवमत का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया जा चुका है। अब हम उसे यहाँ आलोचनात्मक दृष्टि से देखेंगे।

जीव संसार में रहता है क्योंकि वह ऐसा ही चाहता है। यह दृश्य जगत् के प्रति उसके भीतर बना हुआ मोह है। जब सृष्टि की इच्छा (सिसृक्षा) होती है तब शक्ति नाद से काँप उठती है और बिन्दु का रूप धारण करती है। यही ईश्वर तत्त्व है। इसीसे सृष्टि उत्पन्न होती है। शिव की सृष्टि करने की इच्छा ही सिसृक्षा है। करनेवाली तो शक्ति है। तब यह द्वन्द्व क्यों भासित होता है। नहीं यह द्वन्द्व नहीं है। आवरण के कारण ही ऐसा प्रतीत होता है। शिव सबसे परे तो हैं किन्तु शक्ति भी शिवमय है। 36 तत्त्वों को लेकर वह प्रलयकाल में शिव में ही अवस्थित रहती है। उसका फिर से सृष्टि रचने में उद्यत होना शिव का ही इच्छाकर्म समझना चाहिए।

शैव और शाक्त दोनों ही 36 तत्त्व कला शक्ति उन्मनि और नाद बिन्दु, कामकला इत्यादि के विषय में एक मत हैं।

तन्त्रों में 36 तत्त्वों को तीन भागों में विभाजित किया गया है। आत्मा विद्या शिवतत्त्व। आत्मा में पृथ्वी से लेकर प्रकृति तक अशुद्ध तत्त्व हैं। विद्या में माया कंचुक पुरुष शुद्धाशुद्धतत्त्व। शिव तत्त्व में 5 उच्च तत्त्व शुद्ध तत्त्व शिव शुद्ध विद्या। आत्मा में पुरुष अपने से प्रतिबिम्बित एक अलग संसार का अनुभव करता है। वह प्रकृति है। दूसरी अवस्था में प्रकृति विकृति में अपना विभाजन कर लेती है।

प्रकृति के रूप में वह पहले बुद्धि मनस् अहंकार और इन्द्रिय उत्पन्न करती । तदनन्तर भूत जो पाँच प्रकार का है—आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी

इनका उदय तन्मात्राओं से होता है। शक्ति के लिए पृथ्वी तत्व को स्थूलतम है उसमें प्रवेश करने के बाद और कुछ शेष नहीं रह जाता है। तब वह विश्राम करने लगती है। उसे ही कुण्डलिनी कहते हैं। वह मूलाधार चक्र के समीप निवास करती है। बिन्दु में पुरुष शिव है। गुण शक्ति है। वे प्रसग नहीं किये जा सकते। अहंकार और माया एवं कुण्डली परस्पर मिले हुए हैं। पर बिन्दु शक्ति की घनावस्था है। बिन्दु में शक्ति अभेदरूपा—सर्वशक्तिमय है। प्रकृति में त्रिगुणमयी मूल प्रकृति। वह अव्यक्त देवता है। देवी रूप में शाश्वत है।

त्रिबिन्दु का समष्टिरूप ही त्रिपुरसुन्दरी है। यह ही सब मन्त्रों का मूल है। शक्ति के स्फुरण होकर प्रगट होने के पहले की अवस्था महाबिन्दु है। मैथुन में शिव-शक्ति एक हो जाते हैं। वह स्फुरण ही नाद है जहाँ से महाबिन्दु का उदय होता है। सदाशिव ईश विष्णु, ब्रह्मा पंचतत्व देवता पृथ्वी सहित मूलाधार में स्थित हैं। कोई ब्रह्माण्ड में वस्तु नहीं जो शरीर में स्थित नहीं है, आकाश मत देखो। ईश्वर तो मनुष्य देह के भीतर है। वह अन्तरात्मा में है अन्तर्यामी है।

वह अपनी माया से अप्रभावित है, जीव अविद्याग्रस्त है वह मलिन सत्वगुण प्रधान है। आकाश एक स्थूल शक्ति है जिसमें प्रकृति शक्ति अपने को विभाजित करती है। सूक्ष्म और स्थूल देह शिव शरीर की क्रिया-शक्ति से शक्ति ग्रहण करते हैं संचय रहते हैं।

प्राण का पुरुष तत्व बाहर आता है नारी तत्व लौटता है अक्षर ब्रह्म के रूप में शक्ति की यही प्रकृति है प्राण वायु का ही काम है। वेदांती इसे अक्षर वस्तु मानते हैं किन्तु यहाँ वैसा नहीं है। श्वास-प्रश्वास भी इसी कारण मंत्र के समान है सोऽहं-सोऽहं का नाद निरन्तर प्रत्येक जीव मे व्याप्त है यह मंत्र ज्योतिर्मयी कुण्डलिनी को जागृत करता है। कुण्डलिनी की कुण्डलियों में बिन्दु, प्रकृति पुरुष इच्छा क्रिया ज्ञान निहित है। जब मुक्तात्मक शक्ति उन्मुखी अवस्था मे होती है तब आज्ञा चक्र के ऊपर की शक्ति योग में फिर से लय होने की इच्छा करती है। सहस्रार का ईश्वर सृष्टि करनेवाला ईश्वर नहीं है। नीचे से शक्ति जाकर उसमे मिलती है वही मुक्ति है।

कुण्डलिनी जगाकर ही ज्ञान होता है। कुण्डली का सहस्रार मे शिव से मिलन होता है। स्वरस ज्ञान वही तो है। यह ब्रह्म का नैरन्तर साक्षात्कार है। वृत्ति तब शेष नहीं रहती।

यस्मिन विज्ञाते सर्वं इदं विज्ञातं भवति।

तारकाकार के अनुसार लययोग ही समाधियोग है। 6 आम्नायों मे 6 अलग-अलग योगों का उल्लेख है। पूर्णाम्नाय में मोक्ष दक्षिणाम्नाय में एकाग्र पश्चिमाम्नाय में उन्मनी इत्यादि। छठे अथवा गुप्त आम्नाय में

ब्रह्म लय है। यद्यपि अन्यों का भी यही ध्येय है। ब्रह्म स्वयं लयहीनता में अनुपहित चैतन्य है। द्वितीय अवस्था में जब वह उपहित है तब तुरीय है। वह मूल प्रकृति से सम्बद्ध है। यह दूसरा ब्रह्म ही सृष्टा पालक और लय करने वाला है।

गोरक्ष संहिता का कहना है कि इच्छा-क्रिया-ज्ञान ही गौरी ब्राह्मी और वैष्णवी है। यह त्रिगुण शक्ति अखिल सृष्टि में व्याप्त है। इसके परे ओम् शक्ति है। रुद्रयामल में भी यह इसी प्रकार है। एकः मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मा विष्णु महेश्वरा। ओम् के अ उ म ब्रह्मा विष्णु महेश हैं।

महानिर्वाण तन्त्र के अनुसार योगी को पृथ्वी—गन्ध तत्त्व को लय करना चाहिए। फिर उसे जल तत्त्व में लय करके रसना को अग्नि तत्त्व में दृष्टि को वायु तत्त्व में लय करना चाहिए। तदनन्तर उसे भी आकाश में लय करके आकाश को अहंकार में अहंकार महत् में महत् प्रकृति में लय करके अन्त में उसे प्रकृति को ब्रह्म में लय कर देना चाहिए। योगी अपनी सृष्टि को सदा के लिए लय कर देता है।

यम नियम और आसन से शरीर पर अधिकार होता है। प्राणायाम से प्राण का निग्रह होता है। प्रत्याहार से इन्द्रिय वश में हो जाती है। फिर धारणा ध्यान तथा सविकल्प समाधि से वृत्ति बन्द हो जाती है। मनस् अक्षेप हो जाता है। बुद्धि मात्र शेष रहती है। वैराग्य से बुद्धि का भी लय हो जाता है। योगी की आत्मा (जीव—शुद्धबुद्धि) प्रकृति मे लय होकर ब्रह्म में लीन हो जाती है। मनुष्य शरीर में प्राण महाप्राण का प्रवास है। प्राण के वश में आने से मनस् और वीर्य स्वतः अधिकार में आ जाते हैं। और इसी प्रकार वीर्य जब ऊर्ध्वगति हो जाता है किन्तु जब ऊपर चढ़ता है तब मनस् और प्राण वश मे आ जाते हैं। प्राणायाम से वीर्य-शोधन होता है। वीर्य ऊपर चढ़कर शिव शक्ति का अमृत होकर लौटता है। मुद्रा से स्थिरता आती है तभी हठयोग में मुद्रा शरीर स्थिति है। मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति के द्वार की कुंजी है। सच्चिदानन्द (शिव और सच्चिदानन्द शक्ति) दोनों ही शरीर में उपस्थित हैं। लय योग से चित्तवृत्ति का निरोध करके प्रकृति शक्ति को पुरुष शक्ति मे मिलाने से जो पिण्ड में व्यष्टि रूप में तथा ब्रह्माण्ड में समष्टि रूप मे है—मोक्ष प्राप्त होता है। लय योग के लिए चक्र ज्ञान की आवश्यकता है। पिंड का पूर्ण ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। प्राण जब सुषुम्णा मे मिलता है तब न रात रहती है न दिन क्योंकि सुषुम्णा काल-भक्षिका है। जब मिलन होता है तब ब्रह्मरंध्र से मूलाधार तक अमृत बहता है। शुद्ध ब्रह्माण्ड में नाद मच जाती है। चन्द्र देवता लुप्त होते हैं। अहंकार महत् मे महत् बिन्दु में लय हो जाता है।

कुण्डलिनी शब्द ब्रह्म है। जिससे ध्वनि उससे नाद इसी प्रकार नैरोधिका अर्धेन्दु, बिन्दु, परा पश्यंती और ध्वन्त में वैखरी का उदय होता है। निरोधिका अग्नि है। अर्धेन्दु चन्द्र और सूर्य का मिलन है।

शिव का अर्थ वश धातु से वश में करना शासन करना है। वेदांती के अनुसार जीव और आत्मा का मिलन योग है। शैव मत में जीव और शिव का मिलन योग है। उसकी शक्ति जो शरीर में स्थित है वह कुण्डलिनी है, स्वयं सिद्ध है। वह अ उ म का कुण्डलीकृत प्रणव स्वरूप है। शिव और कुण्डलिनी का मिलन ही सायुज्य मुक्ति है। कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर सुषुम्णा द्वारा षट्चक्र भेदकर सहस्रार में जाकर पर शिव से मिल जाती है। शिव की यह शक्ति सांख्य की प्रकृति की भाँति नहीं। यह तो चैतन्य है। यहाँ द्वैत की भावना नहीं है। न पातंजल योग की भाँति यहाँ प्रकृति कारण तथा दुःखों से युक्त जीव ईश्वर है। शिव निर्गुण और सगुण रूप में दोनों प्रकार से शक्ति से मिला हुआ है। *पर बिन्दु अथवा शब्द ब्रह्म शरीर में कुण्डलिनी स्वरूप है,* वह माता है।

सांख्य और न्याय दुःखों से निवृत्ति प्राप्त करना ही मनुष्य का अन्तिम ध्येय मानते हैं किन्तु वेदांती सर्वशक्तिमान से एकता चाहते हैं। जहाँ तक अद्वैतवाद में चित् का प्रश्न है सांख्य वेदान्त और तन्त्र एक ही मत रखते हैं किन्तु शैव प्रत्यभिज्ञा में माया अथवा शक्ति को निकृष्ट और जड़ नहीं समझा जाता। शंकर का दृष्टिकोण परमार्थिक की ओर से है। शाक्त और शैव का जीव की ओर से। इससे शैव और शाक्त जीवन से अधिक निकट हैं। निम्नोत्तीर्ण अवस्था में वह मनुष्य के लिए पग में प्रयोजनीय है। वह यदि एक ओर विश्वात्मिका है तो दूसरी ओर चिद्रूपिणी है। यदि ब्रह्म पूर्णब्रह्म है तो वह शक्ति को अपने से अलग करके स्वगत भेद स्वीकार नहीं कर सकता। शाक्त के अनुसार शक्ति के रूप में शिव बदलता है। शिव रूप में वह नहीं बदलता। शक्ति ही पर वस्तु है। वही चित् शक्ति है। जो दृश्यमान संसार है वह तो मात्र माया शक्ति है किन्तु उनका अविनाभाव सम्बन्ध है। प्राण इसी शक्ति का एक स्वरूप है।

वुडरौफ ने यह भेदों का संघर्ष हटाकर सांख्य वेदान्त शैव और शाक्तों के विषय में कहा है कि निम्नलिखित तथ्यों को सब ही स्वीकार करते हैं—

शिव शक्ति मिलने से सृष्टि होती है। शिव अनन्त असीम तथा पूर्ण चैतन्य है। शक्ति माया प्रकृति सीमित रूप नामधारिणी है। शक्ति आवरण है। वह कभी मूल प्रकृति—अव्यक्त कभी विकृति के रूप में रहती है। सांख्य में द्वैतवाद है वेदान्त और शैव शाक्तों में अद्वैतवाद। शंकर ने सांख्य के प्रकृति पुरुष को एक कर दिया किन्तु शाक्त और शैव ने उस एक ब्रह्म

की माया को शक्ति के रूप में उससे ऐसा मिला दिया कि मन प्रथम में ब्रह्म में घुल-मिल जाने की जगह शक्ति स्वयं शिव ही हो गई। पिंड में वही कुण्डलिनी हो गई। उसका जागरण ही लय योग है। तभी घेरंड संहिता में कहा गया है कि योनि मुद्रा से शक्ति ग्रहण करना चाहिए। उस समय आनन्द मय होना चाहिए। गोरक्ष संहिता में भी यही भाव है कि शक्ति के साथ जीव को उठाकर सहस्रार में ले जाने से शक्तिमय होता है और शिव से मिलकर आनन्द की ही अनुभूति होती है। वह वास्तव में बुद्धिमान है जो महानतम तेजस् को जानता है जो योनि में स्वयंभू लिंग के नाम से है। अन्य सब पशु हैं केवल भार ढो रहे हैं।

आधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र के बीच में एक योनि स्थान है जिसका नाम कामरूप है।[1] आधार चक्र चतुर्दल है। वह गुदा स्थान है। उसके बीच में ही योनि स्थान है वह कामाख्या और सिद्धों से वंदित है, उस योनि के मध्य में पश्चिमाभिमुख स्थित महालिंग है मस्तके मणिवत बिम्बं यो जानाति स योगवित्। तप्त पिघले स्वर्ण की भांति बिजली की रेखा के समान विस्फुरण से चंचल योनि स्थान—अग्नि का वह त्रिकोण—मेढ्र के अधोभाग में है। मेढ्र के ऊपर और नाभि के नीचे खगाण्डवत कन्द योनि है यहीं 72 हजार नाड़ियों के उत्पन्न होने का स्थान है। इनमें इडा पिंगला सुषुम्ना गांधारी हस्तिजिह्वा पूषा और यशस्विनी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त अलंबुषा कुहू और शंखिनी मिलाकर दस हो जाती हैं। नाड़ी और चक्रों को तो योगी को अवश्य जानना चाहिए। इडा बाईं ओर है पिंगला दाईं ओर सुषुम्ना बीच में है यह नाड़ियाँ प्राण का प्रवाह धारण करती हैं प्राणों को वश में करने का नाम प्राणायाम है।

जब तक शरीर में बिन्दु है तब तक मृत्यु का भी भय नहीं है। खेचरी मुद्रा से बिन्दु शरीर में ही रहता है, चाहे कामिनी के आलिंगन ही क्यों न हो। यदि बिन्दु हुताशन अर्थात् योनि स्थान तक भी पहुँच जाए तब भी योनि मुद्रा की शक्ति से वह रोका जा सकता है पीछे खींच लिया जा सकता है, बिन्दु शिव है शक्ति रज है बिन्दु चन्द्र है रज सूर्य है इनके मिलन से परमपद मिलता है नाड़ी शुद्धि तथा प्राण-निरोध से आरोग्य होता है और योगी को नाद की अभिव्यक्ति होती है।

ऊर्ध्वशक्ति के निपात[2] तथा अध शक्ति के कुंचन और मध्य शक्ति के प्रबोध से परम सुख उत्पन्न होता है। नाद उत्पन्न होने पर प्रथम ध्वनि दुन्दुभि

---

1 गोरक्षशतक प्रकाशित।
2 ऊर्ध्वरेता रहना।

ध्वन होती है। उसके बाद अनाहत निनाद होता है किन्तु उसके बाद यह सब ध्वनियाँ सुनाई देना बन्द हो जाती हैं।

प्रकृति के 5 भेद हैं पृथ्वी अप तेज वायु और आकाश इनके भी पाँच-पाँच गुण सूक्ष्म हैं। अधिक क्या कहा जाए, काम त्रिपुर-निरंजना नाम ब्रह्मरन्ध्र मूलाङ्कुरे निवास एभिस्समुत्थो एभिर्यदा मुक्ति स मोक्ष भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कायं नास्ति।

मनुष्यरूप गर्भ पिंडावस्था में है यह परा आकार, महा साकार, प्राकृत अवलोकन पिंडों का अन्तिम रूप है इसी में चक्र, पद्म नाड़ी प्राण इत्यादि हैं। सूक्ष्म और स्थूल का विचार करते हुए यह तत्त्व निकलता है कि जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में भी है इसी में पवन मन इत्यादि सब-कुछ है।

अखण्डपरिपूर्णात्मा निजरूपो महेश्वरः
घटे-घटे चित्प्रकाशस्तिष्ठतीति प्रयुष्यताम्। (सिद्ध सिद्धान्त संग्रह)

इस पिंड का आधार शक्ति है यह शक्ति जब शान्त है तब वह शिव है, यह कुल और अकुल दोनों ही है। कुल के पाँच प्रकार हैं—परा माया सत्ता अहंता और कला अकुल ही कुल होकर व्यवहार में उतरता है। यह शक्ति कुण्डलिनी है प्रत्येक चक्र में अलग-अलग शक्ति है पर मुख्य शक्ति एक है। इसी के जागरण से देह सिद्धि होती है। शिव शक्ति का भेद अज्ञान के कारण होता है। गुरु द्वारा पिंड सिद्धि होती है, जो निरुत्थान कराके सामरस्य प्राप्त कराता है। इससे निजावेश होता है, और परमपद प्राप्त होता है। चित्त सम होने पर उसमें आश्रित ज्ञान शक्ति के अनुकूल होने पर समस्त चित्त दर्पण के प्रतिबिम्ब समान विविध भाव-कला-कलित संसार चेष्टावलोकन कुण्डलाः सुप्तावस्था या रूपी जलचन्द्रवत् दृश्यते यः—वही परमात्मा सर्वव्यापी महेश्वर है, वही परमात्मा है। योगी की उस उच्चावस्था के लिए सबसे उपयुक्त वस्तु सहज है जिसमें कुछ भी कृत्रिम नहीं हो। यह भावना तो बौद्ध सिद्धों की अपनी ही बात थी।

(सहजो) अविमो यस्मात् (तस्मात्) संगी न साहस
सुखं न सहजमासम्यन् सुखंधाराय लक्षणं॥
ज्ञाता निःसंगता नाम्नी निर्वोषामत चतुर्थं।
चित्तं स्वरूपमं कृत्वा मग्नः सहज सागरे॥[1]

(अद्वय वज्रसंग्रह, पृष्ठ 63)

1 सहज अङ्गहीन है सहज में संग नहीं है। सहज से बाहर सुख नहीं है। सुख अनंत का लक्षण है। निःसंग का नाम करके योगाङ्ग सुख है चित्त को स्वरूपमय करके, सहज सागर में मग्न हो जाए।

सहज के सागर में मग्न होना परमावस्था है, फिर कोई बन्धन नहीं रहते। निर्संग होना उसकी कामना भी सहज से बढ़कर और क्या सुख हो सकता है।

अनास्रवा अस्तनयो विमुक्ता
स्वभावत शुद्धतमा समस्ता ।
अनारम्भ धीरा विषया प्रकृत्या
स्वप्नेन्द्र जाल प्रतिभास तुल्या ।[1]

(प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि, 40)

इस अनात्म से योगी को क्या प्राप्ति हो सकती है जब आत्मा का ही मिलन हो गया तब तो वह नहीं के समान ही तो हो गई।

यो मायो यस्य वै मोक्षस्वरूपाये संस्थितापुरा ।
स्वेच्छया बलयं कृत्वा यथा कुण्डलिनी स्थिता ।[2]

(शक्ति संगम काली खण्ड 83/1)

जैसे कुण्डलिनी अनासक्त शान्त शिवभाव में स्थित है वह शिव भी है शक्ति भी। योगी को उसको जगाकर स्वयं उसकी निद्रित अवस्था ही श्रेयस्कर है, अद्भुत है।

स्वयं महार्णवि पवनिमित्तं ।
कामातिथाली पर चित्तवृत्ती ।[3] (साधन सागर पृष्ठ 130)

बौद्ध सिद्ध तो यह सब संसार के भले के लिए करते थे। यह अवस्था अपनी ही नहीं संसार की वृत्ति जान लेने के कारण एक परावस्था है।

नित्य सर्वगत सूक्ष्म सदानन्दो निरामय ।
निर्विकाररहित साक्षी शिवज्ञेयो सनातन । (प्रबोधसार)

योगी सनातन शिव के समान विकाररहित होता है, उसे फिर कोई आमय नहीं रहते।

सदा समरसं ध्येयं ध्यानं तत्कुलयोगिनाम् ।
× × ×
निरालम्बे परे शून्ये यतेन उपजायते ।[5] (कौलावली निर्णय)

---

1 अनास्रव अस्तनय विमुक्त, स्वभाव से ही समस्त। ही शुद्धतम अनारम्भ ऐसा विषय की प्रकृति से सब कुछ स्वप्न के इन्द्रजाल के समान भासित होता है।

2. जो निश्चय मय है—कहा गया है इसी भाव में बलय की ही भांति स्वेच्छा से वैसा ही उसके जैसे बलय करके कुण्डलिनी स्थित होती है।

3 स्वयं महार्णव के निमित्त, चित्तवृत्ति का हरण।

4. नित्य सर्वगत सूक्ष्म सदानन्द निरामय, विकाररहित साक्षी, सनातन ही शिव है।

5 सदा समरस ध्येय कुल योगियों का ध्यान है।
निरालम्ब शून्य पर है—यत्न से ऐसा उत्पन्न होता है।

इस अवस्था रस में योगी केवल ज्ञान रूप हो उठता है।

घटे संवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा
घटोनीयेतनाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः[1] ॥13॥

(मुक्तिकोपनिषद्)

प्रश्न का उत्तर है कि वह आकाश के समान होना चाहता है। वेदान्त का अद्वैत कहकर क्या उस ब्रह्म का एक परिचय-सा नहीं दिया जाता। द्वैताद्वैत के परे जो है वह नाथों की ब्रह्म की कल्पना है। उसके लिए कोई लिंग अंकित चिह्न नहीं हो सकते।

सांख्या वैष्णव वैदिका विधिपरा संन्यासिनस्तापसा
सौरा वीर पराः प्रपंच निरता बौद्धाजिना श्रावकाः।
एते कष्ट रता वृथा पथगता स्ते तत्त्वतो वंचिता।[2]

(सिद्ध सिद्धान्त संग्रह)

सब कष्ट झेल रहे हैं। केवल सिद्धमत है जो इसीलिए कहा गया है कि वे मुक्ति को पहचान सकें।

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्य गणिका इव
सा पुनः शांकरी मुद्रा प्राप्ता कुलवधूरिव।

(गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह)

वेद शास्त्र पुराण इत्यादि में वह गम्भीर सत्य को खोजकर निकाल लानेवाली शक्ति निःसन्देह नहीं है।

योगमार्गात् परोमार्गो नास्ति नास्ति।
× × ×
वेदभारपराक्रान्तास्ते विप्राः पुस्तकाश्रमाः।
× × ×
गृहे-गृहे पुस्तक भार-भाराः पुरे पुरे पण्डित मूक-मूकाः
वने-वने तापस वृन्द-वृन्दा न ब्रह्मवेत्ता नच कर्मकर्ता।[4]

(कापिल गीता)

---

1 घट में संवृत शून्य को जैसे घट भग्न करता है तब वैसे ही आकाश लीन हो जाता है उसी आकाश के समान जीवित रहना चाहिए।

2 सांख्य वैष्णव वैदिक, संन्यासी, तापस और वीर, प्रपंचनिरत बौद्ध, जिनश्रावक ये कष्टों में रत हैं वृथा हैं, पथ से हट गए हैं तत्त्व से वंचित हैं।

3 वेद शास्त्र, पुराण सामान्य वेश्या के समान हैं। यही शांभवी और शांकरी मुद्रा गुप्त रखने तो वह कुलवधू के समान है।

4 योगमार्ग से परे मार्ग नहीं है। वेदों के भार से दबे विप्र ज्ञानहीन हैं। घर-घर में पुस्तकों का भार है पुर-पुर में पण्डितों के झुण्ड हैं, जंगल-जंगल में तापसियों की भीड़ है, न कर्म कर्ता है, न ब्रह्म ज्ञाता है।

पुस्तकों ग्रन्थों से क्या मनुष्य ब्रह्म को पहचान सकता है। योग पुस्तकों से नहीं आता।

अपनी साधना के प्रति योगियों में कितना विश्वास था यह उक्त कथन से प्रकट होता है।

> न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे
> नो तत्र समुद्रे सलिलं बिभर्ति।
> न तारकासु नच विद्युताम् श्रितं
> नचाभ्रे दृश्यते रूपमस्य।[1] (सनत्सुजातीय)

ज्ञान से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। ब्रह्मज्ञान ही परं शास्त्र है। जिन्हें यह शास्त्र ज्ञात है उन्हें योग साधन की क्या आवश्यकता।

> यथाकाशस्तथा देह आकाशादपि निर्मल:
> सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतरो देहः स्थूलात्स्थूल जडाज्जड: ।[2] (योगबीज)

आकाश आकाश तो कह दिया। किन्तु यह वेदान्त की तर्क कर्कशता नहीं। देह भी वैसे ही निर्मल होना चाहिए। यह खूब समन्वय हुआ।

> गतेन शोकेन भयेन लीप्सा
> प्राप्तेन हर्षं न करोति योगी।
> आत्मानन्दपूर्णो निज बोध लीनो
> न बाध्यते कालपथो न नित्यं।[3]

योगी को न दुःख है न सुख।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि योगी केवल अपनी मायातीत अवस्था में ही मग्न है।

> व्रतो न च तीर्थंच न यज्ञादि कर्मंच
> नैव मौनं तथा सत्यं लोकपीठस्य सेवनं।
> न पूजनंच होमंच न स्नानं दानमेवच
> धर्माधर्मं न कर्तव्यं न बंधी लौकिकाक्रिया।
> न काम नैव क्रोधंच नापि पुण्यं समाचरेत्
> न मायो नैव मोहंच न लोभं कलहं तथा।

---

1 पृथ्वी-अन्तरिक्ष में नहीं ठहरता। समुद्र की लहरों में नहीं रहता। तारों और बिजलियों में नहीं है। न मेघों में है। उसका रूप नहीं दीखता।

2. देह आकाश जैसी देह। आकाश से भी निर्मल सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थूल से स्थूल जड़ से जड़।

3 शोक भय, लिप्सा आदि, हर्ष से परे योगी है। आनन्दपूर्ण अपने बोध में लीन आत्म—कालपथ से मुक्त नित्य भी नहीं।

4. व्रत तीर्थ, यज्ञ कर्म पूजन मौन सत्य, पीठ सेवन होम स्नान दान, धर्माधर्म, कर्तव्य, लौकिक क्रिया से परे—काम, क्रोध आदि से दूर।

पाखण्ड का सशक्त शब्दों में खण्डन किया गया है। यही वह स्वर है जिसे चार्वाक ने दैहिक बनाकर पूछा था। परवर्ती काल में केवल आकाश से यह प्रश्न पूछा गया किन्तु इस संधिकाल में दोनों का सम्मेलन हो गया था।

> रसेन रसायनं च धातुवादं तथैव च ।
> तृणवत् संत्यजेत् सर्वं यथाप्राप्तमुपागतम् ।[1]

यह नाथ सम्प्रदाय का स्वर गोरख में एक प्रबल क्रान्ति बनकर उभर आया है रस-रसायन धातु से आत्मा को क्या मिलता है।

> क्रियाकर्म परित्यजेत सर्वज्ञान विवर्जित ।
> पुण्यापुण्यमयं मूढं किंचिदपि न चिन्तयेत ।[2]

जब सामाजिक रूप ही नहीं रहा तब क्रिया-कर्महीन होने में क्या हानि है।

> समः शत्रौ च मित्रे च समो लोष्टे च काञ्चने ।[3]

मित्र और शत्रु सब एक हैं सम्पत्ति और असम्पत्ति जो दुख के कारण हैं उन्हें हम बिलकुल नहीं चाहते।

> निर्मलं तिष्ठते ब्रह्म घृतकुम्भे जलं यथा
> समनिन्दा प्रशंसा च सर्वभोगेषु सन्ततं ।

घी के घड़े में पानी के समान रहना चाहिए, निन्दा और प्रशंसा दोनों को समान समझना ही योगी का कर्तव्य है।

> समदृष्टि प्रकुर्वीत यथात्मनि तथा परे,
> स्वभावे भावसम्पन्न समावगति चेतसा ।

समानता की यह दृष्टि ब्राह्मणवाद के विरुद्ध पुराना विद्रोह था। व्यक्तिवाद का पक्ष है—

> उन्मनायं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्
> विवादं लोकगोष्ठीच कलहं द्रव्य संग्रहं ।
> धारण गोष्ठी न कर्तव्या स्वजातीय कुमारिकं
> मारणोच्चाटने चैव निर्वैरं च मनस्तथा ।

---

1. रस, रसायन धातुवाद को तृण के समान त्याग दे। —गोरख संहिता
2. क्रिया-कर्म छोड़ सर्व ज्ञान से विवर्जित पुण्यापुण्य कुछ न सोचे।
3. शत्रु मित्र समान कंचन मिट्टी के ढेले के समान।
4. ब्रह्म निर्मल ऐसे है जैसे घी के घड़े में पानी समनिन्दा प्रशंसा—सबकी निरन्तर उपेक्षा करे।
5. सम दृष्टि रखे जैसे स्वयं वैसे अन्य समागतकी चित्त से स्वभाव में भाव-सम्पन्नता आवे।

इन्द्रजालमिदं सर्वं बुद्ध्वा कर्म तथा परं
मनभावं त्यजेद्दूरं भूतवेतालसाधनं ।
गारुडं विषमं कर्म कामतापनमेव च
न कुर्यात् कूट कार्यादि काष्ठ पाषाण पूजनं ।
नमुद्रा सेवनं कुर्यात् क्षेत्र पीठेष्वदेवता
पद्मासनाद्यासनम् (?) महानन्दं समाश्रयेत् ।
भेरी मृदंग वाद्यं च श्रूयमाणेन मुह्यति
ओंकारविलसर्वत्र पश्यति न महीतले ।
सम्यक्पर्यटनं कुर्यात् क्षेत्रवासं परित्यजेत्
नोच्छेदेद्वृक्षशाखेच पत्राणि न च नाशयेत् ।[1]

कृमि कीट पतंग इत्यादि की भी जीव-हत्या नहीं करो। न वृक्ष उखाड़ो न पत्तों का उच्छेद ही।

क्षुधा चिन्ता न कर्तव्या न तृष्णा नच वेदना
देह चिन्ता न कर्तव्या स्वभावं नैव चिंतयेत् ।[2]

इस देह चिन्ता का अर्थ सामाजिक व्यवस्था से सम्बद्ध हुई अन्न-पानी जुटानेवाली चिन्ता से है जिसे योगी छोड़ चुका है। साधु और योगी जैसे समाज की अधमता से व्याकुल हो उठे थे वे उससे बिलकुल अलग हो जाना चाहते थे।

अचिन्ता कृता सम्पूर्णमेकाकारं परात्परम्
न चिन्तयन्ति न वा मूढा मोहजाल समावृता ।
स्वयं कर्ता स्वयं हर्ता अन्य नियम नास्ति
बाह्य चिन्ता न कर्तव्या मनसापि न चाचरेत् ।
सर्वचिन्ता परित्यज्य अचिन्त्यम् चिन्तयेत् सदा
अमुना किमि हीनत्वेन हृदि चिन्तानिवेशयेत् ।
अनायासं मनः कृत्वा सर्वावस्था विवर्जित

1 सब को अपना करे, कुछ भी चिन्ता करना दोष है, किन्तु [illegible] इत्यादि त्याग है। इस सब को इन्द्रजाल समझे, मनभाव भूत वेताल साधन न करे। गारुड विषम कर्म काम तापना [illegible] काष्ठ-पत्थर पूजा मुद्रा सेवन क्षेत्रपीठ [illegible] सब दोष है, पद्मासन के अतिरिक्त महानन्द नहीं है। भेरी मृदंग, नाद [illegible] हो जाता है [illegible] न करे सम्यक पर्यटन करे, क्षेत्रवास दोष है, वृक्षशाखा इत्यादि नाश न करे।

2. भूख-प्यास की चिन्ता तृष्णा वेदना, देहचिन्ता स्वभाव से वर्जित, छोड़, न करे।

वृष्टि चिन्ता न कर्तव्या स्नानं दानं तथैव च ।

× × ×

उन्मनायं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।

× × ×

सर्वावस्था विनिर्मुक्तः सर्वस्थान विवर्जितः
स्वभावतः तिष्ठते योगी विमुक्तो नात्र संशयः ।

× × ×

अहमेव परं ब्रह्म भावाभाव विवर्जितः
सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानं चिन्तयेत् सदा ।[1]

संसार दुखी है वह पाप से बना है यही लोग ऊँच-नीच मानते हैं। किन्तु प्रबल व्यक्ति इन सबको सहन नहीं कर सकता। वह सच्चिदानन्द रूप भाव और भाव से विवर्जित है।

फिर वह परमात्मा हो जानेवाला योगी तो—

निरंजनः प्रतीत उत्पत्तिस्थिति कारणम् ।

वही तो उसकी इच्छा है। वह अवस्था प्राप्ति क्या सरल है।

दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणाविना ।[3]

गुरु मिलना चाहिए। उसके बिना यह पथ कैसे कटेगा।

हृदयं दर्पणं यस्य मनस्तत्र विलोकयेत् ।[4]

हृदय को दर्पण होना चाहिए। वहीं सब कुछ दिखाई दे सकता है।

भिन्नं-भिन्नं न पश्यामि तस्याहं पंचमाश्रमः ।[5]

---

1 अखिल गुरु से पूर्व पर और भ्रम को छोड़कर ध्यानकर, स्नान को दान और यही समझना चाहिए। न अपनी चिन्ता करे न अन्यों की। केवल अखिल की चिन्ता करे। गृह त्याग करे, हृदय में चिन्ता करे। मन को उन्मन करके उपरोक्त छोड़कर बुद्धि चिन्ता न करे न स्नान-दान समझे।

× × ×

मन उन्मन करके कुछ चिन्ता न करे।

× × ×

सब अवस्था से मुक्त सब स्थानों से दूर, स्वभाव से ही योगी मुक्त रहता है, संशय नहीं है।

× × ×

मैं ही ब्रह्म हूँ, भाव-अभाव से विवर्जित सच्चिदानन्द रूप हूँ आत्मन् की सदा चिंता करे।

2. निरंजन प्रतीत, उत्पत्ति और स्थिति का कारण।

3 सद्गुरु करुणा बिना सहजावस्था दुर्लभ है।

4 हृदय जिसका दर्पण है मन को वहीं से देखे।

5 भिन्न-भिन्न करके नहीं देखता तभी पाँचवाँ आश्रम है।

कुल जाति और पूजा इत्यादि सब व्यर्थ हैं, जो स्वयं निर्वाण है, जिसके लिए सत्य और असत्य का भेद समाप्त हो चुका है वह धर्म के नाम पर मूर्ख और पण्डित बनने का दिखावा करेगा ?

शिवं न जानामि कथं वदामि
शिवं च जानामि कथं वदामि
अहं शिवश्चेत परमार्थ रूपं
स्वच्छ स्वभावं गगनोपमं च ।[1]

योगी कहता है विचारों के अनुसार वह शिव पर तर्क नहीं करना चाहता। जो जानता है वह स्वयमनुभूति है। उसे ग्रंथों में नहीं बांधा जा सकता वह साक्षात् शिव है, उसका स्वभाव बिलकुल धुल चुका है, वह एकदम गगन के समान है।

न तर्क शास्त्र विज्ञानात् न वाग्देवेन पाठनात्
स्वस्थो योगी स्वयं कर्ता लीलया चाजरामरः ।[2]

सर्व दर्शनानां स्वरूप दर्शनेन समन्वयं करोति सोऽवधूत योगी स्यात ।
(गो सि सं)

तभी सब दर्शनों का स्वरूप दर्शन करके जो समन्वय करता है, वही अवधूत है वही योगी है।

ऊपर हमने देखा प्रहार बहुत प्रबल है। गोरख के नाम से जो ग्रंथ कहे जाते हैं, मेरा विचार है वे उनके सिद्धान्तों के बाद में किये हुए संग्रह हैं। प्राप्त ग्रंथों में अधिकांश भाग परवर्ती है यद्यपि वह उनके मत और विचारों का अत्यन्त सान्निध्य और समीप से देखा हुआ रूप है। यह प्रश्न इसलिए उठता है क्योंकि गोरखनाथ के जीवन का एक और महत्त्वपूर्ण रूप था।

गोरखपंथ

समस्त धर्मों का समन्वय करने का यह गोरखनाथ का एक अद्भुत तरीका था। जैसे शक्ति में 36 तत्त्व निहित होते हैं वैसे ही वे सबको कवलीकृत करके बैठ गए। आखिर उसका परिणाम क्या हो सकता था देह में इतने चक्र, देवता ब्रह्मांड भर लिये गए, अभी तक जो कुछ बाहर प्रभाव का भय दूर से देखने पर धर्मरक्षा-सा दिखाई दे रहा था वह सब अब शरीर के भीतर आ गया शरीर इतना सब अपने भीतर समेट बैठा कि वह स्वयं दुरूह,

1. शिव नहीं जानता कहता हूँ जानते भी पर क्या कहूँ। मैं परमार्थ रूप शिव हूँ गगनोपम स्वच्छ स्वभाव हूँ।

2. न तर्क शास्त्र के विज्ञान से न वेद पढ़ने से। स्वस्थ योगी स्वयं कर्त्ता है लीला से ही अजर और अमर है।

रहस्यमय और भारी हो गया। गोरखनाथ में अगर हमने देखा कि वे कहाँ से चले और कहाँ उन्होंने अपनी बात को समाप्त किया किन्तु अभी उन्होंने योगी और दार्शनिक रूप ही दिखाया है यदि इतनी ही बात होती तो उनका इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ना असम्भव था। यह एक आश्चर्यजनक बात प्रतीत होती है कि गोरख के ऐसे सिद्धान्त थे किन्तु उनका कार्य काफी सांसारिक भी था।

विग्स ने परम्पराओं को एकत्र करते समय इस ओर कुछ विशेष इंगित नहीं किया किन्तु 'नाथ सम्प्रदाय' में हजारीप्रसाद ने कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को प्रकाश में लाकर दिखाया है। योगी सम्प्रदायाविष्कृति से इस विषय को अधिक दृढ़ता ही मिलती है। पश्चिमी ने केवल वाममार्गियों में गोरखनाथ के जाकर मिलने की बात लिखी है तनिक और गहराई से देखा जाए तो नाथ परम्परागत वार्ता में ऐसे और भी प्रकरण मिलेंगे। गोरखनाथ का किमम्बरों में जाना और ऐसे अनेक स्थल जहाँ उनके पूर्ववर्तियों से उनका युद्ध होता है वे सब ही किसी-न-किसी बात की ओर अधिकांश में कुछ-न-कुछ इंगित करते हैं। काली से गोरखनाथ के युद्ध से ही काली की नाथपंथियों में उपासना का प्रारम्भ हुआ ऐसा स्पष्ट है। यह पश्चिमी ने विस्तारपूर्वक दिखाया है।

विग्स के आधार पर यहाँ हम उनके विषय में प्रचलित पंथों पर प्रकाश डालते हैं।

टिल्ला गोरखनाथियों का एक पवित्र स्थान है। वहाँ यह प्रवाद प्रचलित है कि पहले शिव के 18 और गोरखनाथ के 12 पंथ थे दोनों में युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप शिव के 12 और गोरखनाथ के 6 सम्प्रदाय विनष्ट हो गए और जो अब 12 शेष रहे वे कनफटा या गोरखनाथी कहलाये। जो शिव द्वारा प्रवर्तित मत थे वे यह हैं—

(1) कच्छ में भुज के कठरनाथ (2) पेशावर और रोहतक के पागल-नाथ (3) अफगानिस्तान के रावल (4) पंख (5) मारवाड़ के वन तथा (6) गोपाल अथवा रामके।

गोरखनाथ के जो सम्प्रदाय अवशिष्ट रहे वे निम्नलिखित हैं—

(1) हेठनाथ (2) वैसी पिमपा (सम्भवे) के भाई पंथ के कोलीनाथ (3) चाँदनाथ कपलानी (4) वैराग रतढोंड मारवाड़ रतननाथ (5) पावनाथ जयपुर के जिनके हुए जालंधरपा कानीपाव और गोपीचन्द (6) धजनाथ (महावीर) इस सम्प्रदाय के अनुयायी सब विवेकी हैं।

यहाँ यह देखना आवश्यक है कि इन 18 और 12 पथों का क्या मतलब है। गोरखनाथ के अनुयायी योगियों के लिए संसारी भार ढोने की कोई

आवश्यकता नहीं थी। अतः योगमार्ग उनके समीप रहे होंगे। एक किंवदन्ती के अनुसार स्वयं गोरखनाथ ने 12 पंथों का प्रवर्तन किया। जिनमें 6 उनके और 6 शिव के थे बिग्स और हजारीप्रसाद ने विस्तार से इस विषय पर विचार किया है।

हजारीप्रसाद का मत है कि गोरखनाथ ने योगमार्ग से प्रभावित विभिन्न सम्प्रदायों को अपनी ओर खींच लिया। जो बिलकुल ही उनके साथ नहीं आये उन्हें उन्होंने त्याग दिया। इस अनुमान में एक बहुत बड़ा सत्य होते हुए भी यह पहले से सोच लिया गया है कि इस्लाम से बचने की ही प्रवृत्ति ने यह सब प्रेरित किया।

मेरा अनुमान उक्त पहली किंवदन्ती की ओर अधिक आश्रय पाता है कि गोरखनाथ ने यद्यपि प्रारम्भ में मत प्रवर्तन अवश्य किया और उन्होंने आत्म सात् करने की प्रवृत्ति भी दिखाई किन्तु यह जो एक प्रबल संगठन हुआ यह मुसलमानों के आने के बाद की वस्तु है, अर्थात् उस समय की जब योगियों को भी ब्राह्मण धर्म से सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा था। स्वयं गोरखनाथ के समय में तो इस्लाम को खतरे के रूप में शायद ही लिया जाता था उलटे उस समय उनके प्रभाव को इस्लाम आसानी से हटा भी नहीं पाया। योगी तो शरीर के भीतर बैठा था। ब्राह्मण धर्म क्रिया कर्म त्याग से जा सकता था योगी प्रभाव कैसे चला जाता?

तब भी कहा जा सकता है कि गोरखनाथ ने अपने से पहले के शैव सम्प्रदायों को परिमार्जित और शुद्ध किया। यह तो उनके गुरु-उद्धार से ही प्रकट है। रही बौद्ध जैन तथा अन्य सम्प्रदायों की बात तो वह इसके लिए मात्र एक ऐसी भूमि बना गए थे जो सबके लिए एक धाम बन सकती थी। सब अपने-अपने भेद छोड़कर छोटे-मोटे भेदों को मिटे उस पर आकर खड़े होने लगे। इस्लाम ने इसे अधिक गति दे दी और वे सब सम्प्रदाय गोरखनाथ के नाम को अपना प्रवर्तक मानने लगे।

जीर्णोद्धार धर्मशाला पर नाथपंथियों में हनुमान और रामचन्द्र के चित्र स्वीकृत हैं। टिला में भी वैष्णवमत माना गया है। पुरी में मठ है। हनुमान दीक्षा लगाने में तथा स्वांग के दस मनकों में विष्णु के दस अवतार स्वीकृत हैं। पश्चिमी भारत के अनेक वैष्णव भक्त गोरखनाथ से अपना प्रवर्तन मानते

1 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] —[illegible]

है। गोरखपुर की समाधियों पर वैष्णव मूर्ति और चिह्नों के इंगित हैं बौद्ध प्रभाव तो स्पष्ट ही है स्वयं गोरखनाथ वज्रयानी सिद्धों में परिगणित हैं। बंगाल की धर्म पूजा करनेवाले धर्म सम्प्रदाय का इन योगियों से सम्बन्ध है। यह धर्म पूजा बौद्धों के विरल में से धर्म-नाथ की पूजा का अवशिष्ट है।

इसके अतिरिक्त सुकुमार सेन ने बंगाल की चहुआ (त्रिपुरा) लखमीचर (मनसीचर) तथा देवी नता (नित्या या नेता) का भी गोरखबानी (पृ 161) के—

आँट घोटा पूटा नरसे मूरिख करसै घाटी
अहनिसि जौबी भावे त्रिवेणी की पाणी।

से सम्बन्ध जोड़ा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाथ सम्प्रदाय का विस्तार कितना अधिक है। आगे इसके स्थान परवर्ती प्रभाव तथा ऐसे विषयों पर विचार करते समय हम इन्हें देखेंगे। यहाँ यह कहना काफी है कि नाथ सम्प्रदाय गोरखनाथ के बाद जिस वेग से फैला वह अपने योगी के जीवन काल तथा उससे पहले की सब परम्पराओं को आत्मसात् कर गया।

सिद्धि

अभी तक हमने जो कुछ देखा उससे यही ज्ञात होता है कि गोरख के बाद नाथ सम्प्रदाय बिलकुल शुद्ध और पवित्र हो गया। यह धारणा बना लेना ठीक नहीं है।

योगियों में सिद्धि का मोह कालान्तर में भी बना रहा। राजपूताना के एक प्राचीन ग्राम में अभी तक जो किंवदन्तियाँ प्राप्त हैं उनसे यही इंगित होता है कि मध्ययुग के उत्तर काल में अर्थात् मुसलमानी शासन काल में भी रसेश्वर सम्प्रदाय का सम्बन्ध मुख्यतः इन योगियों के साथ ही जोड़ा जाता है।

इस सिद्धि के प्रयोग को कबीर ने हेय समझा है। उनका कहना था कि सिद्धि प्राप्त कर लेना ही सबसे बड़ी बात नहीं है। क्योंकि यह तो काल की अवधि को बाँध देना है। पुण्य क्षय होने पर सिद्धि का भी क्षय हो सकता है।

दूसरे, स्त्री का साधना में प्रयोग। नाथ सम्प्रदाय में शिष्य ने उन स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ यह साधना चलती आई है और उसे छिपाया जाता रहा है।

तीसरे वज्रोली आदि की क्रियाओं का भी सांकेतिक रूप में वर्णन मिलता है। इस प्रकार के वर्णन से यह ही नहीं समझ लेना चाहिए जैसाकि एक स्थान पे हजारीप्रसाद जी ने किया है कि वज्रोली साधना अवश्य रही होगी। गुरुदत्त ने ऐसा ही एक उदाहरण देकर समझाया है कि उसका

1 वज्रोली विधेन् [illegible] इत्यादि।

वास्तविक अर्थ कुछ और ही है। सम्भवतः साधना में रत लोग उस श्लोक का भी कुछ और अर्थ लगाएँ, यद्यपि प्रकट रूप से देखने पर हजारीप्रसाद जी का अनुमान सुन्दर ही होता है।

गोरखनाथ रसायन विद्या के भी आविष्कारक माने जाते थे। हजारीप्रसाद के अनुसार सिद्धों का यह रसायन रसेश्वर इत्यादि तत्त्व भी नाथ सम्प्रदाय में ही अन्तर्भुक्त हो गया। मुझे लगता है यह सब गोरखनाथ के बाद की बात है। हम अभी ऊपर देख चुके हैं कि रस रसायन आदि का भी गोरखसिद्धान्तों में विरोध किया गया है। यहाँ हमें एक बात याद रखनी चाहिए।

गोरख के व्यक्तित्व की महानता को पहचानना चाहिए। इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वे स्वयं किसे कुलीन विचार समझते थे और किसे अंधविश्वास। जिसे वह परम उत्कर्ष समझते थे वह तो सहज समाधि की ऊँची और भव्य अवस्था थी। किन्तु उसके बीच में बहुत कुछ गड़बड़ी थी। शरीर का चक्र नाड़ी और रहस्य तो सरल नहीं कहा जा सकता।

तब इस अद्भुत गोरखनाथ के महत्त्व को समझ लेना उतना ही कठिन है जितना भारतीय संस्कृति को। ऊँचे-से ऊँचा विचार और नीचे-से-नीचे ढंग का अर्थ बर्बर-सा विश्वास सभी इस व्यक्ति के पीछे लगे घूमते हैं। तभी तो इसे न समझकर लोग 'गोरखधन्धा' कहते हैं।

मेरा अपना अनुमान है कि ब्राह्मण तथा ज्ञानी गोरखनाथ में राजयोग वाली महानता थी। ब्राह्मण सुनकर ब्राह्मणवाद की कल्पना करके चौंकने की आवश्यकता नहीं है। मेरा मतलब विचारों की भव्य कौलीनता से है। वह गोरखनाथ में थी। तभी वह सब-कुछ भेदकर सारे चक्रों और व्यूहों और बाधाओं को भेदकर ऊपर निकलकर स्थित हो गए। यहाँ जहाँ शिव अपने शिव रूप में मुक्त रहते हैं। इनके इस कार्य का इतना विराट् प्रभाव पड़ा कि सब इनकी ओर आकर्षित हुए। इस्लाम ने इनमें सबकी सहायता की। जो नहीं आये वे भारतीय संस्कृति को त्याग बैठे।

स्पष्ट है कि गोरख पन्थ ब्राह्मण धर्म तथा व्यवस्था के बाहर स्थित सम्प्रदायों का वैसा ही विराट् सम्मेलन है जैसाकि विभिन्न मतान्तरों का सम्मेलन हिन्दू धर्म है। गोरख पन्थ भारतीय इतिहास की वह प्रबल धारा है जिसने अनादि काल से बिखरे विश्वासों को लाकर एक में जोड़ दिया और वह महान् धारा आप्लावित होकर भारतवर्ष में अखण्ड रूप से दो शताब्दियों तक बहती रही और बाद में इधर उधर अन्तर्भुक्त होती हुई अपनी क्षीण अवस्था में अमिट-सी छाप रह गई।

रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद*

रामानुज का जन्म 1010 ई. में मद्रास प्रान्त में तिरुपती या पेरुम्बुदूर में हुआ था। तिरुपती सार्वभौम ब्राह्मणों के आराध्य श्रीनिवास का प्राचीन निवास-स्थान था। पहले सभी उच्च ब्राह्मण अछमान कहलाते थे। अयङ्गार वर्ग रामानुज का ही चलाया था। अयङ्गारों में सास का बहू के हाथ से खाना नहीं खाना इसी बात का द्योतक बताया जाता है कि 'बबमर' अर्थात् रामानुज ने अनेक बौद्धों इत्यादि को श्रीवैष्णव धर्म में स्वीकृत किया था जिसके फलस्वरूप वंश की शुद्धि में थोड़ा-सा नया तत्व आ मिला था।

हारीत वंश में उत्पन्न द्रविड़ ब्राह्मण केशव उनके पिता का नाम था तथा माता का कान्तिमती। पहले वे यादवप्रकाश काञ्चीपुरम में शंकर के अनुयायी के शिष्य थे। किन्तु वे गुरु से असहमत हुए, जिससे उन्हें पाठ छोड़ना पड़ा। श्रीरंगम के यामुनामुनि ने उन्हें अपने यहाँ बुला लिया। रामानुज वहीं पढ़कर बड़े हुए। उन्होंने वेदान्त संग्रह बादरायण के वेदान्त सूत्र तथा भगवद्गीता के भाष्य की रचना की। संन्यास लेकर वे परिव्राजक हो गए, और उन्होंने अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ किया। चोल राजा कुलोत्तुंग प्रथम (1096) ने उन्हें वैष्णव से शैव बनाना चाहा तब वे होयसल राजाओं की शरण में आकर बचे। बल्लालदेव के भाई विट्ठलदेव को उन्होंने दीक्षित किया। 1137 ई. में श्रीरंगम् में उनका देहान्त हो गया। किंवदन्तियों से यह प्रकट होता है कि उनकी भक्ति के ही कारण चमारों को कुछ मुक्ति मिली थी। मैसूर से 22 मील दूर मेलुकोटे (तामिल में तिरुनारायणपुरम्) नामक स्थान के तिरुनारायण के मन्दिर से उत्सव मूर्ति सम्पत्तिस्मीई को एक दिल्ली बादशाह उठा ले गया। रामानुज बादशाह की लड़की से उसे माँगने गए। लड़की ने कहा—स्वयं बुला लें। ब्राह्मण की भक्ति से मूर्ति आ गई, वे उसे गोद में लेकर भागे। मुसलमानों के पीछा करने पर चमारों की बस्ती में घुस गए। उस समय यह असम्भव बात थी। मुसलमानों ने उन्हें वहाँ नहीं ढूँढा। रामानुज मेलुकोटे आ गए। अब भी ब्रह्मोत्सव में तीरमुडी के दिन चमार ध्वजस्तम्भ तक जाकर प्रसाद पाते हैं। प्रसाद का भाजन व तेल चमार पहले स्वयं ले जाते हैं। कल्याणी पुष्करिणी में वे स्नान भी कर सकते हैं।

किंवदन्ती इस्लाम के विरुद्ध हिंदुओं के नये मोर्चे की ओर इंगित करती है।

भक्तिवाद भारत में रामानुज से ही प्रवर्तित नहीं हुआ था। उसके बीज अत्यन्त प्राचीन थे। दक्षिण में तीन भक्तों का काल आलवारों के पहले का

---

*विशेष अध्ययन के लिए देखिए 1 [illegible] रामानुज [illegible]। 2 [illegible]—(भारत के भक्ति संत) [illegible]। 3 [illegible] विशिष्टाद्वैत वेदान्त [illegible] मासूर।

मिलता है। अतः देवर्षि नारद जैसे पौराणिक पात्रों के साथ जिस मार्ग का जोड़ा जाता है वह अवश्य ही एक महत्त्वपूर्ण रूप से स्वीकृत प्राचीन धारा थी। यह भक्तिधारा शैव और वैष्णव रूप लेकर दक्षिण से क्यों चली या चैतन्य की एक भक्तिधारा पूर्व से क्यों नहीं—यह दोनों प्रश्न विचारणीय हैं। चैतन्य धारा की ओर ऊपर इंगित किया जा चुका है कि वह महायान का ही सहजयान में आकर परिवर्तित स्वरूप था जिसने दक्षिण के भक्तिमार्ग को उत्तर में फैलने के लिए जगह बना ली थी। इसी के एक स्वरूप में कबीर थे।

यहाँ एक बात और अजीब-सी लगती है। उत्तर में इस्लाम पहले फकीर और बाद में सामंती बनकर आया। फकीर प्रेम से व्याकुल हुए। योग ने भी उन पर प्रभाव डाला। किन्तु दक्षिण में सर्व प्रथम आने पर व्यापारी इस्लाम ने हिन्दुओं का मत परिवर्तन कराने का काम तो किया किन्तु उसने ऐसा कोई विशेष कार्य नहीं दिखाया जो सूफी मत की भाँति भारतीय विचारधारा में आप्लावित हो उठता। इसका कारण यह ही है कि व्यापारी दक्षिण में अपनी कट्टरता लेकर आया था। उनमें अधिकांश अरब थे। उत्तर में इरानी अर्थात् फ़ारसवासी आये थे। जिनका भारत से बहुत प्राचीन सम्बन्ध था।

नारद के अनुसार परमात्मा को सब कुछ अर्पित कर देना ही भक्ति है। यही शाण्डिल्य का भी मत है। उन्हें धर्म के मत से यही सार प्राप्त हुआ है।

दक्षिण से भागवत धर्म के पुनरुत्थान की इस पृष्ठभूमि को सामने रखकर रामानुज को देखना चाहिए। वेदान्त की नीरसता को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। भारतीय संस्कृति अपने हृदय के नीरस अन्तर्दाह से व्याकुल अपनी योगनिद्रा तोड़कर एकबारगी मनुष्य को ही मनुष्य के रूप में नहीं ईश्वर को भी मनुष्य के रूप में देखना चाहती थी।

रामानुज ने शूद्रों के लिए गोपुर के शिखर पर चढ़कर गुरुमंत्र सुनाया जिसको सुनकर ब्राह्मणवाद में खलबली मच गई। आगे आप के सम्प्रदाय के अपत्तिविषयक दो भेद हो गए—तेंगलई और बडगलई। दोनों में विवाह आदि होते हैं। यहां उनके दर्शन को देखने के पहले एक और सार्वक दंतकथा पर विचार कर लेना उचित है।

रामानुज ने पुरी के मन्दिर में उच्छिष्टान्न तथा वहाँ के भेद भाव इत्यादि को देखकर सोचा कि भगवान् के विग्रह को वे वहां से उठा ले जाएँगे। किन्तु एक जंगल में आँख खुली। वहां (जयमानकीस) के नाम से अब भी एक तालाब प्रसिद्ध है। इससे इंगित होता है कि इस काम का विचार करके भी असमर्थ रहे। पुरी का मन्दिर पहले वज्रयानी साधकों का था।

रामानुज ने शंकर के मायावाद को स्वीकृत नहीं किया। भक्ति को बीच में रखा। इससे अवैदिक पंचरात्र भी वैदिक साहित्य में प्रवेश पा गया।

ब्रह्म एक है। वह अनेक गुणों से पूर्ण और महानतम है। वह ईश्वर, पुरुषोत्तम है। अभाव से दूर वह अद्वितीय है। वह लीला से सृष्टि करता है। वह शून्य से सृष्टि नहीं करता। सृष्टि स्वरूप भेद है। कारण स्वरूप से वह कार्य रूप में आती है। पहले ईश्वर एक था। उसमें से अचित अंश प्रकृति और जीव निकले। ये दोनों मिथ्या नहीं हैं। ये ईश्वर के अनुरक्त और उसके शासन में हैं। कल्पान्त में जब स्थूल तत्त्व सूक्ष्म में लय होते हैं तब मात्र तमस रह जाता है। वह ब्रह्म स्वरूप है। इस रूप में तमस् पहिचाना नहीं जा सकता। वह ब्रह्म रूप दीखता है। अतः ब्रह्म एक है। वह अपनी इच्छा से अनेक हो जाता है।

आराधना के लिए ईश्वर की पाँच अवस्था हैं—

1 परा—बैकुण्ठ में नारायण रूप।

2 व्यूह—वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध।

3 विभव—नारायणावतार।

4 अन्तर्यामिन—हृदयनिवासी योग द्वारा प्राप्त।

5. अर्चा—मूर्ति।

जीव पाँच प्रकार के हैं—

1 नित्य—जन्म-मृत्यु से परे।

2. मुक्त—बंधनहीन ईश्वरसान्निध्यवान।

3 केवल—जन्म-मृत्यु बन्धन से मुक्त पवित्र।

4. मुमुक्षु।

5 बद्ध।

कर्म ज्ञान के बाद भक्ति से ईश्वर मिलता है। तीन उच्च जातियाँ ही भक्ति को अपना सकती हैं। चौथी के लिए आत्मसमर्पण प्रपत्ति है। उन्हें आचार्य अभिमान में पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है।

शंकर का मायावाद वेदान्त में बौद्ध प्रभाव है। रामानुज ने परिवर्तनशील माया को झूठा नहीं कहा।

विशिष्टाद्वैती तीन प्रमाण मानते हैं प्रत्यक्ष अनुमान तथा श्रुति।

ईश्वर ही एक अनन्त सर्वशक्तिमान और सब कुछ है। जीव चित है। अचित जड़ पदार्थ है, इन तीनों का भेद माया या अविद्या के कारण नहीं है वरन् है ही ऐसा। यह बदलता संसार ही तो परमात्मा की शक्ति का द्योतक है। विशिष्टाद्वैत में 'माया' शब्द का प्रयोग ब्रह्म की विचित्र दिखाने वाली शक्ति के लिए प्रयुक्त है। ब्रह्म में अविद्या कहाँ से आई। वह ब्रह्म को कैसे छिपा सकती है। वह सृष्टि कैसे कर सकती है अविद्या व ब्रह्म साथ-साथ नहीं रह सकते। जो दिखता है वह तो स्वगत स्वजातीय और विजातीय भेद

है। ब्रह्म की ही इच्छा से चलनेवाली सृष्टि को माया कैसे छिन्नभिन्न कर सकती है। माया तो स्वयं ब्रह्म की आज्ञा से चलनेवाली वस्तु है। प्रलय में ब्रह्म एक है तब प्रकृति 'उसमें' अव्यक्त भाव से सुप्त है। चित-अचित उस समय इतने सूक्ष्मतम स्वरूप को ग्रहण कर लेते हैं कि वे अलग से पहचाने नहीं जा सकते। यह उसकी कारण अवस्था है। कल्पान्त में सृष्टि के समय कार्य अवस्था होती है उस समय नामरूप हो सकते हैं।

विशिष्टाद्वैती ब्रह्म और ईश्वर को दो स्वरूपों में विभाजित नहीं करते। ब्रह्म को वह मात्र चेतना नहीं मानते। वह उसे शंकर के 'सत्यरूप' से अधिक ठोस मानते हैं। उसमें ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य वात्सल्य माधुर्य इत्यादि सब कुछ है। ब्रह्म ही निमित्त कारण है ब्रह्म ही उपादान कारण है। जीव ब्रह्म का दास या बालक बनकर नहीं रहता वह स्वयं ब्रह्म होता है।

इत्यलम्, रामानुज का विशिष्टाद्वैत संक्षेप में यही है। स्मरण रखना आवश्यक है कि यह धारा शंकर और गोरख के बाद की है। गोरख से सीधे रामानुज का कोई सम्पर्क नहीं। गोरख ब्राह्मणवाद से दूर थे। रामानुज के समय इस्लाम विजयी रूप में आने लगा था। दक्षिण में ईसाई और इस्लामी प्रभाव को देखा जा चुका है। यहीं भक्तिवाद का उनसे भेद स्पष्ट हो जाता है।

एक परीक्षा

अब हम आलोच्यकाल की सब प्रमुख धाराओं का विवेचन और मनन कर चुके हैं। शंकर ने कितना बड़ा काम किया था या रामानुज का क्या विशिष्ट प्रहार था इसपर विद्वानों द्वारा अधिक लिखा जा चुका है। रामानुज का कार्य तो वास्तव में हमारे आलोच्यकाल के बाद रंग लाया था। यहाँ हम उसके ऊपर विस्तार से कुछ नहीं लिखेंगे। इससे गोरखनाथ की तुलना अब आवश्यक है।

शंकर ने जिस प्रकार सबका समन्वय करने का प्रयत्न किया और इस समन्वय में बौद्ध मत की दार्शनिकता को आत्मसात् करके खोखला कर दिया उसी प्रकार गोरखनाथ ने अपने युग के पूर्ववर्तियों के सब मतों को पहले अच्छी तरह छान लिया और रस निकालकर बाकी को फोक की भाँति थूका करके फेंक दिया। विद्वानों ने नाथ सम्प्रदाय की महत्त्वपूर्ण स्थिति का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु उन्होंने यह नहीं स्पष्ट किया कि भारत में गोरखनाथ का उतना ही बड़ा काम था जितना कि शंकर का। आधुनिक विचार धारा के लोग शंकर का ब्राह्मणवाद का पुनःप्रतिष्ठाता देखकर उसे

प्रतिक्रियावादी कहेंगे। मेरा अपना विचार है कि यदि वह प्रतिक्रियावादी था तो भी उसका तत्कालीन इतिहास में विजयी होना ही अवश्यम्भावी था क्योंकि उस समय भारत में कोई नये प्रकार की प्रगतिशील विचारधारा नहीं थी। शंकर ने ब्राह्मणवाद को पुनः स्थापित किया अर्थात् असाम्य और जाति-भेदवाले सामन्तवाद की पुनः प्रतिष्ठापना की। रामानुज ने उसे हटाने का प्रयत्न किया किन्तु उसकी सफलता-असफलता का विवेचन हमारे विषय से बहुत आगे जाकर पड़ता है। तब शंकर ने एक और प्रबल प्रहार किया। एक पूर्ण दार्शनिकता स्थापित की। ब्रह्म को इतना उठाया इतना उठाया कि सबके परे कर दिया। ईश्वर माया और जीव के विषय में जो भाव उन्होंने व्यक्त किए उनमें सामाजिक व्यवहार में निर्बलता थी। गौतम ने भी उपनिषद् पर ही अपना दार्शनिक महल खड़ा किया था वह भी बह गया। शंकर का भी विद्रोह अपने आपका पालन करने में असमर्थ हो गया। बुद्ध की क्रान्ति क्षत्रियों की थी। शंकर एक संन्यासी था वह इसीलिए अधिक प्रभावित कर सका। बुद्ध को एक अशोक की आवश्यकता थी शंकर को केवल अपने बोल देने भर की। वह प्रकाण्ड मेधावी जो था।

अब दूसरी ओर गोरखनाथ को देखें गोरखनाथ ने कापालिक शाक्त कौल वीनाचार, लोकायत और, पाशुपत सबको एक चपेट में दबा लिया। इसके अतिरिक्त उनके पंथों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इससे प्रकट होता है कि वे भी जानते थे कि वे क्या कर रहे थे। भले ही वे 'हिन्दू' नहीं वरन योगियों का समुदाय परिष्कृत कर रहे थे पर कर तो परिष्कृत ही रहे थे। इतिहास में तो यह घटना क्या सरल है? गोरखनाथ ने स्त्री का योनि रूप हटा दिया। यह नहीं कि सब शाक्त इधर ही आ गए। नहीं उनकी शाक्तिकता और सिद्धि का चमत्कार समाप्त हो गया अब वे कमजोर हो गए। जो गोरख के हाथ नहीं आए वे ऐसे हो गए कि हिन्दू समाज में नहीं रह पाए। हिन्दू समाज को एक होने की आवश्यकता ऐसी हठात् क्यों आ पड़ी थी इसकी ओर ऊपर इंगित किया जा चुका है। बाकी परवर्ती प्रभाव में आ जाएगा। इसके अतिरिक्त आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर जो योग था गोरखनाथ ने उसे न केवल एक परिष्कृत और सुघड़ रूप दिया वरन वे उसे खींचकर राजयोग के निकट ले आए और हठयोग को राजयोग का अंग बना दिया। यह भी कोई सरल कार्य नहीं था। इसके अतिरिक्त गोरख के हठयोग की तालिका जो ऊपर दी गई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि वह कितनी भिन्न वस्तुओं का संग्रह है। उसने शरीर में ही देवियों को बसा लिया। देवियां जिनका सम्बन्ध चक्र पर्वों से पहले से जोड़ा जा रहा था अब आकर बराबर स्थिर हो गई। एकबारगी जैसे समस्त प्रधान आर्य सामाजिक

गोरख तो ब्राह्मण धर्म के प्रतिपादक नहीं थे वे कैसे मान जाते। वह तो योगी को वेद से ऊपर बिठाते थे अतः दोनों समीप नहीं आ सके परस्पर सामीप्य स्थापित नहीं कर सके और वैसे दोनों के जीवन बिताने के ढंग भी अलग-अलग थे। दोनों आगे जाकर मिलकर निकट आये तब वे वैरागी और योगी नहीं रहे दोनों 'हिन्दू' कहलाने लगे थे।

हमने देखा कि मतप्रवर्तन योग दर्शन और सामाजिक रूप में गोरख का अपनी परिधि में उतना ही विराट् कार्य था जितना कि अपनी परिधि में शंकराचार्य का। किन्तु गोरखनाथ की साधना हठयोग को सरल साधना की संज्ञा देने पर भी जनसाधारण तक तो आसानी से पहुँच सकने में असमर्थ थी। गोरखनाथ के कार्य में क्या निर्बलता रह गई यह उनके परिवर्ती प्रकरण में प्रकट हो जायगा यहाँ इतना कह देना काफी होगा कि गोरखनाथ का प्रयत्न अथवा व्यक्तिवादी था और उसकी गोरख जैसे महान् व्यक्तित्व के बिना यही चरम सीमा थी कि आसन लगाकर बैठ रहे। उसमें सहस्रों वर्ष एक समाधि में बैठे रहनेवाले शिव का भव्य स्वरूप हो सकता है किन्तु उसमें जगत् के कार्य-व्यापार को चलाने की शक्ति निःसन्देह नहीं थी। गोरख के बाद उनके हठयोग को ब्राह्मणों ने आसानी से इसीलिए स्वीकार भी कर लिया क्योंकि इसका सामाजिक प्रभाव पड़ सकना असम्भव-सा था। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि योगि सम्प्रदाय गोरख के बाद सफल नहीं रहा था। युगान्तर की रहस्य की भय दिखानेवाली भावना को अब व्यक्ति ने गोरख में आकर जीत लिया था।

भारतीय इतिहास-शृंखला

शंकर और गोरख में मुख्य भेद यह है कि तत्त्वार्थ रूप से ही वास्तव में एक आचार्य-मात्र था और दूसरा नाथ था। इन दोनों ने समाज की धारा की उथल-पुथल में से दो बीज निकाले थे किन्तु भारतीय इतिहास-शृंखला तो रुकनेवाली नहीं थी रामानुज ने उन्हें आगे बढ़ाया।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति की कड़ी जो टूटी हुई दिखाई देती है गोरखनाथ उसे जोड़ देते हैं। गोरखनाथ ने तत्कालीन आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर के समस्त प्रधान सम्प्रदायों का आधारभूत होकर आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर रहनेवालों के सान्निध्य का समीप आने का प्रयत्न स्पष्ट दिखाई देता है। युगान्तर ब्राह्मणवाद को चुनौती देनेवाला स्वरूप अब ब्राह्मणवाद के निकट आ गया था। वह जिसने जाति-बन्धन के विरुद्ध आवाज उठाई थी अब वह इतना व्यक्तिवादी हो चुका था कि उसका सामाजिक प्रभाव पड़ना बहुत कम हो चुका था। इस प्रकार भारतीय इतिहास के आदि काल से आने ब्राह्मणवाद के

मतों की दार्शनिकता का भेद देखा जा चुका है। भेद वास्तव में कुछ नहीं है माया अथवा शक्ति के विषय में है। शाक्त और वेदान्त का यह भेद तभी तक प्रखर था जब तक स्त्री साधना का माध्यम थी। गोरखनाथ ने इसे तो काट ही दिया उन्होंने एक और काम किया। शंकर ने ब्रह्म को बढ़ाया था वह बौद्धों से टक्कर थी। गोरख ने शरीर को बढ़ाया यह शाक्तों से टक्कर थी। शंकर को ब्रह्म का स्वरूप स्थिर करना था बिखरे विचारों को एकत्र कर गोरख को शरीर का रूप पूर्ण करना था बिखरे साधना पथों को एकत्र कर। शंकर को अनात्म से लड़ना था। उन्होंने इसीसे माया को स्वीकार कर लिया गोरख को वामपंथी साधना से लड़ना था इसीसे उन्होंने उनके पारिभाषिक शब्दों को स्वीकार किया। शंकर की माया फिर भी बड़ी ही कही गई। गोरखनाथ ने उन पारिभाषिक शब्दों को संकेत और सांवृतिक रूप में लिया। शंकर ने श्रुति का आधार लिया गोरख ने शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन का। शंकर ने ब्राह्मण को फिर से जमाया गोरखनाथ ने शिव के उसी प्राचीन नीरस रूप को और इसमें वे ब्राह्मण-विरोधी तो रहे ही उन्होंने योगी को सबसे ऊपर माना। इसके ही परिणाम से पिण्ड में ब्रह्माण्ड आ गया अब यह एक अद्भुत तुलना की अवस्था है।

शंकर ने पिण्ड ब्रह्माण्ड को झुठलाकर ब्रह्म की स्वीकृति दी। सब को झूठ कहकर उस सच्चिदानन्द परमात्मा पर ध्यान लगाने को कहा जिस पर ध्यान तो कम लोगों का लग सका किन्तु जिसकी अनिर्वचनीया शक्ति अर्थात् माया का घर-घर में प्रवेश हुआ और भारतीय जीवन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। यह एक प्रकार की समाज से गहरी पराजय थी जो बौद्धमत का प्रारम्भिक विद्रोह ब्राह्मण विचार-धारा पर लोहे से अंकित कर गया। गोरखनाथ का ब्रह्माण्ड पिण्ड में आकर सिमट गया। सारा संसार उन्होंने त्याग दिया समाधि लगाई और बैठ गए। संसार को व्यर्थ कहने का यह दूसरा तरीका था इससे भी समाज को कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता था।

व्यक्तिवाद

शंकर ने ब्राह्मण दृष्टिकोण से संसार को व्यर्थ कहा गोरख ने योगी के दृष्टिकोण से पिण्ड के अतिरिक्त सर्व को व्यर्थ कहा इसी पिण्ड में वह 'शिव' है।

शंकर ने कहा था—सब शिव है गोरखनाथ ने कहा—वह शिव भी पिण्ड में है। शताब्दियों से एकरस चले आते भारतीय समाज ने अपना रूप दो भागों में विभाजित कर लिया था दोनों निकट आना चाहते तो आ सकते थे किन्तु बीच में ब्राह्मणवाद की फांस थी। वाममार्गी शंकर तो उसे तरह दे गए, पर

साहित्य

विरोध ने एक प्रकार से उसके सामने अपनी पराजय स्वीकार की थी उसका नहीं था उत्पादन के साधनों में परिवर्तन नहीं आना ही इसके लिए उत्तरदायी था। बौद्धमत के प्रारम्भिक रूप की ही भाँति गोरख का स्वर उठा किन्तु जैसे बौद्धमत सामन्तकालीन व्यवस्था से हार गया योगि सम्प्रदाय भी सामन्ती व्यवस्था को नहीं तोड़ सका इसीलिए ब्राह्मणवाद को नहीं तोड़ सका। आगे चलकर यह विद्रोह दूसरा स्वरूप लेकर निम्न जातियों में बढ़ा पर तब तक ब्राह्मणवाद भी भक्ति के आवरण में अपने को उपयुक्त करने लगा था। उपसंहार के अन्त में दिये हुए रेखाचित्र को देखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा। पहले शिव काम भस्म करके महासमाधि में लग गए थे जब आँख खुली तो शक्ति के हाथ में गिरे। अब के शिव की समाधि लगी तो इतिहास ने उसे खुलने ही नहीं दिया पशुपात जब लौटा तो अब के योग के पंखों पर नहीं भक्ति के कंधों पर।

पूर्व तथा परवर्त्ती

पूर्ववर्त्तियों और परवर्त्तियों के बीच में गोरखनाथ एक ऐसे विश्राम स्थल बनकर मिलते हैं कि हठात् उन्हें देखकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। कारण स्पष्ट है उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। कितनी बड़ी विरासत की कितनी बड़ी विरासत गोरखनाथ ने छोड़ी थी अब यही हमारा आलोच्य विषय है। सबसे बड़ी ध्यान देने की बात है कि उत्तर में गोरख और दक्षिण में शंकर दोनों ही शिव के दो स्वरूप थे। एक परिमार्जित आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर एक सुगठित आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर। दोनों ने समाज को स्थिरता का रूप दिया था जिसमें गति नहीं प्रतीत होती।

गति इस्लाम का परिणाम थी। वह रामानुज के समय में भी वह आगे बढ़ा ले गई। शंकर विवर्त में पड़ गए, गोरख पथ में। रामानुज समाज को लेकर उठे और धारा को बहा ले गए। उन्होंने ईश्वर को मनुष्य के पास खींच लिया। गोरख के समानान्तर शंकर के बाद आनेवाले रामानुज का ही प्रभाव गोरख के भी परवर्तियों पर समान भाव से पड़ा था। इसलिए उन्हें यहाँ उल्लिखित करना आवश्यक हो गया। शंकर का व्यक्तिवाद रामानुज ने तोड़ दिया। गोरखनाथ के बाद योग प्रभाव में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ। कबीर का चरित्र एक अद्भुत समन्वय था अवश्य किन्तु उसे केवल योगमार्गी नहीं कहा जा सकता।

साहित्य

तत्कालीन कविता

जब हम हिन्दी भाषा की ओर आते हैं तब सबसे पहले हमें सिद्ध काव्य के दर्शन होते हैं। राहुलजी ने इसे सिद्ध-सामन्त युग कहा है। सामन्त तो भारतीय इतिहास में प्रायः प्रत्येक समय दिखाई देते हैं किन्तु इस काल को विशेषतया सामन्तकाल कहा जा सकता है। क्योंकि इस युग के पहले और बाद चक्रवर्ती सम्राटों का प्राधान्य है जबकि इन 500 वर्षों में अर्थात् ईसा की छठी शती से 1100 ई. तक यह छोटे-छोटे सामन्त ही भारत के विस्तृत भूखण्ड को शासित करते हुए मिलते हैं। अन्य विशेषताओं के होते हुए भी इस काल में तीन प्रमुखताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

एक—सिद्धयुगीन कविता।

दूसरी—नाथयुगीन।

तीसरी—परवर्ती नाथयुगीन कविता में से जन्म लेती तत्कालीन कविता।

यह कहना ठीक नहीं होगा कि इनके अतिरिक्त कविता के क्षेत्र ही नहीं थे। अलग-अलग धर्मावलम्बियों दरबारी कवियों तथा जनकवियों की कविता अलग-अलग विषय पर कलम को आकर्षित करती थी किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भाषा भाव और वर्णन शैली में एक अद्भुत साम्य था।

हिन्दी के इन प्रारम्भिक कवियों में सरहपा स्वयंभू देव भुसुकपा कण्हपा आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। जिन अनेक विचारधाराओं और शैलियों को पार करके हिन्दी कविता आज पहुँची है उसके प्रारम्भिक रूप में 'मध्यकालीन' अर्थात् मुसलमान शासन युग की कविता के बीज बिखरे पड़े हैं। किसी भी युग के समान तत्कालीन कविता यदि एक ओर प्रचार के दृष्टिकोण से बाँधा हुआ गीत थी तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज-व्यवस्था से व्यामोह रखने वाली प्रवृत्ति का परिचय देने वाली स्मृति थी।

एक विराट् देश के दीर्घ समय प्रसार की साहित्य रचना में से आज बहुत कम शेष है अतः इसके ऊपर जो मत-सूत्र बाँधने का उत्तरदायित्व ओढ़ना

तत्कालीन कविता काव्य और जीवन गोरखनाथ की कविता उनकी रचनाओं का परिचय सबदी पद शिष्या दरसन प्राण संकली नरवै बोध आतम बोध अभैमात्रा जोग पन्द्रह तिथि सप्तवार, मछीन्द्र गोरख बोध रोमावली ग्यान तिलक पंचमात्रा।

परिशिष्ट (क—1) (1) गोरख गणेश गुष्टि (2) ज्ञानदीप बोध (गोरख दत्त गुष्टि) (3) महादेव गोरख गुष्टि (4) सिष्ट पुराण (5) दया बोध (6) कुछ पद।

परिशिष्ट (क—2) (1) सप्तवार नवग्रह, (2) व्रत (3) पंच अग्नि (4) अष्टमुद्रा (5) चौबीस सिद्धि (6) बत्तीस लक्षण (7) अष्टचक्र, (8) रहरासि।

परिशिष्ट 2.

भाषा विशेषता और प्रामाणिकता सम्पादन टीका गोरखनाथ की हिन्दी कविता का महत्व पूर्ववर्ती समसामयिक तथा परवर्ती सिद्धों से समानता गोरख बानी में प्रयुक्त उलटबाँसियाँ आध्यात्मिक रूपक लोकोक्तियाँ गोरखनाथ के विचार शैली तथा कवित्व नाथ सम्प्रदाय की कविता नाथ सम्प्रदाय का परवर्ती सन्तों पर प्रभाव।

धारणाएँ बनीं तब समाज में स्त्री का दर्जा तो गिरा ही। सम्पत्ति और व्यवस्था के परिणामस्वरूप पुरुष ही सब-कुछ का मापदण्ड हो गया जिसने उसके अहंकार को बढ़ाया। यह अहंकार प्रायः सभी विचारधाराओं में फैला हुआ दिखाई देता है। सिद्ध-युगीन कविता में यह अहंकार अपने-आपको मिटा देने के प्रयत्न में समाज से हाथ खींचता हुआ दिखाई देता है। तभी हमें कविता में ब्राह्मणधर्म-कृत व्यवस्था का यदि एक ओर घोर विरोध दिखाई देता है तो दूसरी ओर सब से अलग देह में ही या अपने अत्यन्त निकटतम रमे रहने का आदेश भी। किन्तु जहाँ व्यक्ति को उपदेश दिया जाता था वहाँ खण्डनात्मक भावना में समाज पर सीधा प्रहार किया जाता था तब यह एक विरोधाभास सा लगता है। सरहपा ने पाखण्ड का विरोध करते हुए कहा है—

ब्रम्हणेहि म जाणन्त हि भेउ।
ऐवई पढिअउ ए चउवेउ॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त।
घरहीं बइसी अग्गि हुणन्त॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें।
अक्खि डहाविअ कडुएं धूएं॥
एक दण्डि त्रिदण्डी भअवां वेसें।
विणुआ होइअइ हंस उएसें॥
मिच्छे हीं जग वाहिअ भुल्लें।
धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें॥
अइरिएहिं उद्दूलिअ छारें।
सीस सु वाहिअ ए जडभारें॥
घर ही बइसी दीवा जाली।
कोणहिं बइसी घण्टा चाली॥
अक्खि णिवेसी आसण बन्धी।
कण्णेहिं खुसखुसाइ जण धन्धी॥
रण्डी मुण्डी अण्ण वि वेसें।
दिक्खिज्जइ दक्खिण उद्देसें॥
दीहणक्ख जइ मलिणें वेसें।
णग्गल होइ उपाडिअ केसें॥
खवणेहिं जाण विडम्बिअ वेसें।
अप्पण बाहिअ मोक्ख उवेसें॥

इसके बाद वे मन्त्र और देवता को भी व्यर्थ कह देते हैं।

पड़ता है उसका परिणाम हमारे दृष्टिकोण को अधिक विस्तृत नहीं होने देता। किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग भी दिखाई नहीं देता।

विशेष धाराएँ—इस प्रकार सिद्धयुगीन कविता हिन्दी कविता का सर्व प्रथम रूप है। देश में जैन और शैव धर्मावलम्बी अनेक तद्भव प्रधान भाषा के कवि थे। ब्राह्मण वर्ग अपने को अब भी अन्यों से ऊँचा समझने के कारण संस्कृत को ही इन बातों का माध्यम समझता था। अधिकांश राजा तथा सामन्तों के दरबारों में संस्कृत को ही अभी तक प्राधान्य मिला हुआ था किन्तु बौद्ध जैन और कुछ अन्य राजा भी हिन्दी को अपने दरबारों में स्थान देते थे। स्वयंभूदेव ध्रुव धारावर्ष के अमात्य रयडा के साथ रहते थे उसके आश्रित थे स्वयंभू की कविता में तत्कालीन सामन्त व्यवस्था का चित्रण भरा पड़ा है जैन कवियों में स्वयंभू का बहुत बड़ा स्थान है। राहुलजी का मत है कि उस युग में हिन्दी कविता के क्षेत्र मे स्वयंभू से बड़ा कोई कवि नही हुआ। विस्तार से अध्ययन करने पर तथा काव्य शैली और वर्णन की तुलना करने पर यह दावा ठीक ही प्रतीत होता है।

काव्य और जीवन

किन्तु सब-कुछ तो सामन्तीय नही था। वहाँ कविता तो बद्ध-सी थी क्योकि उसमें जनता के दुख-दर्द का वर्णन करने की स्वतन्त्रता थी ही नहीं। दूसरी ओर उस व्यवस्था से विद्रोह करनेवाले सिद्धों की कविता है। सिद्धों का विद्रोह वस्तुत ब्राह्मण धर्म की व्यवस्था से था राजनीतिक रूप से सामंतवाद से नही क्योकि वह स्वयं परलोकवाद का सहारा लेकर चल रहा था। यह कहना सर्वोचित होगा कि परलोकवाद का वह रास्ता व्यक्तिवादी था अत उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि सामाजिकता को अपने भीतर अन्तर्भूत कर लेता। सामाजिक पक्ष बाहर ही छूट गया। ऊपर देखा जा चुका है कि निर्वाण साधना में लगे हुए सिद्ध सामाजिक रूप मे जितने उलझे हुए थे और उन्हें आगे बढ़ने की कहीं भी राह तक दिखाई नहीं देती थी। इनके विद्रोह का रूप एक ओर खुलेआम स्त्री के साथ व्यभिचार-मात्र रह गया था तो दूसरी ओर यह आकाश में तन्मय हो रहे थे। बीच में इनके लिए कोई राह ही नहीं थी। योनि से आसक्ति थी क्योकि योनि मार्ग से संसार मे आना एक बड़ा पाप समझा जाता था और सिद्ध ने निर्वाण का पथ ऐसा खोजा जिसमें वह भोग में ही अपनी मुक्ति पाता था। अद्भुत विरोधाभास दिखाई देता है। देखने को बात विशेष नही जान पड़ती किन्तु इसके विचार के पीछे की उपचेतना सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न असाम्य का बहुत बड़ा परिचय देती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने जब पुरुष को ऊँचा स्थान दिया और सम्पत्ति-विषयक कुछ विशेष

धारणाएँ बनीं तब समाज में स्त्री का दर्जा तो गिरा ही। सम्पत्ति और व्यवस्था के परिणामस्वरूप पुरुष ही सब-कुछ का मापदण्ड हो गया जिसने उसके अहंकार को बढ़ाया। यह अहंकार प्रायः सभी विचारधाराओं में फँसा हुआ दिखाई देता है। सिद्ध-युगीन कविता में यह अहंकार अपने-आपको मिटा देने के प्रयत्न में समाज से हाथ खींचता हुआ दिखाई देता है। तभी हमें कविता में ब्राह्मणधर्म-कृत व्यवस्था का यदि एक ओर घोर विरोध दिखाई देता है तो दूसरी ओर सब से अलग देह में ही या अपने अत्यन्त निकटतम रमे रहने का आदेश भी। किन्तु जहाँ व्यक्ति को उपदेश दिया जाता था वहाँ खण्डनात्मक भावना में समाज पर सीधा प्रहार किया जाता था तब यह एक विरोधाभास-सा लगता है। सरहपा ने पाखण्ड का विरोध करते हुए कहा है—

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ।
एवइ पढिअउ ए चउवेउ॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त।
घरहीं बइसी अग्गि हुणन्त॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें।
अक्खि डहाविअ कडुएं धूएं॥
एक दण्डि त्रिदण्डी भअवा वेसें।
विणुआ होइअइ हंस उएसें॥
मिच्छे हीं जग वाहिअ भुल्लें।
धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें॥
अइरिएहिं उद्दूलिअ च्छारें।
सीस सु वाहिअ ए जडमारें॥
घर ही बइसी दीवा जाली।
कोणहिं बइसी घण्टा चाली॥
अक्खि णिवेसी आसण बन्धी।
कण्णेहिं खुसखुसाइ जण धन्धी॥
रण्डी मुण्डी अण्ण वि वेसें।
दिक्खिज्जइ दक्खिण उद्देसें॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें।
णग्गल होइ उपाडिअ केसें॥
खवणेहिं जाण विडम्बिउ वेसें।
अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसें॥

इसके बाद वे मन्त्र और तन्त्र को भी व्यर्थ कह देते हैं।

किन्तह दीवें किं तह णेवेज्जें ।
किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वें ॥

किन्तु अब कवि फिर अपने व्यक्ति की ओर लौट आता है और कहता है—

एत्थु सें सुरसरि जमुणा एत्थ सें गंगा साअरु
एत्थु पआग बणारसि एत्थु सं चन्द दिवाअरु ।
खेत्तु पीठ उप पीठ एत्थु मइं भमइ परिट्ठओ ।
देहा सरिसउ तित्थ मइं सुह अण्ण ण दिट्ठओ ।

केवल गुरु ही है जो सहायक है । सरहपा ने मुक्त कंठ से गुरु वंदना की है—

गुरुउवएसे अमिअ रसु धावण पीअउ जेहि ।
बहु सत्थत्थ मरुत्थलहिं तिसिए मरिअउ तेहिं ।

किन्तु वे सहज के चक्कर में जब चलते हैं तब उन्हें संसार संकुचित होता हुआ दीखता है और वे मोक्ष में ही अपना निर्वाण प्राप्त करते हैं

जाअन्त पिअन्ते सुरहिं रमन्ते

और सहज की लहरें उन्हें उस सुदूर क्षितिज में अपना मर्मर सुना देने को बाध्य कर उठती है जब वे रहस्यवाद से कह उठते हैं

खेल पास तोडहु घर अभउँ ।
ण गुणइ सो णउ दीसइ णअणें ॥
पवण बहन्ते णउ सो हल्लइ ।
जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ॥
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ ।
ण उवज्जइ णउ खअहिं पइस्सइ ॥

णउ त वाअहि गुरु कहइ णउ तं बुज्झइ सीस ।
सहजामिअ रसु सअल जगु कासु कहिज्जइ कीस ॥
सम संविती तत्तफलु सरहपाअ भणन्ति ।
जो मण गोअर पाविअइ सो परमत्थ ण होन्ति ॥

यह 'सम संविती तत्तफल' समझ लेना क्या आसान है । जिसको इसकी अपने आप संवित्ति हो उसे तो कहीं जाने ।

सरह को प्रतिनिधि बनाकर देखा कि काव्य का अब अधिक विस्तृत नहीं है । सामंतीय प्रभावक्षेत्र से जो कवि थे उनका प्रभाव क्षेत्र कहीं अधिक था । स्वयम्भू देव की रामायण अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है । किन्तु राहुलजी ने जो उद्धरण हिन्दी काव्य धारा में दिये हैं उन्हीं से पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है । यहाँ विविध धाराओं का सूक्ष्मतम रूप में पर्यवेक्षण करने के कारण हम अधिक कवियों को नहीं देख रहे हैं । स्वयम्भू देव के काव्य में ऋतु और काल

वर्णन भौगोलिक वर्णन नगर समुद्र, नदी वन माला आदि के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते हैं। उन्होंने मातृभूमि की इस प्रकार प्रशंसा की है—

> धवंत धवल धय वड पवल।
> पिय पेक्खु प्रउज्झउरि एयक्क॥
> वत्ता किर जम्मभूमि अणुणीय सम
> अण्णु मिहूसिय विलयरेहिं।
> पुरि वंदिवे सिर सयंभुव करेहिं।
> वरणम तरणम हरि हलहरेहिं॥

इनके काव्य में हमें सामन्त वैभ और युद्ध के भी वर्णन मिलते हैं। धर्म की वैसी आवश्यकता सामन्त समाज को हो सकती थी वह स्वयंभू में मिल जाती है। संसार को तुच्छ कहा गया है।

संक्षेप में इस युग की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) धार्मिक कविता जिसका मूल व्यक्तिवाद संसारोपेक्षा काया में धर्म तथा खंडन प्राधान्य है।
(2) सामन्ती कविता जिसमें उच्च समाज का वर्णन है।
(3) धर्मों का एक-दूसरे को नीचा प्रामाणित करने का प्रयत्न।
(4) सामन्तों और सिद्धों दोनों में दो दृष्टिकोणों से स्त्री को खिलौना समझना।
(5) सामन्तों में प्रबन्ध तथा चित्रकाव्य जिसमें हृस्वांत चौपाइयों का प्रयोग उतना ही है जितना दीर्घांत का।
(6) सिद्धों में गीत तत्त्व का प्राधान्य।
(7) सामन्तों में वीरकाव्य की पृष्ठभूमि।
(8) सिद्धों में योगि-सम्प्रदाय की कविता की पृष्ठभूमि।
(9) सामन्ती भाषा में अलंकारिक प्रयोग अधिक।
(10) सिद्धों में रूपक और उलटबासियाँ। सरलता और सहजोन्मुख प्रकाशन का लोगों में विस्मय फैलाने के लिए दुरूहता का बाना धारण करना।
(11) सामन्ती काव्य में प्राचीन परम्पराओं को जागृत रखने की चेष्टा।
(12) सिद्ध काव्य में पुरातन से अमोह किन्तु अभावात्मक रचनात्मक रूप हुआ।

गोरखनाथ की कविता

इस पृष्ठभूमि में गोरखनाथ की [कविता पर दृष्टिपात करने से अनेक विचित्रताएँ दिखाई देती हैं। इनमें कुछ ऐसा अपनापन है जिससे लगता है कि

इस काव्य का सामीप्य ऊपर दिए गए संस्कृत काव्य (साम्प्रदायिक) से अधिक है यद्यपि तत्कालीन भाषा काव्य से कुछ अधिक दूर नहीं।

गोरखनाथ की रचनाओं के विषय में यह सरलता से नहीं कहा जा सकता कि जो ग्रंथ उनके नाम से प्राप्त है वह सब उन्हीं की है। अधिक कठिन यह इस कारण प्रतीत होता है कि जैसे गोरखनाथ की हिन्दी में अनेक रचनाएँ कही जाती है उसी प्रकार उनकी अनेक संस्कृत में भी हैं। उनकी परस्पर तुलना करने पर अनेक भ्रम उत्पन्न होते हैं। डा. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नाम से गोरखनाथ की अनेक रचनाओं को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से योगेसुरी-बानी भाग 1 स. 1999 में प्रकाशित किया है। पुस्तक अत्यन्त विद्वत्तापूर्वक सम्पादित की गई है। किन्तु संगृहीत रचनाओं के विषय में वे जो कुछ प्रकट करनेवाले थे वह कार्य उनके असामयिक निधन से पूर्ण नहीं हो सका। अभी तक गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं पर लेखकों ने अधिक दृष्टिपात नहीं किया है।

उनकी रचनाओं का परिचय

गोरखनाथ के नाम से जो अनेक ग्रन्थ हिन्दी में कहे जाते हैं वे निम्न लिखित है—

1 हन्दीब	... गोरख संहिता	3. गोरख गीता
4 सबदी	5. पद	6. सिष्यादरसन
7 प्राण सकली	8. नरवै बोध	9 आतम बोध
10 अभैमात्रा जोग	11 पन्द्रह तिथि	12 सप्त वार
13 मछीन्द्र गोरखबोध	14 रोमावली	15 ग्यान तिलक
16 ग्यान चौतीसा	17 पंचमात्रा	18 गोरष गणेस गोष्टी
19 गोरखदत्त गोष्टी (ग्यान दीप बोध)		20 महादेव गोरख गुष्टि
21 सिष्ट पुराण	22 दया बोध	23. जाती भौंरावली (छन्द गोरख)
4 नवग्रह	25 नवरात्र	26. अष्ट पारछया
27 रहरास	28 ग्यान माला	29 आत्माबोध
30 व्रत	31 निरंजन पुराण	3... गोरख बचन
33 इन्द्री देवता	34 मूल गर्भावली	35 खाणी बाणी
36. गोरख सत	37 अष्ट मुद्रा	38 चौबीस सिधि
39 पडछरी	40 पंच अगिन	41 अष्ट चक्र,
42 अवलिसिलूक और	43 काफिर बोध।	

तथा योगियों की बानियाँ डा. बड़थ्वाल को अनेक स्रोतों से मिली हैं जो इस प्रकार है—

संख्या	प्रति	स्थान	व्यक्ति या स्रोत	काल	विशेषता
1	क	पौड़ी गढ़वाल	पं तारादत्त गैरोला को जयपुर से मिली थी	पुष्पिका नष्ट हो जाने से काल अनिश्चित यदि रज्जब से माना जाय तो सम्वत् 1715	इसके 4 विभाग हैं दादू कबीर, नामदेव रैदास। अन्तिम भाग में गोरखनाथ की बानियाँ हैं जो रज्जब द्वारा संग्रहीत हैं
2.	ख	जोधपुर दरबार पुस्तकालय	पं विश्वेश्वर नाथ रेऊ	अज्ञात	केवल सबदियाँ
3.	ग	जोधपुर	श्री गजराज ओझा		"
4.	घ		सुमकरण चारण	सं 16..5	बृहत् ग्रंथ निरंजनी साधु द्वारा संग्रहीत
5.	ङ	पटियाला राज्य	मन्दिर बाबा हरिदास	सं 1704	गंगाराम निरंजनी वैष्णव ने स्वामी रूपदास के पठनार्थ जयपुर में लिखा था
6.	च	जयपुर	पुरोहित हरिनारायण बी ए	सं 1715 शाके 1580	
7	छ			सं 1741	
8.	ज			स 1855	
0	झ	—	—	—	नकल है मूल अप्राप्त। सेवादास की कुछ रचनाएँ गोरखनाथ की मिली हैं प्रति इसी से महत्त्वपूर्ण है।
10.	ञ	काशी	सरस्वती भवन	अज्ञात	योगियों की रचनाओं के एक संस्कृत अनुवाद की हस्तलिखित प्रति

डा. बड़थ्वाल ने एक सरणी देकर रचनाओं और प्रतियों का मिलान किया है और (ख) और (क) को प्रामाणिक मानकर उन्होंने सम्पादन किया है। उन्होंने उनकी सब रचनाओं को नहीं लिया। रामानन्द की लिखी हुई एक 'ग्यान तिलक' नामक पुस्तक है। गोरख की भी 'ग्यान तिलक' मिलती है। इस साम्य को देखकर डा. बड़थ्वाल ने यह तथ्य प्रकट किया है कि रामानन्द के ऊपर नाथ सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव था। मेरा विचार है कि डा. बड़थ्वाल ने एकांगी रूप से निर्णय किया है। यह आवश्यक नहीं है कि रामानन्द का 'ग्यान तिलक' उन्हीं का हो परवर्ती हो सकता है। परवर्ती युग में संत परम्परा में राम सम्प्रदाय और नाथ सम्प्रदाय एक ही से अन्तर्भुक्त हुए थे। यह उपसंहार के अन्त में दी-हुई तालिका से स्पष्ट हो जाएगा।

'सिष्ट पुरान' 'दया बोध' निरंजनी सेवा दास की मानी गई हैं। प्रतिलिपिकार ने 'गोरख गणेश गोष्ठी' 'महादेव गोरख गुष्टि' और 'निरंजन पुराण' को भी सेवादास की रचनाएं बताया है। संदिग्ध होने के कारण उन्होंने उसे परिशिष्ट (क) में रखा है।

'नाथी भौरावली' गोरख की स्तुति है अतः उनकी नहीं हो सकती।

'ग्रमलसिलूक' और 'काफिर बोध' रतननाथ कृत हैं। काफिर बोध कबीर का भी माना जाता है। अतः इस भाग में वे रचनाएं नहीं रखी गई।

'मूल गर्भावली' 'खाणी वाणी' पौराणिक रचनाएं होने के कारण छोड़ दी गई हैं।

गोरख वचन' भाषा की दृष्टि से आधुनिक होने के कारण छोड़ दिया गया है।

'गोरख सत' संस्कृत गोरख शतक का हिन्दी अनुवाद है और गोरख कृत नहीं है।

'सबदी' में भी कुछ रचनाएं अन्य कवियों की हैं पर निकाली नहीं गई। क्योंकि कौन जाने उनके आगे-पीछे की भी कुछ उन्हीं की रचनाएं न हों।

प्रतियों के मिलान करने पर ज्ञात होता है कि आपस में बहुत कम समता है।

हमारी सूची के प्रथम तीन ग्रन्थ (1) हठयोग (2) गोरख संहिता (3) गोरख गीता संस्कृत के ग्रन्थ हैं। अतः इन पर विचार करना यहाँ अनावश्यक है। इस प्रकार डा. बड़थ्वाल ने गोरखबानी में निम्नलिखित रचनाओं का इस क्रम से सम्पादित किया है

गोरखबानी—1 सबदी 2. पद (राग रामिनी) 3 सिष्या दरसन

4. प्राण सांकली 5 नरवै बोध 6 आतम बोध 7 अभैमात्रा जोग 8. पन्द्रह तिथि 9 सप्तवार 10 मछीन्द्र गोरख बोध 11 रोमावली 12 ग्यान तिलक 13 पंच मात्रा।

परिशिष्ट (1)—(क—1) गोरख गणेश गुष्टि। (क—) ज्ञान दीप बोध (गोरखदत्त गुष्टि)। (क—3) महादेव गोरख गुष्टि। (क—4) सिस्ट पराण। (क—5) दया बोध। (क—6) कुछ पद।

परिशिष्ट (2)—(ख—1) सप्तवार नवग्रह। (ख—2) व्रत। (ख—3) पंचअग्नि। (ख—4) अष्टमुद्रा। (ख—5) चौबीस सिद्धि। (ख—6) बत्तीस लछन। (ख—7) अष्ट चक्र। (ख—8) रहरासि।

परिशिष्ट (3)

'घ' प्रति के परिशेष में गोरखनाथ के 37 पदों का सुन्दर तिलक किसी निरंजनी साधु-कृत प्रतीत होता है। डा. बड़थ्वाल ने पदों की प्रथम पंक्ति देकर तिलक दिए हैं। साधु का नाम नहीं है किन्तु क्योंकि 'घ' प्रति में निरंजनी ग्रन्थ अधिक हैं वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह किसी निरंजनी साधु का ही परिश्रम है।

गोरखनाथ की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

सबदी—डा. बड़थ्वाल ने गोरखबानी में उनकी 273 सबदियाँ दी हैं। 100 के बाद (क) (ख) और (ग) की अधिक सबदियाँ हैं। केवल (घ) प्रति की अधिक सबदियाँ और दी हैं जिन्हें मिलाकर कुल संख्या 275 होती है। आरम्भ की कुछ सबदियाँ निम्नलिखित हैं —

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर में बालक बोलै ताका नांव धरहुगे कैसा।

अदेषि देषिबा देषि बिचारिबा अदिसिटि राषिबा चीया।
पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढ़ाइबा तहां बिमल-बिमल जल पीया।

इहां ही आछै इहां ही अलोप।
इहां ही रचिले तीनि त्रिलोक।
आछै संगे रहै जूवा।
ता कारणि अनन्त सिधा जोगेश्वर हूवा।
वेद कतेब न खाणी बाणी।
सब ढंकी तलि आणी॥

गगन[1] सिषर महि सबद प्रकास्या ।
तँह बूझै अलष बिनांणी ॥

सबदी का शेष योगी के लिए जितनी आवश्यक बातें हैं सब पर छाया हुआ है। किन्तु जन-समाज के लिए वह नहीं है, स्पष्ट ही कहा है —

कोई बादी कोई बिबादी जोगी कौ बाद न करनां ।
अठसठि तीरथ समंदि समावै यूं जोगी कौ गुरमुषि जरनां ॥

जोगी वही है जो

अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै ।
तजै अल्यंगन काटै माया ताका बिष्णु पषालै पाया ।
अजपा जपै सुंनि मन धरै पाँचौं इन्द्री निग्रह करै ।
ब्रह्म अगनि मैं होमै काया तास महादेव बंदै पाया ।

और योगी पूछता है

स्वामी बन षंडि जाउं तो षुध्या ब्यापै
नग्र जाउं त माया
भरि भरि षाउं त बिंद बियापै
क्यों सीझति जल ब्यंद की काया ।

और फिर उत्तर मिलता है —

षाये न षाइबा भूषे न मरिबा
अहनिसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेवं ।
हठ न करिबा पड्या न रहिबा
यूं बोल्या गोरष देवं ॥

क्योंकि

उठंत पवनां रवी तपंमा बैठंत पवनां चंदं ।
दहूं निरंतरि जोगी बिमैंधं तिह बसे तहां ब्यंदं ॥

---

1 गगन सिषर महि (ग) पाठ ठीक जँचता है अर्थात् गगन शिखर (सहस्रार) में अनाहद शब्द को प्रकाशित करता है। [illegible] के ऊपर तो शब्द सुनाई देना बन्द हो जाता है [illegible] के विषय में यही अच्छा समझा गया है। पर [illegible] के सम्पादित पाठ का अर्थ [illegible] इस प्रकार किया है सहस्रार (गगन शिखर) में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है। मेरे विचार में गगन शिखर और गगन मण्डल को एक ही नहीं समझना चाहिए। योगी सम्प्रदाय के अनुसार शब्द भी लय ही चरम अनुभूति है। सहस्रार में शब्द सुनाई नहीं देता वह अवस्था पूर्णानन्द है उसके परे है। [illegible] को कहा गया है।

और योग का बुरा अर्थ लगानेवालों को देखकर योगी कह उठता है —

> केता आवै केता जाई केता मांगै केता खाई।
> केता रूप बिरष तल रहै गोरख अनभै कासौं कहै॥
> बदंत गोरखनाथ कहि यू सापी
> घटि घटि दीपक (बले) पणि पसू न (पेषै) आंषी।
> पढि देख पंडिता रहि देषि सार,
> आपणीं करणीं उतरिबा पारं॥

योगी को भेद न करना चाहिए, अमृत वाणी बोलनी चाहिए। यदि कोई आग हो जाए तो योगी को पानी हो जाना चाहिए।

> उन्मनि रहिबा भेद न कहिबा
> पीयबा नींभर पांणीं।
> लंका छाडि पलंका जाइबा
> तब गुरमुष लेबा बांणीं॥

अहंकार को नष्ट करो। पाँचों इन्द्रियों का मान मर्दन करो और योगी विश्वास से कहता है —

> पाया लो भल पाया लो सबद थान सहेतीबीति।
> मन सहेला बीसरा जामा तब वर्ष भई परतीत॥
> अरधन्त कवल उरधन्त मध्ये प्रांण पुरिस का बासा।
> हावस हंसा पलटि चलैगा तब ही जोति प्रकासा॥
> आसण बैसिबा पवन निरोधिबा थान मान सब धन्धा।
> बदन्त गोरखनाथ आतमा बिचारन्त ज्यूं जल दीसै चन्दा॥

ज्ञान आवश्यक तो है किन्तु क्या वह आत्मानुभूति का स्थान ले सकता है? नहीं वह तो योगी की अपनी प्राप्ति है तभी —

> पंडित ग्यान मरौ क्या झपि।
> घीरै लेहु परमपद बूझि।
> आसण पवन उपाइ करैं।
> निस दिन आरम्भ पचि-पचि मरैं।

अब योगी कुण्डलिनी का आवाहन करता है —

> आवो देवी बैसो। द्वादश अंगुल पैसो।
> देखत देखत होइ मुद। तब बलम मरल का बाद बुद॥

योगी के लिए खाने-पीने के विशेष प्रतिरोध आवश्यक हैं क्योंकि देह के भीतर जो कुछ पहुँचता है उसी पर उसका स्वभाव बहुत कुछ निर्भर रहता है। यह गोरखनाथ का अपने पूर्ववर्तियों से एक बहुत बड़ा भेद था। वे कहते हैं

> अवधू मांस भषंत दया धरम का नास ।
> मद पीवत तहां प्राण निरास ।
> भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवन्त ।
> जम दरबारी ते प्राणि रोवन्त ।

> भाखिबा पंथा के सीबा कंथा भारिबा ध्यान के कथिबा ग्यान ।
> एकाएकी सिध कै संग बदन्त गोरखनाथ पूता न होयसि मन भंग ।।

क्योंकि

> एकसी बीर दूसरी बीर तीसरी षटपट चौथो उपाध ।
> दस पंच तहाँ बाद बिवाद ।।

यदि योगी जीवनमुक्त है मरजीवा है तो

> जीवता जोगी अमीरस पीवता अहनिस अषंडित धारं ।
> दिष्टि मधे अदिष्टि बिचारिबा ऐसा अगम अपारं ।।

और वह विश्वास फिर फूट पड़ता है

> जिनि जाण्या तिनि बरा पहचाण्या
> था भटक स्यूं भी भाई ।
> गोरष कहै घमै कानां सुणता
> सो माण्यां देख्यां रे भाई ।

पद—पदों का क्षेत्र स्वभाव से ही अधिक विकसित हो सकता है क्योंकि इसमें अधिक कहने की गुंजायश होती है। परवर्ती काल में जो पदों की भरमार दिखाई देती है उसे भक्ति काव्य की देन समझकर वास्तव में नाथपंथियों या इनसे भी पूर्व सिद्धयुगीन कवियों की देन समझना चाहिए। लोक भाषा में जनता के अपने गीतों का प्रचलन इनकी पृष्ठभूमि प्रतीत होता है। पदों के लिए राग और संगीत आवश्यक है। गोरखनाथ के कवित्व पर हम आगे प्रकाश डालेंगे। यहाँ केवल उनके पदों का परिचय दिया जाता है।

जिस प्रकार वेदव्यास ने ऊर्ध्वबाहु पुकारकर संसार से कहा था उसी प्रकार गोरखनाथ भी संसार को सुनाते हैं —

चारि पहर आलिंगन निद्रा
संसार जाइ विषिया बाही।
ऊभी बाँह गोरखनाथ पुकारै
मूल न हारौ म्हारा भाई। (टेक)
अमावस पड़िवा मन घट पूँनों पूँमा है अंधमारे।
मरतड़ा पूँणता ब्राह्मण भेष बिचारै, स्वामी खोप निवारै।
पड़वा आगम्या बीजसि आन्या पाचौं सेवा पासी।
आठमि चौदसि व्रत एकादसी अंमि न लावै बासी।

अनेक पदों में गोरख और मछिंद्र का सम्बन्ध प्रकट होता है।

गुरुदेव स्वंम देव सरीर भीतरिए।
आत्मा उतिम देव ताही को न जाणैं भेव।
आन देव पूजि-पूजि हमहिं मरिए॥
नवे द्वारे नवे नाथ
त्रिबेणी अर्धनाथ
दसवें द्वारि केदारं।
बोध बुधति सार
तो भी तिरिये पार
कथंत गोरखनाथ बिचारं।

अजपा जाप की स्तुति करके आगे योगी कहता है —

रमि रमिता सौ गहि चौपानं काहे भूलत हौ अभिमानं।
धरन गगन बिच नहीं अंतरा केवल मुक्ति मैदानं। (टेक)
अंतरि एक सौ परचा हूवा तब अनन्त एक मैं समाया॥
अहरिण नाद नै ब्यंद हथौड़ा रवि ससि षाला पवनं।
मूल चापि दिढ़ आसणि बैठा तब मिटि गया आवागमनं।
सहज पलांण पवन करि घोड़ा लय लगाम चित चबका।
चेतनि असवार ग्यान गुरु करि, और तजौ सब ढबका॥
तिल कै नाके त्रिभवन सांध्या कीया भाव बिधाता।
सो तौ फिरै आपण ही हूवा जाकौं ढूँढ्त जाता॥
आस्ति कहूँ तौ कोई न पतीजै बिन आस्ति (अनन्त शिव) क्यूँ सीधा।
गोरष बोलै सुणौ मछिंद्र हीरै हीरा बीधा॥

इस प्रकार जीवात्मा का परमात्मा में मिला देना ही चरम उद्देश्य है।

---

1 (क) [illegible] ठीक ज्ञात होता है त्रिवेणी में [illegible]।

गुरु के बिना योग का कोई कार्य नहीं सधता अतएव गुरु की नितान्त आवश्यकता है।

गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला
गुर बिन ग्यान न पायला रे भाईला ॥ (टेक)
दूधैं धोया कोइला उजला न होइला।
कागा कंठै पहुप माल हंसला न भैला ॥
अभाजैली रोटली कागा जै जाइला।
पूछो म्हारा गुर नै कहाँ बैसि षाइला ॥
उत्तर दिसि आविला पछिम दिसि जाइला।
पूछो म्हारा सत् गुर नै तिहां बैसि षाइला ॥

और तभी पण्डितों को वे फिर फटकार सुनाते हैं

पण्डित ग्यान मरम न जांणीं
भरम भोरा भावदू सोई। (टेक)

और प्रश्न उठता है कि फिर मुझ किससे कम विपक्षी तो दिखाई नहीं देता।

कासौं झूझौं अवधू राइ विपष न दीसै कोई।
जाहीं मन झूझी रे आत्मा राम सोई।
आपण ही मछ कछ आपण ही जाल।
आपण ही धीवर आपण ही काल।
आपण ही स्यंध बाघ आपण ही गाइ
आपण ही मारीला आपण ही षाइ।
आपण ही हाटी फलिका आपण ही बंध
आपण ही मुगध आपण ही अंध ॥

इसलिए मूलाधार में स्थित सूर्य को बांधो जैसे

बांधी बांधी अहरा पीझो पीझो नीर
करि अमरावर होइ सरीर।

इस अमरावर शरीर के ज्ञान से योगी उपदेश देता है कि निर्गुण गुणहीन स्त्री को त्यागो—

निरगुण नारी सूं नेह करैला।
अबकै रैणि बिहाणी भी ॥ (टेक)
हाल न मूल पत्र नहिं छाया।
बिण जल सिचुला सींचै भी।
बिण ही सढीया मदला बाजै।
अगम निगम लोका रीझै भी ॥

यह संसार तेरा ही गढ़ा हुआ है तुझे किसी ने नहीं गढ़ा।

दस औतार औतिरिया तिरीया मैं पछिराम न हाई।
कमाई अपणी उनहूँ पाई करता और कोई॥
तूँ पुरष बड़ा पुरष त्रिषमी का
सूरति मूरति सारा।
अकणी मुख्या न नैनां देख्या
तेरा अकथी हारा।
तूँ तो आप आप तें हूवा
तूँ देख्या उजियारा।
गोरष कहै गुरु की सबदी
तूँ ही अकणी हारा॥

नाथ निरंजन परब्रह्म की आरती के लिए सजते हैं और अद्‌भुत दृश्य है—
नाथ निरंजन आरती साजै।
गुरु के सबदू झालरि बाजै॥
अनहद नाद गगन में गाजै परम जोति तहाँ आप बिराजै।
दीपक जोति अषंडत बाती परम जोति जगै दिन राती।
सकल भवन उजियारा होई देव निरंजन और न कोई।
अनत कला जाके पार न पावै संष मृदंग धुनि बैनि बजावै।
स्वाति बूँद ले कलस थपाऊं, निरति सुरति ले पहुप चढ़ाऊं।
निज तत नांव अमूरति मूरति सब देवां सिरि उदबुदि सूरति।
आदिनाथ नाती मछन्द्र ना पूता आरती करै गोरष अवधूता॥

यही चरम सत्य है इस अगम की आरती उतारना योगी की पूर्ण अनुभूति को प्रकाशित करता है। पदों की संख्या 62 है और उनका तथ्य वही एकांगी और साम्प्रदायिक विवरण है जिसमें अधिक क्षेत्र नहीं रह पाता।

सिष्या दरसन—सिष्या दरसन अर्थात् शिक्षा-दर्शन में सूत्र-जैसे वाक्यों से प्रारम्भ है।

ॐ अविगत उतपनते क उतपनते आकास।
बीच में कहा गया है।

अजर कथा नहीं बाद विवाद। अनाहद सींगी बाजवा नाद।
सन्तोष तिलक तहाँ पर पुमाण। ब्रह्म कवल टोपी पहिरावा जाण।
मन वैराग मुद्रा जोड़ करै। बदत गोरष ए तत अनूपं॥

1 (क) का रूपान्तर ठीक लगता है

नव द्वारों पर अधिकार करके ब्रह्माण्ड में प्रवेश पाकर अलख रस की सेवा करनी चाहिए। यहीं ही

बदंत गोरष अविगत आपं मिटै नहीं तहां पुन न पापं।
सुनि ध्यान सोलह कला संपूरण माला आपण स्वंभूमी गोरष बाला ॥
(इती श्री गोरख सिष्या पदति पुरुषे)

प्राण संकली—प्राण संकली अर्थात् प्राण की शृंखला। प्राण संकली नामक की भी मिलती है जिसके विषय में भी यह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं की बनाई हुई है।

पहले गुरु की वंदना है —

प्रथमे प्रणऊं गुर के पाया। जिन मोहि आत्म ब्रह्म लषाया ॥
सतगुरु सबद कह्या तैं बूझ्या। त्रिहू लोक दीपक मनि सूझ्या ॥

शरीर में ही निर्वाण पद की खोज करनी चाहिए रूपकों में देह दुर्ग का समझाया गया है। नाड़ियों का सविस्तार विवरण है।

षट्चक्र, कुण्डलिनी और गुरु तथा नाद बिन्दु, शब्द तथा सहस्रदल कमल का वर्णन करके कहते हैं —

नाद रह्या सरवंग पूरि।
गगन मंडल में खोजो अगम् वस्त अगोचर मूर।

इस नगर में (काया में) अनेक गलियाँ हैं। राजद्वार पर मार्ग रोके एक सुन्दरी खड़ी है। यही कुण्डलिनी है। यहाँ

पंच महारिषि यहां कुठवाल तिनकी पूजा महा भुम्यारि।
इनहि मारै लै लागी पंथा सुंदर जीतैं लोक सौं कंथा।
इला प्यंगुला सुषमनां नाड़ी छूटै भ्रम मिलै ब्रह्मचारी।
पंच तत्त बिष अमृत बसई, गुरु बचने अमृत भया संचई।
(इति श्री गोरखनाथ विरचित प्राण संकली शरीर विचारण)

नरवै बोध—नरवै बोध अर्थात् राजा का बोध (ज्ञान)। योगी कहता है —

सुणी हो नरवै सुधि बुधि का विचार।
पंचम तत्त मै उतपनां सकल संसार ॥
पहलै आरंभ घट परचा करी निसपती।
नरवै बोध कथत श्री गोरष जती ॥

1. निष्पत्ति।

चित का संयम करो। स्तंभन मोहन वशीकरण छोड़ो। और उपदेश का अन्त इस प्रकार होता है—

मारी सारी श्रींगुरी।
सींग्यूं सत गुर पर हरी।
श्रारंभ घट परचै निसपती।
नरवै बोध कथंत श्री गोरष जती।
(इति श्री गोरषनाथ विरंचित नरवै बोध ग्रन्थ)

आत्म बोध—आत्म बोध में प्रारम्भ आसन से होता है —

ॐ आसण करि पवन आसण बधि।
पिछमें आसण पवना बंधि।
मन मुद्रा नावै ताली।
गगन सिषर मैं होइ उजाली॥

फिर शक्ति को ऊपर उठाने का वर्णन है। अभ्यन्तर की अग्नि बसावे। पवन साध लेने से अनाहृत नाद सुनाई देता है। जड़ी-बूटी अमर नहीं कर सकती है। और न

सीनें रूपै सीधै काया तो कत राजा छांडै राज।
पसुवन होइ वर्ष नहीं बाप तो पसुवा मोषि वयूं जात।

और कही नहीं ये लोग जो —

रिधि सबेसैं रीतांरथीं मरै।
गुरु न कीजैं गुरिय मरै।
रीसांणी आवै वैसैं फूलि।
गुरु की वाचा गया पै भूलि॥

'अकल' का अनुभव जो 'सकल' जैसा समझता है वही सब कुछ है।

तरब निरंतर भरि पूरि रहिया।
आत्मा बोध सपूरण कहिया।
पाचे न पूते मिले न काया।
आत्म बोध कथंत श्री गोरषराया॥

अभ मात्रा बोध—अभै मात्रा योग मूलबद्ध उपदेश है जिनमें नाथ योगी के बाह्य का आभ्यन्तर प्रतीक दिखाया गया है। जैसे ॐ अकल पंच सकलि का मारग पवन गुटिका मंजम कोपीन 'शीरज दंड' अतीत देवता' गुरु पवन अमीकम।

(ख) के अन्त में है —

सार माया तत सार।
अलख निरंजन निराकार।
(कथंत श्री गोरषनाथ जोगी)

पन्द्रह तिथि—पन्द्रह तिथियों को योगी को प्रतिदिन क्या-क्या करने से अभय से मुक्ति हो सकती है। यही इसमें वर्णित है। प्रारम्भ है —

बंदं[1] गोरष एकंकार।
पन्द्रह तिथि का करहु बिचार।। (टेक)
अमावस दिन थापना होइ।
आतम परचै मरै न कोइ।।

बाहर-भीतर का एकाकार, पवनी स्नान अर्थात् नाडी मिलन चित चंचलता स्थिर करना पंचतत्त्व की सिद्धि षटचक्र बिचार, मूलबन्ध इत्यादि के वर्णन के अनन्तर

पाटमि घण्ट भेरी नव नाद।
अनंत सिधा सौं मिलै संवाद।

है। तदनन्तर संयम अमनोपम चन्द्र सूर्य को सम करके सद्गुरु बोध और मन स्थिर कर लेना चाहिए।

पन्द्रह तिथि कला की संधि
अछीह प्रसादै थिर भया बंध।
भया थिर तब भाजी भीर
अनंत सिधा श्री गोरष पीर।

सप्तवार—सप्तवार में सातों दिन का कार्यक्रम है। पवन दृढ करना शून्य को धारण करना अम्बर भरना माया बांधना चन्द्र सूर्य सम करना शिवशक्ति मिलन इन्द्रिय निग्रह शरीर शोधन इत्यादि दिन के अनुसार बताये गए हैं।

आदित सोधी आवागवन। घट में राखी दिढ करि पवन।।

अन्त में

सातों आत्मा एकै वास। काया भीतर बैठै पास।
च्यंति प्रापती परचा भया। सप्त वार श्री गोरष कह्या।।

1 (क) में नहीं है।

मछीन्द्र गोरख बोध

मछीन्द्र गोरख बोध में गुरु शिष्य संवाद है। गोरख पूछते हैं
गोरखोवाच स्वामी तुम्हें गुरु गुसाईं अम्हें जु सिष।

(सबदि एक पूछिबा)

दया करि कहिबा मनहिं न करिबा रोस
आरंभि चेला कैसे रहै। सतगुरु होइ सो बूझ्या कहै।

सन् 1937 में डा. मोहनसिंह ने गोरख बोध का अनुवाद अपनी पुस्तक में छपवाया था। यह अनुवाद उन्होंने पट्टी की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया था।

प्रश्नों और उत्तरों की झड़ी होने पर भी प्रस्तुत ग्रन्थ अत्यन्त महत्वोत्पादक और सुन्दर भी है। अवधूत कहाँ रहे क्या करे, क्या खाए इत्यादि योग के गहन प्रश्न किये गए हैं। प्रत्येक का विवरण देने का अर्थ समस्त पुस्तक को फिर से लिख जाने के समान होगा। लय योग पर बहुत बल दिया गया है।

सहज सुन्न पवन प्राण वाणी तथा प्रत्येक योग सम्प्रदाय में प्रयुक्त वस्तु का इसमें उल्लेख है। गोरख बोध एक संक्षिप्त शब्द कोष के समान है।

गोरख—स्वामी कवं उतपन्नों नाद कवंनाद सम्भवते।
कौंण ले आपते नादं कवं नादं विलीयते॥

इसके पूर्व ही गोरख ने पूछा था

स्वामी कहाँ बसै चंद कहाँ बसै सूर।
कहाँ बसै नाद बिंद का मूर।
कहाँ होइ हंसा पीवैं पाणी
समटी सक्ति आप घरि आणी।

मछिन्द्र ने कहा—

अवधू उरधै बसै चंद अरधै बसै सूर
हिरदै बसै नाद बिंद का मूर।
गगन चढि हंसा पीवैं पाणी।
समटी सक्ति आप घर आणी।

1 प्रति (ब) में सक्ति के स्थान पर सुरति है। यही उचित जान पड़ता है क्योंकि जब हंस ने गगन में चढ़कर पानी पी लिया तब मन वापस आ गया तब सुरति ने अपना वास्तविक घर पा लिया। सक्ति अर्थात् कुण्डलिनी कैसे लौट आई।

किन्तु गुरदेव ने स्पष्ट कहा है कि शक्ति कुण्डलिनी का एक छोर सदैव मूल स्थान में ही रहता है। प्रश्न का अभी उत्तर नहीं दिया जा सका है।

अब तथा प्रश्न सुनकर मछिन्द्र ने कहा—

अवधू ओंकार उतपत ते नाद नाद सुंनि समिमवते ।
सबद से आपते नाद नाद निरंजन विलीयते ।।

गोरख —

स्वामी नादेन नादिबा बिंदेन बिंदबा पवनेन आइबा जाबा ।
नाद बिंद दोऊ न होइगा तब प्रांन का कहाँ होइबा बासा ।।

मछिन्द्र —

अवधू नादे भी नादिबा बिंदे भी बिंदबा
गगने भी आइबा जाबा नाद बिंद दोऊ न होइबा ।
तब प्रान का निरन्तर होइबा बासा ।।

समाधि उपाधि सुषुप्ति जागृति मनसा आहार इत्यादि पर प्रश्न करते हुए गोरख पूछते हैं :—

स्वामी कौण सी जोगी कैसे रहै । कौण सी भोगी कैसे लहै ।।
सुष में कैसे उपजै पीर । तामैं कौन बचावे धीर ।।

मछिन्द्र —

अवधू मन जोगी जै उनमनि रहै । उपजै महारस तब सुष लहै ।।
रस ही माहिं अपर्बल पीर । सतगुर सबद बंधावै धीर ।।

और गोरख प्रश्न करते हैं कि स्वामी चक्रनाम कहै । कहाँ कंध स्थिर होता है कहाँ अगोचर बंध हंस निरोध मन प्रमोध स्वाद प्राप्ति तथा कहाँ समाधि होती है ? उत्तर में क्रम से यह चक्र है—मूल चक्र गुदा चक्र, मणि चक्र, अनाहद चक्र, विशुद्ध चक्र तथा आग्या चक्र। और इसको जान कर गोरख अन्त में कहते हैं —

ए षट चक्र का जाणै भेव ।
सो आपे करता आपै देव ।
मन पवन साधै ते जोगी ।
जुरा पलटै काया होइ निरोगी ।।

यह ग्रन्थ में गोरख सारांश निकालकर सुनाते हैं । डा॰ मोहनसिंह ने 'पट्टी' के पाठ को अधिक महत्त्व दिया है जिसके अनुसार मूल गुदा नाभि हिरदै कंठ लिलाट (अर्थात् ललाट) चक्र हैं, इससे कोई भेद नहीं पड़ता । चक्रों का स्थान पहले दी हुई चक्र-तालिका से एक-सा ही पड़ता है ।

रोमावली

रोमावली में प्रश्नों का उत्तर है। कहीं कहीं 'कौण कौण' करके प्रश्न पूछा गया है। इसमें गद्य का प्रभाव है। बहुत न कहा जाय तो सम्भवतः यह अत्युक्ति न होगी कि हिन्दी मे यह मुक्त छंद का पहला प्रयोग है

सत पिता रज माता तम करि गाजी पाई,
लोहू मास तुचा नाड़ी ये चारि धात माता की बोलिये
मींजा हाड़ गूद ये तीन धात पिता की बोलिये
ए सप्त धात का सरीर बोलिये।

प्रश्न है—हिरद पीर जिव पीर ए बोलिये घट भीतरि।
ते कौण कौण

उत्तर—हिरद पीर बोलिये मन जिव पीर बोलिये पवन।

फिर आगे प्रश्न है —

चारी पीर बोलिये घट भीतरि। ते कौण कौण।

उत्तर है—मन मछिन्द्रनाथ पवन ईसरनाथ चेतना चौरंगीनाथ
ग्यान श्री गोरषनाथ।

इसके अनन्तर स्वेदज अंडज इत्यादि की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। शरीर के भीतर क्या है प्रश्न करने पर उत्तर मिलता है —

सेतरज बोलिये हाड जेरज[1] बोलिये मींजा अडरज बोलिये नेत्र। उदीरज बोलिये रोमावली।

और अन्त में शिष्य पूछता है

सोलह कला चन्द्रमा की तार्क गुण घट भीतरि रावै।
ते कौण कौण।

गुरु बताते हैं —

सांति सुमर्त (निवृत्ति) छिमा भुमस निहचल ग्यान सरूप पद सुषोण सुषिप (निर्विप) निरंजन अहार, निद्रा मैथुन बाई अमृत—ऐसोलह कला चन्द्रमा की बोलिये।

ए चारि कला सूरज की तार्प तो सोलह कला चन्द्रमा की पावै।
एती एक रोमावली पंच बोम कथितं श्री गोरषनाथ।

ग्यान तिलक

ग्यान तिलक का कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है। इसमें शब्द की महिमा गाई गई है। शब्द पुरुष में समा जाने को अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

---

1 जरायुज।

ॐ सबदहि ताला सबदहि कूंची सबदहि सबद भया उजियाला ।

तथा

अमल पुरुष मेरी दिष्टि समाना सीझा क्या अपूठा ।
जब मन पुरुष तब मन नहीं निपजै कहै बंदे सब झूठा ।

शिव शक्ति मिलन से अमृतपान होता है । सतगुर भाषा सुरति परचा (परिचय)[1] मन मिला माया तृष्णा नाश गगन का दर्शन करके नाद कहता है ।

सुंनी में तिरलोक समाणा तिरबैणी रवि चंदा
सुन्नी ही कोई बहु वियोगी अनहद नाद अनंगा ।

आध्यात्मिक आनन्द तो ऐसे मिलता है जैसे —

अंजन मांहि निरंजन भेट्या तिल मुख भेट्या तेलं ।
मूरति मांहि अमूरति परस्या भया निरन्तर खेलं ।
जहां नहीं तहां सब कुछ देख्या
कह्यां न को पतियाई ।
दुविधा भाव तबै ही भइया
निरंजन पदे समाई ।

शून्य में यह शान्ति है, पर मिरस मिले तब तो द्वैत मिटे । योगी कहता है

थिपणि हमारी मीठी पावै
अगनि बसै मुखआगं ।
ऐसे हम जोगेस्वर निपजा
अबद्या पद निरबाणं ।

सहज की अंगीठी में खाना पक रहा है, कोई साधारण बात नहीं है, तभी

बाफ न निकसै बूंद न छलकै
सहज अंगीठी जरि जरि रांधै
सिव समाधि जोग अभ्यासी
तब कुछ परचै साथं ।।

धैर्य स्तम्भ है डोरी ध्यान है आसमान में तना गया है अटल है यह दुलीचा जहाँ जम रहा है गोरख का दरबार । सब से परे—

धीरजि थंभ डडोरि ध्यान
अकासां असमानं ।
अटल दुलीचा अर्ध पद
जहाँ गोरख का दीवानं ।।

इति ध्यान तिलक ।

---

1 परचा ।

पंचमात्रा

पंच मात्रा जिम्या इन्द्रिय बाँधकर योग में समाने से प्रारम्भ होती है

ओउं (ॐ) प्रनादि ओलम्ब परतर पंथ (जिम्या इन्द्री चीजें बन्ध) इसमें भीतरी सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया है, बाहरी दिखावे का विरोध है

मन मूँडा तो मस्तक मूंडी । नहीं तर पडी नरक की कूंडी ।
ये तो मैक प्रवधू पंच तत मात्रा का बिचार ।
बंदत गोरप बसवें हारि ।

आगे योगी कहता है

सीस्नं सीस्नं करै सब कोय बिना निरंजन मुकति न होय ।
गोरप बिस्न लागा बाद गोरप मेर बजाया नाद ।
सीस्न कीया मूम का रूप मार्‌या मूम प्यामा प्रवधूत ।

गुंबीनाद गगन में गूँजता है पवन गगन में समा जाता है । पाँचों इन्द्रियों का पूरा स्वाद होने पर प्रवधू सीमी नाद करता है । गंगा-यमुना को मिला मेरु पर चढ़ाने से ब्रह्म-ध्यान होता है योग तो आदि धर्म है ।

बारा बरस का मुवा समांणा सी गोरपनाथ जगाया ।
चौसठि जोगणि म्यप्या पूरी, प्रगंत सीधां आदि पद पाया ।

मछिन्द्र प्रसाद से गोरप जती कहता है—

जो जोगी पंच मात्रा को बूझ ले तो सब देवता उसे पूजें
जो इस पढ़े सो—पावागवसु बिराजत प्रमरलोकी समझो ।

इति श्री गोरपनाथजी की पंचमात्रा ग्रंथ जोग शास्त्र संपूरण समाप्त ।

परिशिष्ट 1 (क)

(क—1) गोरख गणेश गुष्ठि

गणेश और गोरखनाथ का सम्वाद होता है । प्रश्नकर्ता गणेश है उत्तर देनेवाले गोरखनाथ । गणेश पूँछें गोरख कहैं —

तुम्हें स्वामी कहाँ ते प्राय्या कहा तुम्हारा नाम ।
प्रम्हें निरंतरि मै वर प्राय्या जोगी प्रम्हारा नाम ।

गणेश पूछते हैं कि आप कौन जाती हैं गोरखनाथ ने उत्तर दिया है —

प्रम्हें निरंजन जोगी प्रतीत गुर चेला ।

गणेश पूछते हैं स्वामी पंचतत्त्व क्या है ? पच्चीस प्रकीति क्या है ? पृथ्वी अप तेज इत्यादि का वर्ण क्या है ? स्वाद स्वभाव घर इत्यादि के विषय की जानकारी के अनन्तर गणेश पूछते हैं कि कवित पवि की पत्नी कौन है ? गोरप कहते हैं

अवधू प्रिथी की आरिम्या आमा मनवंती ।
अप की आरिम्या मनसा चोरटी ।
तेज की आरिम्या कलपना चंडासी ।
वाय की आरिम्या संचया छीसवंती ।

गणेश ने पूछा कि किसके क्या गुण हैं ?

गोरख ने उत्तर दिया

अवधू प्रिथी मूल गुणी । अप मूष गुणी । तेज रूप गुणी ।
वाय भ्रमनगुणी । आकाश मैथुन गुणी ।

गणेश—हो स्वामी पंच तत्त की कहाँ उतपती कहाँ षपती ?

गोरख—

अविगत उतपनां ऊं, ऊं उतपंतिते आकास आकास उतपनी बाई,
बाई उतपन्यां तेज तेज उतपन्या तोया तोया उतपनी मट्टी
मट्टी षासंत तोया तोया षासंत तेज तेज षासंत बाई
बाई षासत आकाश आकाश षासंत ऊं ऊं षासंतते अविगत
अविगत गति रहैत आवते न जावते एवं पंच तत पचीस ।

अकोरति का भे[1] बोलिए ।

और ग्रन्थ का अन्त इस प्रकार होता है

निरंजन देवता पाणी का आसन अंगनि का पुट पवन का चंमा
सुरति निरति सोम्या सुनि मैं समाया अवमत सवपी एवं उचितम्,
पापे न लिप्यते पुन्य न हारते जोगारम्भे भवे शिवा ।
आवागमन निवर्तते । ऊं नमो शिवाई ऊं नमो शिवाई श्री स्वंभुनाथ पादुका नमस्तुते ।

(क—२) ज्ञानदीप बोध (गोरख दत्त गुष्टि)

गोरख और दत्तात्रेय स्वामी का परस्पर सम्वाद है । यहाँ गोरख चेला है और स्वामी दत्तात्रेय ।

गोरख—

स्वामी कि तुम्हें ब्रह्मा कि ब्रह्मचारी
कि तुम्हें बांमण पुस्तक कि शंकचारी ।
कि तुम्हें जोगी [कि जोग जुगता
कौंण प्रसादै रमी अवधूत मुक्ता ।

1 (क) प्रति में इस चरण के स्थान पर 'कहै ग्रठे पार्य म स्ता मोष (तत्व)' है ।

दत्तात्रेय—

अवधू न धर्म्हं ब्रह्मा न ब्रह्मचारी
न धर्म्हं ब्राह्मण पुस्तक न डंडधारी।
न धर्म्हं जोगी न जोग जुगता
आप प्रसारै रमौ छपेद मुकता।

गोरख ने पूछा—तुम्हे कौंण कहाँ थें आया।

दत्त ने कहा —

अवधू होता गुपत भगत थैं प्रगट रहता पुन्य की छाया।
दत्त कहै सुणौ हो गोरष हम गैबी पुरस नर थैं आया॥

गोरख—

स्वामी पवर व्यंद मधाप बाई अप्रबल विप्न की माया।
गोरष कहै सुणौ हो दत्तात्रे क्यूं सीझंति बल व्यंद की काया॥

दत्तात्रेय—

अवधू अनप न बाई अप्रबलन माया
आकार निराकार सुषिम निकाया।
जसो न बरषिबो वरपसो न कामा
दत्त न गोरष काया न माया॥

आवागमन माता-पिता गुरु उपदेश आसन विभाग घर ठाव मुक्ति तुरु गम्भर अमर, सूक्ष्म स्थूल काल मूल गुरु चेला ब्रह्मकमल अगम कला त्रिकुटी ताला खोलना नाद बिन्दु कंटक ब्रह्मकपाट इत्यादि पर अनेक प्रश्न गोरखनाथ एक-एक करके करते हैं और दत्तात्रेय उत्तर देते हैं।

दत्तात्रेय कहते हैं —

अवधू दत्त जु लागा दत्त सौं दत्त दत्त ही माहिं।
दत्त दत्त परचा भया तब दूजा कहणा नाहिं॥

गोरख घूमकर कहते हैं —

स्वामी त्वमेव दत्तं त्वमेव देव माव मवै तुम्हैं आप्पा भेव।
तुम्ह नारायण तुम्ह क्रपाल तुम्ह हो सकल विस्व कै पाल॥

अब दत्तात्रेय वंदना करते हैं —

स्वामी तुमेव गोरष तुमेव रछिपाल
अनंत सिधांमाही तुम्हैं गोपाल।
तुम हो स्वयंभू नाथ निर्वाण
प्रणवै दत्त गोरष प्रणाम॥

इस पर गोरखनाथ अन्त में कहते हैं —

स्वामी तरवस्त तुम्हारा देव
आदि अंत मधि पाया भेद।
गोरष भणई तत प्रणाम
मोष मोष परम निर्वान ॥

येवं ध्यान दीप बोध सवादे जोग सास्त्रं संपूरण समाप्त ॐ नमो सिवाये गुर मछीन्द्र पादुका नमस्तेते।

(क—3) महादेव गोरख गुष्टि

गोरखनाथ और महादेव का संवाद है। इसमें प्राय: वही है जो अन्य ग्रन्थों का तथ्य है। सूत्र अधिक है। किसकी उत्पत्ति किससे हुई है यही बताया गया है। महादेव कहते हैं। गोरख प्रश्न नहीं करते केवल उपदेश सुनते हैं।

ईश्वरोवाच ॐ अविगत उतपते इच्छा इच्छा उतपते आकास आकास उतपते बाय बाय उतपते तेज तेज उतपते तोयं तोयं उतपते पही।

इसके अनन्तर आकाश वायु, तेज आप इत्यादि की पाँच-पाँच प्रकृतियाँ बतायी गई हैं। कौन-सी प्रकृति का अनुसरण करने वाला किस प्रकार पैदा होता है और क्या भोगता है—यह इसमें उल्लिखित है।

5 प्रकृति 5 घर, 10 द्वार, 5 आहार, 5 व्यवहार 5 वर्ण 5 खानि[1] में 84 लाख जीव योनि घूमते हैं। इस प्रकार महाग्यानकर्मपटल प्रथम अध्याय समाप्त होता है। दूसरा अध्याय ग्यान पटल है। इसमें बुद्धि सहज अहंकार, *प्राण इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। तब*

जोगेश्वर जीव सीव एकं मवंति परम सून्य माये स्थिति पारब्रह्म अवे लीनं सत्यं सत्यं च वदाम्यहं तत्वग्यान श्री शंभुनाथ प्रकट कथितं सुनो हो गोरष अवधूत परम जोग संप्राप्तिं जोगी ईश्वरो कथंत महाग्यान ग्यान इति इत्यादि बोलिये।

अन्त में यहाँ संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है जीव और शिव का एकाकार ही मुख्य मस्त है। परब्रह्म में लय सबसे बड़ी बात है।

(क—4) लिंग पुराण

इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। तुलना देकर बताया गया है कि कौन किससे बढ़कर है। अभिव्यक्ति प्रश्नात्मक है कि इससे बढ़कर यह नहीं है। ग्लोकों का भी प्रयोग भी बीच-बीच में यथाविधि से मिलता है।

---

1 योनि

ऊँ एक उपरांति मेष माहीं।
जोग पावै सिस्टि माहीं।
माया पावै परचा नाहीं।
× × ×
माता उपरांति जन्म माहीं।
धर्म उपरांति मरक माहीं।
पर्वत उपरांति ज्ञान माहीं।
× × ×
कामा उपरांति रतन माहीं।
संच उपरांति घ्यान माहीं।
मजप उपरांति जाप माहीं।
मघोर उपरांति मंत्र माहीं।
नारायण उपरांति इष्ट माहीं।
निरंजन उपरांति ध्यान माहीं।

प्रस्तुत कम (ख) (ड) और (ग) के आधार पर दिया गया है। कम और संख्या में प्रत्येक प्रति में परस्पर भेद है।

(क—5) दया बोध

दया बोध का भी उल्लेख सेवादास की ही रचना के रूप में हो चुका है। जोगी कहता है —

आयो सिद्धी जोग बताऊं।
आदिनाथ का पूत कहाऊं।

जोगारम्भ के लिए पहले अपने भीतर दया उपजाओ। हिंसा को छोड़ दो। अविनाशी पुरुष में मन लगाओ।

रिधि आइयां सिधि पाइऐ, सिधि संकट के हानि।
छांडो सकल अकल कू ध्यावो, यो कथंत बदी गोरषनाथ॥

जहाँ चलने का विचार करो वहाँ अगम अगोचर—

दीपक एक अपडित बिन बाती।
तहाँ जोगेस्वर आपना बाती॥
अगम अगोचर सकल समूह।
ता दीपग कै बरण न रूप॥
सिषा न मैल सीस नहिं हाथ।
सो दीपग देख्या बदी गोरषनाथ॥

ता दीपक के ठाम न भूम ता दीपक के कली न फूल।
ता दीपक के रंग न रूप ता दीपक के छांह न धूप।
ता दीपक के सबद न स्वाद ता दीपक के बिधा न बाद।
ता दीपक के मोह न माया सो दीपक सुनै सुन समाया।

शून्य में शून्य लय हो गया। कुछ भी शेष नहीं रहा। चरम अनुभूति हुई। प्राप्तव्य प्राप्त हुआ।

(क—6) कुछ पद

(क) के आधार पर तीन पद दिये गए हैं।

प्रथम पद—

आदि नाथादि नाद ब्रह्म ऊं शिव शक्ती।
नाद बिंद ले काया उतपती।
नाद बिंद रूपी बोलिये ऊं कार।

तथा

आतमा अकुल जती गोरखनाथ किया।
सधार निरास्या आप जिया।।

द्वितीय पद—

गूंजति धूरा गरजंति पूर अमर पद ध्यावंत गुरु ध्यान बंका।
काल की मारि जंजाल को जीति ले निर्भय होइ मेटि मे मन की संका।।

तथा

घटहि में पैसि कर कूप पानी भरै, तब पाइ परि पुरुषा आप उधारै।
ध्यान के प्रगटे श्री स्वयंभूनाथ पाया अकल अकथ जती गोरखनाथ ध्याया।

तीसरा पद—

मूरखा सो मूरखा बहुरि चेतना संसा के लोहे आपा न रेतना।

तथा

अगम् सिद्धा पाया साधक पाया ते उतरिया पारं।
कथत जती गोरखनाथ जेते न जानंत विचारं, ते जनि भये गंवारं।

तीनों पदों में सिद्ध-पथ की ओर इंगित किया गया है। यह सहज नहीं है। गोरखनाथ ने कोई आसान काम नहीं किया है। ऐसा तो बिरले ही कर पाते हैं।

परिशिष्ट 2 (ख)

(ख—1) सप्तवार नवग्रह

सप्तवार नवग्रह में सातों वार और नौ ग्रहों को जीतना योगी के लिए बताया गया है।

गोरष जोगी कथै बिचारं ।
ये व्रत जीतै सातौं वार ॥ टेक ॥

अंत में सब राह बताकर कहते हैं—

वेद पुरान पढ़ै चित लाइ ।
विद्या ब्रह्म कंध चिरि जाइ ।
मछिंद्र प्रसादै जती गोरष कहै ।
सप्तवार कोई बिरला लहै ।

वास्तव में सत्य तो केवल इतना है—

आदित आध्या सोम श्रवण मंगल मुष परवाण ।
बुध हिरदै बृस्पति नाभी सुक्र ते इन्द्री जाण ।
सनि गुदा वाम राहु ते अंन केत ते नासिका रहै ।
सप्तवार नवग्रह देवता काया भीतरि श्री गोरष कहै ।

अर्थात् सारांश यह है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है ।

(ख—2) व्रत

गुरु-मुख से प्राप्त भेद संतोष सेवा दया ब्रह्म की लगन ऐसे व्रत योगी को रखने चाहिएं । एक—जो इन्द्रिय ग्रहण करे । दो—मुख राम कहै । तीन—झूठ न कहै । चार—दया मन मे रखे । असली तो यह 4 व्रत हैं बाकी संसार का व्यवहार है ।

इन व्रत समि व्रत नहि कोई । वेद पढ नाद कहै मत कोई ।
सील व्रत संतोष व्रत छिमा दया व्रत दान ।
ये पाचों व्रत जो गहै सोई साधु सुजान ।
इन व्रतो का जाणै भेव ।
आपै करता आपै देव ।
मन पवनां लै उनमन रहै ।
एते व्रत गोरषनाथ जी कहै ।

यहाँ भी बाहरी व्रत की नहीं भीतरी व्रत की अधिक आवश्यकता दिखाई गई है ।

(ख—3) पंच अग्नि

शरीर में पांच प्रकार की अग्नि है—

ऊँ मूल अपनि का रेचक नाव ।
सोषि लेह रक्त पीत अर भाव ।

बाकी चार अग्नि निम्नलिखित हैं—

सुषंमन अग्नि ब्रह्म अग्नि काम अग्नि रुद्र अग्नि ।

इन अग्नियों का शरीर में क्या-क्या काम है यह भी बताया गया है—

पंच अग्नि भरि पूर रहै।
सिध संकेत श्री गोरष कहै।
पूरिको पीवंत वायु, कूंभ को काया सोषन्तं।
रेचको तजंत विकार वाटिको मायायत्रण विवर्जित।
सिध का मारग कोई साधू जांण।
पच ग्रगनि श्री गोरषनाथ बषाणैं।
पाँचों ग्रगनि संपूरण भई।
ग्रनंत सिधां मधे जती गोरष कही।
। इति ।

(ख—4) ग्रष्ट मुद्रा

शिष्य पूछता है—

स्वामीजी ग्रष्ट मुद्रा बोलिये घट भीतरि, ते कौण कौण ?

गुरु मुद्रा का स्थान कर्म गुण बताते हैं।

भवनु मंडी मध्ये मूलनी मुद्रा काम विष्णा ते उतपनी कांम्।

यह काम तृष्णा को सम करने से होती है। इस प्रकार मूलनी के अतिरिक्त मुद्राएँ ये हैं—

चलनी धीरनी षेचरी भूचरी चाचरी ग्रगोचरी उन्मनी।

समो इनका संस्कृत का बिगड़ा रूप इस प्रकार है—

ब्रह्मांड प्रसर्पानि उनमनी मुद्रा परम जोति मैं उतपनी।
परम जोति समो इनका मुद्रा तो भई उनमनी।
मही ग्रष्ट मुद्रा का जाणै भेव सो ग्रापै करता ग्रापै देव।
इति ग्रष्ट मुद्रा कथन्त श्री गोरषनाथ जती सम्पूर्ण समाप्त सिवाय।

(ख—5) चौबीस सिद्धि

शिष्य पूछता है—

चौबीस सिद्धि बोलिये प्रिथी मैं किपै ते कौण कौण ?

गुरु 4 सिद्धि और उनके गुण बता जाते हैं। ग्रनुमा सिद्धि (ग्रणिमा) महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति (प्राकाम्य) प्रकायक ग्रवस्था प्रावस्था तथा ग्रनेक। किन्तु ग्रन्त में कहते हैं कि यह सब ब्रह्मज्ञानी के तो पारे पाती है परंतु तो पाने पर भी गुरु प्रसाद से त्याग दे। जोगेस्वर तो वही है जो ब्रह्मज्ञानी है।

कम ग्रपार जती गोरखनाथ समझावैं।
ग्रनी चौबीस सिद्धि त्यागि। सोइ परम ज्योति कूँ पावै।

(ख—6) बत्तीस लच्छन

ऊपर हम बत्तीसों लक्षणों को गिना आये हैं। यहाँ उनके दुहराने की आवश्यकता नहीं। चार-चार गुण एक-एक परिचय अथवा परीक्षा के अन्तर्गत हैं। कुल मिलाकर बत्तीस हैं।

एती अष्टांग जोग पारब्रह्मा भगति का महिम।
सिधा पाई साधिका पाई ते जन उतरे पार॥

(ख—7) अष्ट चक्र

शिष्य पूछता है—

ॐ गोरष देव अष्ट चक्र बोलिए घट भीतर, ते कौण कौण बोलिए ?

गोरखनाथ कहते हैं —

आधार त्रिष्ट मणिपुर अनहद बिसुध अगनि निर्वाण
सुखिम आठ चक्र हैं। इन संख्या स्थान भी बतलाते हैं।
ए अष्ट कमल का जाणौ भेव।
आपै करता आपै देव।
इति अष्ट चक्र वर्णंत जती गोरषनाथ सम्पूर्ण।

(ख—8) रह रासि (अर्थात् रहस्य विचार)

ॐ आदेस आदेस अलख अतीतं।
तदा न होती धरती न आकासं।

तब शंभु से हमारी उत्पत्ति हुई। माता ने दस मास का भार नहीं लिया।
पिता ने आचार विचार नहीं। जोनि से नहीं आये न नाभि कटाई।
गोरषराई सबके परे अनुपम शिला के नीचे बैठे हैं। फिर जोगी कहता है कि तुम वहाँ नहीं पहुँच सकते हो। यह स्थान तुम्हारे लिए बहुत दुर्गम है।
तुम तो चमड़ी चमड़ी का संग्रह करो गुर का सबद ले ले जोगिन मरी।
सुन्नी चक्र चलाओ हथियार, पंडित बुद्धि अहोत अहंकार॥
ऊभा ते शिव बैठाते पाताल श्री गोरषनाथा परमाण।
अनन्त शिला में रहिरास कहीं गोदावरी के मैल ऐसी भई॥

। इति ।

परिशिष्ट 3

परिशिष्ट 3 का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझ कर डा० बड़थ्वाल ने पदों की केवल प्रथम पंक्तियों को दिया है। अतः उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रथम पंक्तियाँ ये हैं—

1 अवधू जाप जपो जपमाली चीन्हौ।
अवधू जोग्या तत्त विचारी।

3 मोविलियो बस मीरीयो ।
4. भावी मै जोसी जोसी विचारी ।
5. भाली भाई वरि वरि जावो ।
6. ऐसा रे उपदेस आयें श्री गुर राया ।
7 ॐ नमो सिवाय स्वामी ॐ नमो सिवाय ।
8. गुरु कीजै गहला निगुरा न रहिला ।
9 गोरख बालूडा बोलै सतगुर साखी ।
10 गोरख कहै सुनौ मछिन्द्र ।
11 गोरख गोपाल जी ।
12. गोरख जोगी डोला डोलै ।
13. च्यारि पहरि आलिंगन निद्रा ।
14. तत बणिजीलो तत बणिजीलो ।
15. तत बेली लो तत बेली लो ।
16. नाथ बोलै अमृत बाणी ।
17 पूछौ पंडित ब्रह्म गियान ।
18. बदंत गोरखनाथ बसवें धारैं ।
19 बदंत गोरखनाथ परसिमं केदारं ।
20. बाबी बउरिया पीवौं पीवौं पीरं ।
21 बोल्या गोरख नर जोई ।
22. मनसा मेरी व्योपार बांधी ।
23 मेरा गुरु तीन छंद गावै ।
24 म्हारा रे वैरागी जोगी ।
25. रमिरै रमिता सूं चौगान ।
26 सरवारे उबा त्रिभुवन मे परसा ।
27 सोनाल्यी रस सोना रचौं ।

स्पष्ट है कि अनेक पद पहले आ चुके हैं। इनके नीचे तिलक है जिनके विषय में आगे कहा जायगा ।

संक्षेप में गोरखनाथ के प्राप्त हिन्दी ग्रन्थों का यही परिचय है। यहीं जैन मन्दिर (पंजाब) की हस्तलिखित प्रति में गोरख पोष्टि, महादेव गोरख *सम्वाद ग्यान पटम (द्वितीयोध्याय) पंच मात्रा पंच अग्नि अष्टांग जोग* रोमावली इत्यादि ग्रन्थों का मिलान करने से प्रतीत हुआ कि उनका स्वरूप कुछ प्राप्त मुद्रित रचनाओं से दूर का नहीं है। केवल पाठांतर है। गोरखनाथ का एक पद कुछ 'सबोधु' कुछ 'चौपाई' का मोहनसिंह ने भी अपनी पुस्तक में दिये हैं।

भेद स्पष्ट है। गोरखनाथ की भाषा राहुलजी वाले रूप के समीप है। अर्थात् तत्सम-प्रधान है।

2 इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। विशेषतया सप्तमी का तथा द्वितीया का प्रयोग बहुधा मिल जाता है।

3 इसके अतिरिक्त हिन्दी के अनेक रूप उसमें मिले हुए दिखाई देते हैं। जाइबा पाइबा से लेकर करंता कथंता तथा जोह, होइ सबकी बहुतायत है जिसको देखकर रूप स्थिर करना अत्यन्त कठिन दिखाई देता है। यहाँ दो-एक उदाहरण देने से ही स्पष्ट हो जाएगा कि गोरखबाणी भी स्वयं एक गोरखधन्धे के समान है।

खड़ीबोली-प्रयोग—

अगम अगोचर ऐसा (पृष्ठ 1) माया का भोग (पृष्ठ 16)
दखिणी जोगी रंगा चंगा पूरबी जोगी बादी।
पछमी जोगी बाला भोला सिध जोगी उतराधी। (पृष्ठ 16)

राजस्थानी-प्रयोग—

गुरि गुरुमता सुणी बनिबंता अनंत सिधां की बाणी।
जागत रैणि बिहाणी। (पृष्ठ 26)
नीझर झरणां अमीरस पीवणा (पृष्ठ 58) बणिजीत्यौ।
मांहरा रे बैरागी जोगी (पृ 105)
गूलम हारो म्हारा भाई (पृ 86)

ब्रज भाषा-प्रयोग—

निहचै मरतै भए निरदंद। परचै जोगी परमानंद (पृ 6)
धन जोबन की करै न आस। चित न राखै कामनि पास (पृ 7)
तथा जोह नैं मिलणा और।

लगे के से प्रयोगों से पंजाबी का प्रभाव दिखाई देता है। पुरानी बंगाली का प्रयोग एत कथू कथीला बुक सबै नैना भोले। सबै रस पोईला मुक बोलनी ये बोलें। माइला जाइला इत्यादि प्रयोगों में भोजपुरी प्रभाव प्रकट है। पयाल भी डीबी मुनि चढाई तथा सतगुरि अम्है परचाया में गुजराती का प्रभाव है। विद्वानों का मत है कि नेपाली के कुछ प्रयोग भी गोरखबाणी में मिल जाते हैं।

4 दिवस रोजी सदा हजूर (पृ 51)। दरवेस दर, मलह (पृ 61) वैकपर (पृ 7)।

5. इसके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। पुस्तक में बिखरे पड़े हैं।

6. बहुत कम है।

साराश यह है कि वस्तुतः यह भाषा उस युग की कदापि नहीं है जिसमें गोरखनाथ हुए थे। बहुत-से लोग उन्हें 12वीं शती का मान लिया करते हैं किन्तु तब भी यह निस्सदिग्ध रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह भाषा उसी काल की है। चेलों के हाथ में पड़ी भाषा के रूप में अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के रहते गोरख को इतना पीछे मानना भारी भूल होगी। जिस प्रकार मात्स्हा बदली है गोरख की भाषा भी बदल गई है। हस्तलिखित प्रतियाँ 17वीं या 18वी शती की लिखी हुई हैं। इससे पुरानी नहीं मिलतीं अतः उससे भी समय का अन्दाजा नहीं होता। वैसे संतों की यह भाषा 14वी शती की सी प्रतीत होती है जिसमें लिखे जाने के पूर्व 15वीं और 16वीं सदी का भी प्रभाव आ गया है। इसका अर्थ यह निकलता है कि इनमे से कोई भी रचना गोरखनाथ की नहीं है। परन्तु यह याद रखना आवश्यक है कि शिष्यों ने गुरु वचनों को अत्यन्त सहेज कर रखने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हम निम्नलिखित तथ्यों पर पहुँचते हैं

1 गोरख की बात बचाने का प्रयत्न किया गया।

2. उसके लिए शिष्यों के प्रयत्न भी उसमें मिल गये।

3. विचारो और अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से जो संभाव्य प्राचीन तथा पछाँही रचना मिलती है उसी को प्राचीन मानना पड़ेगा कि गोरखनाथ की रचना उसका कोई मूल स्वरूप होगी।

विशेषता और प्रामाणिकता

निस्सदिग्ध रूप से उनके ग्रन्थों में कौन-सा ग्रन्थ प्रामाणिक है कौन-सा नहीं यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी जो अधिक सम्भाव्य हैं उनकी ओर यहाँ प्रकाश डाला जाता है। अब वास्तव मे हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि किस ग्रन्थ को उनका प्रमाणित किया जावे। बरन् पहले उनकी रचनाओं में क्या-क्या सम्भाव्य परवर्ती तत्त्व प्रतीत होते हैं उन्हें खोजकर निकाला जाय। इसमें निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं

(1) इस्लाम का प्रभाव।

(2) अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव।

(3) गोरखबाणी में परवर्तियों का उल्लेख।

(4) परवर्ती काल में जिन देवताओं का महत्त्व बढ़ता गया है, उनका उल्लेख।

(5) मछिन्दनाथ और गोरखनाथ की सम्भाव्य मूल संस्कृत रचनाओं के आधार पर जो उनके विचार हमने निर्धारित किये हैं तथा उसी युग की उपज प्रतीत होते हैं उनसे दूर हटते हुए विचारों की खोज।

(6) अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण।

(7) उठते हुए और मुखर होते हुए ब्राह्मणवाद का प्रभाव।

सबदी—सबदी में अनेक स्थलों पर इस्लाम का प्रभाव दिखाई देता है अथवा इस्लाम का संसर्ग एक बढ़ी हुई अवस्था में मिलता है।

बेद कतेब न खांणीं बांणी। (पृ 2)

बेदे न सास्त्र कतेबे न कुराणे। (पृ॰ 2)

महंमद महंमद न करि काजी

काजी सो बस नहीं सरीरं। (पृ 4)

कलमा का गुर महंमद होता पहलैं मूवा सोई। (पृ 5)

उतपति हिंदू जरणां जोगी अकलि पीर मुसलमानी।

ते राह चीन्हों हो काजी मुलां ब्रह्मा बिस्नु महादेव मांनो। (पृ 6)

हिंदू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।

जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत।

हिन्दू आपै राम को मुसलमान षुदाइ।

जोगी आपै अलष कों तहां राम अछै न षुदाइ। (पृ 25)

काजी मुलां कुराँण लगाया ब्रह्म लगाया बेदं। (पृ 33)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि इस्लाम व अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव तथा परवर्ती देवताओं का उल्लेख गोरखबाणी में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पूरी गोरखबाणी में इस प्रकार के उद्धरणों की कमी नहीं है। वास्तव में इसके लिए अभिव्यक्ति का दृष्टिकोण उत्तरदायी है। गोरखनाथ की जितनी भी रचनाएँ गोरखबाणी में हैं उन्हें निम्नलिखित ढंग से विभाजित कर लेने से सुभीता होता है

(1) स्वयं गोरखनाथ की कही हुई।

(2) वे रचनाएँ जहाँ गोरखनाथ अपने-आप अपने नाम के साथ भी जोड़ लेते हैं।

(3) संवाद—देवताओं से महापुरुष या अवतारों से।

(4) वे रचनाएँ जो स्पष्ट ही अन्यों की कही गई।

(5) वे रचनाएँ जो शिष्यों द्वारा पढ़ी जाती हैं। यह स्पष्ट कहा गया है और उनके प्रश्नों का उत्तर उन्हें दिया जाता है।

(6) उपदेश या कथा रूप में सुनाई हुई रचनाएँ।

(7) तिलक या सूत्र-रूप में लिखी गई रचनाएँ।

इस विभाजन का प्रथम तथ्य हम आगे देखेंगे। यहाँ शेष तथ्यों पर संक्षिप्त दृष्टिपात किया जाता है।

गोरख के नाम के साथ कविता मे जहाँ श्री जोड़ा गया है उसके दो कारण हो सकते हैं

(1) शिष्यों ने उपदेश देते समय या प्रचार करते समय अपनी कविता को इस प्रकार सुनाया कि गुरु गोरखनाथ ऐसा कह गए हैं।

(2) गोरखनाथ के पद को श्रद्धाभक्ति से सुनाते समय वे नाम के आगे बिना 'श्री' जोड़े उनके नाम को उच्चारित करना अनुचित समझकर ऐसा साहस न कर सके।

पंच बिन कलिबा अगनि बिन जलिबा अनिल तृषा जहटिया ससबिब।
श्री (गुर) गोरख (नाथ) कहिया बूझवौ पंडित पढ़िया।

तथा

जोगी होइ पर निंद्रा झर्षे। मद मांस अरु भांगि जो भर्षै।
इकोतरसै पुरिषा नरकहिं जाई। सतिसति भाषंत श्री गोरषराई।

श्रौर

त्रिया न स्वांति (सांति) बैद न रोगी रसायणी अरि जाषि थाय।
बूढ़ा न जोगी सूरा न पीठि पाड़ें वाव मसना न मार्नै श्री गोष्परराय।

एक स्थान पर श्री की जगह जी का प्रयोग भी हुआ है

मन पवनां मैं झनमन रहै एतै ब्रत गोरखनाथ जी कहै। (पृ 245 पद)

इन तथ्यो के श्राधार पर गोरखबानी में दी हुई रचनाओं का विभाजन करने पर निम्नलिखित रूप दृष्टिगोचर होता है

(2) नरवै बोध श्रात्म बोध सप्तवार (सप्तवार नवग्रह) व्रत पंच अग्नि रहरासि।

(3) मछीन्द्र गोरष बोध गोरष गणेश गुष्टि, गोरख दत्त गुष्टि, महादेव गोरष गुष्टि।

(4) सिस्ट पुराण दया बोध।

(5) रोमावली अष्टमुद्रा चौबीस सिद्धि अष्टचक्र।

(6) प्राण संकली पंद्रह तिथि स्यान तिलक पंचमात्रा।

(7) सिप्या दरसन श्रभै मात्रा जोग बतीस लक्षन।

परिचय लिखते समय हम प्राय उन बातों का भी उल्लेख कर आये हैं जो परवर्ती काल पड़ती हैं। इनके अतिरिक्त इस्लाम के प्रभाव तथा कुछ अन्य प्रमाणों को देखना आवश्यक होगा।

एकतवदी में परिवर्ती नामों का उल्लेख है

माध्या सबद चुकाया दव। तिहूचै राजा भरथरी परचै गोपीचंद।
सिद्ध मैं नरवै भए निरदंद। परचै जोगी परमानंद।

गोरखनाथ इनके पूर्ववर्ती तथा गुरु थे। शिष्य का उदाहरण देकर गुरु इस प्रकार नहीं समझा सकता। इसके लिए वह अपने पूर्ववर्तियों का ही उल्लेख कर सकता है

मरौ वे जोगी मरौ मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणीं मरौ जिस मरणीं गोरष मरि दीठा॥

में गोरखनाथ अपने-आपको उदाहरण बनाते हैं। यह भी ठीक नहीं मालूम देता। किसी शिष्य ने बाद में गुरु भक्ति के आवेश में आकर ऐसा कहा जान पड़ता है।

गोरख के युग में यह विवाद नहीं था जो बाद में जोड़ा गया लगता है।

हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद जहाँ देहुरा न मसीत।
हिंदू आषै राम कौं मुसलमान षुदाइ।
जोगी आषै अलष को तहाँ राम अछै न षुदाइ।

तथा

काजी मुलां कुराण लगाया ब्रह्म लगाया वेदं।

गोरख के अखंड ब्रह्मचर्य के स्थापन में परवर्ती काल में शाक्त सम्प्रदायों का अवशिष्ट प्रभाव बचा रह गया था जिसका प्रभाव गोरखबानी में भी दिखाई देता है

भगरी करंतां अमरी राषै अमरी करतां बाई।
भोग करंतां जे ब्यंद राषै ते गोरष का गुर भाई।
मन मुषि ब्यंद अगनि मुष पारा।
जो राषै सो गुरू हमारा।

गोरखनाथ की विशेषता मिलती है कि उन्होंने संस्कृत-ग्रंथों में भी अपने से पुराने सिद्धों की कहीं अधिक प्रशंसा नहीं की है। इसका स्पष्ट कारण है कि उनका विचार अन्यों से बहुत अलग था। एक स्थान पर तो वे स्वयं कहते हैं

अवधू ईस्वर हमारे चेला भणीजै
मछींद्र बोलिये नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती तातैं हम
उलटी थापना थापी।

इस उलटी स्थापना के स्थापन से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथजी स्वयं अपने लक्ष्य पर पहुँच चुके थे। मत्स्येन्द्र को अभी न छोड़ सके। एक स्थान पर वे सत्तर के सिद्धों की प्रशंसा करते हुए पाये जाते हैं दूसरी जगह

गियानि मंडल मे माया बिमाई कामद ग्रही धमाया।
छाडि भाँडि पिंडता पीवीं छिमाँ मावण पाया।

मेरे विचार में यह सबदी परवर्ती है। अन्यों की तुलना में सिद्धों से मक्खन पाया है किन्तु इसमें गोरख ने अपनी बात नहीं कही। यह उस समय की सबदी है जब स्वयं गोरखनाथ भी सिद्ध माने जा चुके थे। इसी प्रकार गुणनीम रूप में गोरख की प्रशंसा की गई है

अगाध कंद्रप बिरला साधंत कोई।
सुर नर गण गंध्रप व्याप्या बालि सुग्रीव भाई।
ब्रह्म देवता कंद्रप व्याप्या चंद्र सहंस भग पाई।
अठ्यासी सहंस रषीसर कंद्रप व्याप्या अगाधि बिष्न की माया
मंग कंद्रप ईस्वर महादेव नाटारंभ नचाया।
बिष्न दस अवतार पाप्या अगाधि कंद्रप जती गोरखनाथ साध्या
जनि गीध्नर भरता राष्या।

कबीर की भाँति यह गोरखनाथ की आहम्मन्यता भी हो सकती है। अधिक तो यह परवर्ती प्रशंसा प्रतीत होती है। कबीर ने भी कहा है

महादानी चोभन हम जानी भूम धूंधक बजार दीवार।
मार्कण्डेय मारे मानी शृंगीऋषि के रंग में पानी।
नैन की सैन नचावें नारद भस्मासुर किये छार।
नौ नाथ पचकों में राखे सिद्ध चौरासी मुक भुक मारे।
उद्दालक ऋषि तिरिया के कारण गये ब्रह्म दरबार।
मोहनी रूप धरा भगवाना शंकर हीय धरा हम जाना।
कच्छ देश रतनागर सागर किया गोरख सिर मार।[1]

---

1 परवर्ती युग में गोरख पंथ को कबीर-पंथ से बड़ी कड़ी टक्कर लगी थी। एक बार कबीर और रामानन्द की गोरख से मुलाकात हुई। रामानन्दजी गोरख से जीत न पाने के कारण अन्तर्धान हो गये; किन्तु कबीर साहब ने डटा दिया।

साहिब कबीर तब भये ठाढ़ा।
एक सूई धरती में गाड़ी दूसरी को आकाश को तान्या।
तीन भई सही सूत डाल्याना ब्रह्मा विष्णु महेश भुलाना।
ऐसा रूप अनूप जब आये तिरलोकी में बैठ गोरख समझाया।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो विगत विगत अलोप निरंजन।।

गोरख ने पूछा—"कितना क्या है उमर तुम्हारी?"

कबीर— जो पूछे तो सकता क्या है उमर हमारी।
हम तो सदा मालूम हैं लेखें तुम चारी।

इसमें मथुरा का क्या अर्थ है य। स्पष्ट नहीं होता। डा० बड़थ्वाल ने लिखा है इस प्रकार है मथुरा (1) मुन ।है साधु (ऊपर कहे अनुसार साधना करने वाले) परमतत्व को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार का संक्षिप्त संबोधन इसमें होने से हम इसे परवर्ती पदों में रखते हैं।

31वें पद में रावल योगियों का उल्लेख है। कनक रावलनाथ सम्प्रदाय में गोरख के बाद आकर सम्मिलित हुए थे।

38वें पद में

> षेक मुलानंम् बोह कुरानम् ग्यारह पुरसाणी हूवा।
> धनह की तिन पार न पायौ बंम बेद बेद मूवा।
> नौ नाथ ने चौरासी सिधा मात्रसुधारी हूवा।
> जोग का तिन पार न पायी बन यही भ्रमि भ्रमि मूवा।
> पंच तत की काया जिनसी रापि न सक्या कोई।
> काम क्रम बब ग्यांन प्रकास्या बदंत गोरष सोई।

स्पष्ट है कि गोरखनाथ अपने आपको नौ नाथों में मिलकर या अपने को चिवावतार समझकर भी उनके लिए ऐसे अमर्यादाशील बचन नहीं कह सकते थे क्योंकि उनके गुरु भी तो इन्हीं के अन्तर्गत थ।

सबदी और पदों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का स्वरूप विचारणीय है। इन सब रचनाओं मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना मछीन्द्र गोरख बोध है। प्रारम्भ से अन्त तक मछीन्द्र गोरखनाथ के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते जाते हैं कि जो इन पटचक्रों के भेद को जानता है वह अपने-आपको जानता है। जो योगी मन-पवन को साध लेता है तो वह निरोगी हो जाता है।

मछीन्द्र के संस्कृत-ग्रन्थों का हम ऊपर कुछ उल्लिखित कर चुके हैं। मछीन्द्र के इन हिन्दी उपदेशों से उनमें कुछ भेद है। गोरखनाथ के अन्य ग्रन्थों में जो कुछ है वही गोरख मछीन्द्र बोध मे भी प्रतिध्वनित है। क्या कारण हो सकता है कि मछीन्द्र ने वही कहा जो गोरख चाहते थ? उत्तर है कि गुरु को अपनी राह पर लाने वाले गोरख थ। उन्होंने ही यह सब उन्हें बताया होगा। जिनकी पृथ्वी पर गोरखनाथ प्रकट नहीं चाहते थे इतना उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं।

मेरे विचार में मछीन्द्र और गोरख के सम्बन्ध-विषयक अपनी मान्यताओं को जैसा उन्होंने समझा वैसा बाद मे मिलकर रख लिया। 'मछीन्द्र गोरख बोध' मे नाथ सम्प्रदाय क बहुत से प्रश्नों का उत्तर है। इसके अतिरिक्त सबार की यह परम्परा नाथ-सम्प्रदाय की रचनाओं की वह ऐतिहासिक कड़ी है जो संस्कृत स सीधे उतरी और परवर्ती सन्त-काल म उतर गई। नाथ-सम्प्रदाय की कविता के अन्तर्गत हम इस विषय को बिलकुल स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

सम्पादन

अतः गोरखबाणी को सामने रखकर कहा जा सकता है कि ऊपर दिये तथ्यों के आलोक में उनकी निम्नलिखित रचनाएँ या उनके अंश अमुक सीमा तक मूल ग्रन्थ रहे होंगे और उन्हें अन्यों की तुलना में हम प्राचीनता के निकट तक पाते हैं

(अ) 4 6 9 10 11 14, 15 22 26 68 69 95 96 118, 127 129 141 14[illegible], 159 164, 167 171 173 174, 182, 184 196 198 199 200 204 211 225 243 249 274 —इन पदों के विषय में स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह देखते ही परवर्ती प्रतीत होते हैं।

(आ) पद 12 13 27 30 31 33 38, 45, 58 59 61 परवर्ती प्रतीत होते हैं।

(इ) नरवै बोध आत्म बोध छप्तवार, सप्तवार नवग्रह व्रत पंच अग्नि तथा रहरासि परवर्ती रचनाएँ हैं, जो गोरख के उपदेशों को उद्धृत करने के कारण उन्हीं के नाम के साथ जोड़ दी गई हैं।

(ई) मछींद्र गोरख बोध गोरख गणेश गुष्टि गोरख दत्त गुष्टि तथा महादेव गोरख गुष्टि, गोरखनाथ के बाद उनके शिष्यों की बनाई चीजें हैं जो संवाद की पुरानी परम्परा पर लिखी गई हैं। इन रचनाओं में या तो उपदेश दिये गए हैं या भिन्न मतों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

(उ) सिष्ट पुराण तथा दया बोध प्रायः नरवै बोध इत्यादि इ की कोटि में आ जाने वाली रचनाएँ हैं। किन्तु सेवादास का नाम इनके साथ मिल जाने से हमें इनको गोरखनाथ की रचनाएँ समझने का कोई कारण नहीं रह जाता।

(ऊ) रोमावली अष्टमुद्रा चौबीस सिद्धि तथा अष्टचक्र भी शिष्यों के परस्पर सम्बन्ध से उद्भूत रचनायें हैं। सिद्धगोष्ठी में प्रश्न उठते थे और कोई गुरु उनका गुरु गोरखनाथ का प्रमाण देते हुए उत्तर देते थे।

(ए) प्राण संकली पन्द्रह तिथि ग्यान तिलक तथा पंचमात्रा यद्यपि परवर्ती ग्रन्थ हैं तथापि इनमें गोरखनाथ का मूल रूप कुछ सीमा तक अधिक सुरक्षित लगता है। कहीं-कहीं जैसा कि ऊपर देखा गया है ऐसी कथाएँ या वचन या अभिव्यक्तियाँ आ जाती हैं जो अपने-आप अपने को परवर्ती प्रमाणित कर देती हैं।

(ऐ) तिलक या मूल रूप में लिखी गई रचनाएँ सिप्या बरसन धर्ममात्रा बोग तथा बतीस लछन या प्रष्ट पारछया नितान्त परवर्ती रचनाएँ हैं।

(ओ) परिशिष्ट तीन के पदों की पहली पंक्तियों में से प्रत्येक 'पद' में था गई है। निरंजनी साधु हृद तिलक उस परम्परा को प्रगट और स्पष्ट कर देते हैं जिनके आधार पर 'ऐ' का हम दृढ़तापूर्वक परवर्ती कह सकते हैं। गोरखनाथ यद्यपि एक मत की एक बड़ी परम्परा अपने साथ लिये हुए थे तथापि वे मूल प्रवर्तक के रूप में माने गए हैं। 'ऐ' में उन्हीं को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किया है। यह कहना अनुचित होगा कि गोरखनाथ अपने-आपको प्रमाण कहते थे। कबीर की आत्माभिव्यक्ति और विश्वास के साथ-साथ देखा जाय तो स्वसंवेद्य में सम्भव है कुछ सीमा तक गोरखनाथ भी कह सकते थे। यह सत्य है और उनके पदों तथा सबदियों में ऐसे विचार तथा अभिव्यंजना का दर्शन होता है। किन्तु यह व्यक्ति-मूलक है। उपदेशों और सूत्रों में क्योंकि व्याख्यात्मक सूत्रों का रूप है वे शिष्यों की ही रचनाएँ अधिक प्रतीत होती हैं।

गोरखनाथ के तीन पद (क—6) अपने तथ्य के अनुरूप गोरख के ही प्रतीत होते हैं।

सारांश में यही निर्णय निकलता है कि गोरखनाथ के नाम से चलने वाली रचनाओं में मात्र बहुत कम के विषय में कहा जा सकता है कि उनकी मूल रचनाओं का रूप निश्चय से उपप्राप्त रचनाओं का ही कोई पुराना स्वरूप रहा होगा। डा बड़थ्वाल ने उचित ही कहा है कि जो मात्र प्राप्त है वह भी शिष्यों की इस भक्तामक्ति के कारण है जिसने अधिक से अधिक प्रयत्न किया कि मूल रूप वैसा ही बना रहे।

टीका

टीका से हमारा आशय अर्थ लिखने का नहीं है गोरखबानी के महत्त्व के प्रतिपादन से है गोरखबानी की विशेषताओं से है। बाह्य रूप देखने के अनन्तर इसके भीतरी रूप को देखना आवश्यक है तब हमें निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण दृष्टिगोचर होते हैं

1. नाथ-सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि में बौद्ध सिद्धों की हिन्दी कविता थी।
2. नाथ-सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि में संस्कृत में अपार शैव साहित्य था।
3. जनसाधारण तक पहुँचने का पथ यदि हिन्दी का माध्यम था तो वह हिन्दी भी व्यक्तिवाद के स्पष्टीकरण के कारण सहज अभिव्यंजना नहीं थी।

4. भाव और साधना की विशेष भाषा-शैली भी जिसके अर्थ सम्भवत जो भाव समझे जाते हैं वे उस समय वैसे ही नहीं थे।
5. गोरखबानी में रूपक जहाँ आध्यात्मिक है वहाँ दूसरी ओर सांसारिक कार्यों के उदाहरण देकर भी बात समझाने का प्रयत्न किया गया है।
6. साम्प्रदायिक होते हुए भी गोरखनाथ की कविता में कवित्व का पुट है और ऐसे स्थानों पर आत्मानुभूति होने के कारण वह प्रभावोत्पादक है।
7. गोरखबानी एक दर्पण है जिसमें नाथ-सम्प्रदाय का बहुत-सा रूप अन्तःसाक्ष्य से प्रकट होता है।
8. नाथ-सम्प्रदाय ने गोरखनाथ के बाद हिन्दी में अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की जिनकी शैली भाषा विचार तथा अभिव्यंजना का अपने क्षेत्र में बहुत काफी महत्त्व है।
9. सन्तकालीन साहित्य की भाषा विचार, अभिव्यक्ति तथा पृष्ठभूमि नाथ-सम्प्रदाय की इन रचनाओं में बिखरी पड़ी है।

इन बातों को हम कुछ विस्तार से कहेंगे। नवें तथ्य में भाषा की पृष्ठभूमि का विचार समझने में कुछ कठिन-सा प्रतीत होता है अत सबसे पहले उसी पर प्रकाश डालना उचित दिखाई देता है।

गोरखनाथ की हिन्दी कविता का महत्त्व

गोरखनाथ की कविता अधिक प्राप्त नहीं जो प्राप्त है उस पर अधिकार से कुछ कहना तनिक कठिन है। तथ्य के दृष्टिकोण से वह विशेषतया साम्प्रदायिक रचना है। उसमें काव्य के दृष्टिकोण से अधिक महानता नहीं है। तब गोरखनाथ की हिन्दी-कविता का महत्त्व क्या है ?

जिस व्यक्ति के नाम पर संस्कृत के अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं उसी के नाम के हिन्दी ग्रन्थ देखकर यह विचार उठता है कि इस व्यक्ति ने अपनी बात का जन साधारण में प्रचार करने के उद्देश्य से ही हिन्दी का भी सहारा लिया था। किन्तु यह गुण केवल गोरखनाथ में ही हो ऐसा कहना अनुचित होगा। अन्य सिद्धों बौद्धों ने भी ऐसा किया है। तब प्रश्न उठता है कि मध्य युग के सन्धि-काल में स्वयंभू आदि बड़े-बड़े कवियों के सामने गोरख का स्थान क्या है ?

गोरखनाथ की कविता वास्तव में भारतीय इतिहास की एक बहुत बड़ी कड़ी है। इसके अनुसार हमारे हिन्दी-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन प रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार न करके इस प्रकार करना पड़ेगा

(1) अपभ्रंश-काल।
( ) सन्धियुगीन नाथ-सम्प्रदायगत कविता।

(3) हिन्दी युग।

अपभ्रंशकाल की भाषा तद्भव प्रधान है। हिन्दी युग की भाषा तत्सम प्रधान है। राहुलजी ने कहा है कि हिन्दी-कविता 14वीं शताब्दी से तत्सम प्रधान हो गई और उसने अपना रूप बदलकर भाषा का दूसरा रूप धारण कर लिया। इस्लाम के आगमन से भारतीय जनता ने जो अपने को संगठित किया उसमें उसकी भाषा का भी संगठित-स्वरूप दिखाई दिया क्योंकि संस्कृत से तत्कालीन देशभाषाओं ने अपना पल्ला जोड़ लिया।

प्रश्न उठता है कि तद्भव प्रधान भाषा को तत्सम-प्रधान होने में जो लगभग 500 वर्ष बीत गये उसमें किस प्रेरणा ने प्रधान कार्य किया? गोरख नाथ निस्सन्देह सन्धियुग के सच्चे प्रतीक हैं। क्योंकि इस प्रकार की भाषा का बीज उन्हीं में पहले-पहल प्राप्त होता है। यही सन्धियुगीन नाथसम्प्रदायगत कविता की भाषा है। यद्यपि इसका प्राप्त रूप केवल इस ओर इंगित-मात्र ही करता है।

आज यह तद्भव प्रधान भाषा शीघ्र समझ में नहीं आती। तत्सम प्रधान भाषा समझ में आती है। गोरखनाथ की भाषा के विषय में निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(1) गोरख की कोई रचना अब अपने मूल रूप में है ही नहीं।
(2) पृथ्वीराज रासो की भांति उसका रूप भी बदल गया है दोनों तथ्य गम्भीर हैं और काफी सीमा तक यथार्थ दिखाई देते हैं। किन्तु फिर प्रश्न आता है कि भाषा का जब परिवर्तन हुआ तो वह क्या आकस्मिक था?

मेरे विचार में तथ्य इस ओर इंगित करते हैं

(1) नाथ-सम्प्रदाय की संस्कृत से जानकारी थी।
(2) गोरखनाथ स्वयं ब्राह्मण थे। उन्हें संस्कृत अच्छी तरह आती थी। सम्भवतः उनकी भाषा का अन्य सिद्धों की भाषा से कुछ वैसा ही भेद रहा हो जैसा तुलसी और जायसी का अथवा कुछ सीमा तक जैसे आज सुमित्रानन्दन पंत और बच्चन की भाषा का।
(3) उनमें ब्राह्मण प्रभाव शेष था। और बौद्ध-विरोध इसमें सहायक था।
(4) उन्होंने उच्च और निम्न समाजों में अपना एक-सा प्रभाव रखने को संस्कृत और देश भाषा का साथ नहीं छोड़ा।
(5) नाथ-पंथियों का ईश्वरवाद इस्लाम के आने से अधिक से अधिक 'हिन्दू' वातावरण की ओर खिंचता गया और जब सब धर्म किसी-न-किसी रूप में वेद के नीचे आने लगे तब यह सम्प्रदाय

बहुत मानकर सिद्ध हुआ और इसने संस्कृत को जनता तक पहुँचाया।

(6) इसी समय गोरख की मूल कविता का तद्भव रूप तत्सम भाषा है मानी गया और तत्सम के लिए भूमि होने से वह तद्भव के स्थान पर बढ़ने लगा।

(7) सन्तों की वाणी में आते-आते हिन्दी इतनी सशक्त हो गई कि तत्कालीन तद्भव और तत्सम दोनों को पचाने की उसमें सामर्थ्य हो गई और देश-भाषा भारत के प्राचीन ज्ञान-भंडार को सम्भाल-कर वहन करने के योग्य हो गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा के दृष्टिकोण से गोरख की कविता का एक ऐतिहासिक मूल्य है जिसे समझ लेना आवश्यक है। रामानुज और शंकर को यह महत्त्व नहीं दिया जा सकता क्योंकि उन्होंने संस्कृत में अपनी रचनाएँ कीं और इसका कारण था कि वे ब्राह्मणवाद से घिरे हुए थे। गोरखनाथ को कोई ऐसे बंधन नहीं थे। गोरखनाथ के युग में अपभ्रंश का रूप अलग-अलग स्थानों में आज की भाँति बहुत अलग-अलग नहीं था। भाषा व्यक्त होती जा रही थी और भेद बढ़ते जा रहे थे। उस समय तद्भव के स्थान पर तत्सम का प्रयोग सम्भवतः गोरखनाथ का ऊपर दिये कारणों से पहला प्रयत्न था जिससे परवर्ती युग में लोगों को टिकने का सहारा मिल गया और भाषा अपने-आप दूसरा रूप पकड़ने लगी।

हिन्दी के आदि रूप अर्थात् अपभ्रंश की भी रचनाएँ अत्यन्त कठिनता से बाहर आ सकती हैं। सम्भव है खोज होने पर नाथ-सम्प्रदाय की रचनाएँ भी अपने अपने वास्तविक स्वरूप में मिल सकें—यद्यपि इसकी मात्रा अभी तक बहुत कम है क्योंकि

(1) नाथ-सम्प्रदाय भारत के बाहर नहीं गया।
(2) अपना रूप बदलता रहा।
(3) अन्य सम्प्रदायों के साथ संघर्ष करने में इसे बहुत-कुछ लेने-देने में स्वरूप परिवर्तन करना पड़ा तथा
(4) इसका वास्तविक रूप सन्त-परम्परा में अन्तर्भुक्त हो गया।

गोरखनाथ तथा नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थ आज केवल इस ओर इंगित करते हैं कि उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और था। वह अपभ्रंश और हिन्दी के बीच की भाषा थी। वह सन्ध्या भाषा का परवर्ती रूप था। वह वह समय था जब तद्भव प्रधान भाषा तत्सम प्रधान होती जा रही थी। आने और जाने से नाथ-सम्प्रदाय की पुस्तकों की भाषा भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हाथों में चलकर अपना वास्तविक स्वरूप खोती जा रही थी। प्रचार बढ़ने के साथ-साथ उस

पर अन्तर्प्रांतीय भेद भी अपना प्रभाव डालते आ रहे थे।

भाषा और तथ्य के दृष्टिकोण के अनन्तर यद्यपि अनेक नए विचार इसमें घुस गए, हमने ऊपर दिए अधिक-से-अधिक पुराने स्वरूप के विचारों को देखा। गोरख की कविता का कितना भाग हमारी हिन्दी तथा परवर्ती सन्त-परम्परा में ज्यों का त्यों उतर आया है या परवर्ती विचार इसमें कितने घुस गए हैं यह कहना कठिन है। फिर भी इसके पुराने होने से यही अधिक सम्भाव्य लगता है कि सम्भवतः इसके ही विचार आगे चलकर औरों ने अपनीकृत किये हों।

पूर्ववर्ती समसामयिक तथा परवर्ती सिद्धों से समानता

गोरखबाणी में अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें गोरखनाथ के पूर्ववर्ती सम सामयिक तथा परवर्ती सिद्धों की रचनाओं से निकट साम्य दिखाई देता है इसके दार्शनिक पक्ष का पहले उल्लेख किया जा चुका है यहाँ समानता का उल्लेख किया जाता है

1 सहजमान	निरंजन तत्व	3- शून्य
4 आकाश	5 रहस्यवाद	6. साधना
7 उलटबासी	8. पाखंड-खण्डन	9. रूढ़ि-खण्डन
10. राजा-प्रजा-सम्मान	11 गुरु-प्रशंसा	12. सदाचार-उपदेश
13. काया तीर्थ	14. सहज संयम	15. मन्त्र-देवता-विरोध
16. पठन और पण्डित-निन्दा		

यहाँ सिद्धों की रचनाओं के उदाहरण देते हैं

पूर्ववर्ती (अ) सरहपाद

जस्सइ मरइ उवज्जइ बज्झइ। तस्सय परम महासुह सिज्झइ।
सरहे गहण गुहिर भण कहिआ। पसू लोअ निब्बोहि जिम रहिआ।
ध्यान रहित का ध्यान करो। जो अवाच्य है उसको कौन बखान सकता है।

× × ×

चलिओ धम्म महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ।
अम्हइ अन्ते वान्ति ण होइ। परिसामिनि भी तट्ठिउ होइ।

× × ×

जाव ण आप परिजाणइ ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धा अन्ध कढाव तिम बेणा वि कूव पडेइ।

× × ×

चित्तही महणे चित्त मोक्ख ता मोरइ चमरइ।
सच्च मोक्खहिं होइ जाण ता नहि तुरयइ।

× × ×

मण तरु पाँच इन्दि तसु साहा आसा बहल पात फल बाहा ।
वर गुरु वअणें कुठारें छिज्जअ काण्ह भणइ तरु पुणु ण उइज्जअ ।

× × ×

घुणसा तरुवर गअण कुठार । छेवइ सो तरु-मूल ण डाल ।

परवर्ती (ई)—गोरखनाथ के निकट परवर्ती टेंटण पा मही पा भादे पा ही नहीं 950 ई और 1000 ई तक ऐसे विचार बहुत ही स्पष्ट रूप हमें शान्ति पा के अतिरिक्त योगीन्दु और रामसिंह इत्यादि में प्राप्त होते हैं जो स्वयं सिद्धों की गणना में नहीं आते । सम्भवतः इन्हीं कारणों से गोरखनाथ भी सिद्धों की सूची में बौद्ध नामों के बीच में ही बिना भेदभाव के गिना दिए गए हैं । करुणा और अहिंसा के ऊपर प्रायः सभी की रचनाओं में बहुत जोर दिया गया है । एक विषय के कारण ही बौद्ध सिद्धों और गोरखनाथ में बहुत बड़ा भेद है और वह स्त्री के प्रति है । जहाँ बौद्ध सिद्ध वासना और मोह से परे होते हुए भी भोग में ही निर्वाण खोजते हैं और इसे वे आध्यात्मिक रूपकों में भी प्रकट करते हैं गोरखनाथ आध्यात्मिक रूपकों में तो स्वयं भी इसे प्रकट करते हैं किन्तु वैसे साधना और व्यवहार में वे इसके कट्टर विरोधी हैं । अपनी साधना के पथ को गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में बहुत विस्तार से दिखाया है किन्तु जहाँ साधना की निष्पत्ति का सुख उन्होंने वर्णन किया है उसमें आनन्द की वैसी ही विभोर तन्मयता दिखाई देती है जैसी भादेपा के इस पद में

एत काल हांउ अच्छिअ स्वमोहें । एवें मइ बुज्झिअ सद्गुरु बोहें ।
एवें चिअ राअमोह णठा । अणुत्तर समुद्दे टलिआ पइठा ।
पेखमि दह दिह सर्वइ शुन्न । चिअविहुन्ने पाप न पुन्न ।
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ । मइ अहारिल गअणत पणिआ ।
भादे भणइ अभागे लइआ । चिअ राअ मइ अहार कइआ ।

तभी आगे चलकर योगीन्दु ने उस निरंजन योग की चर्चा करते हुए लिखा है

देउ ण देउलें णवि सिलएँ णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम-चित्ति ।

गोरखबानी में प्रयुक्त उलटबाँसियाँ

गोरख के वचनों में अनेक स्थानों पर उलटबाँसी का प्रयोग किया गया है । उलटबाँसी के प्रयोग के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं

1. आत्मानुभूति स्वसंवेद्य होने के कारण उसको सरलता से समझा देना अत्यन्त कठिन था । इसलिए ऐसे रूपकों का सहारा लिया जाता था जिनमें कुछ असाधारणता का आभास मिले ।

पांच सहंस में घट अपूठा सप्त दीप अष्ट नारी।
नव खंड पृथी इकवीस मांही एकादसि एक तारी।

शेष पद का भाव सरल है

अवधू सायर कंधे पाणीहारी नगरी कंधै नगरा।
घर का गुसांई कोतिग चाहै चाहे न बंधी चौरा। (टेक)
लूंण कहै अलूंणा खाबू घृत कहै मैं रूषा।
अगनि कहै मैं प्यासा मूवा अन कहै मैं भूखा।
पावक कहै मैं जाडण मूवा कपडा कहै मैं नागा।
अनहद सबद बाजै तहां पांगुल नाचन लागा।
आदिनाथ विहुलमिया बाबा मछिन्द्रनाथ पूता।
अभेद भेद भेदीले जोगी बदंत गोरष अवधूता।

× × ×

अवधू अहूंठ परबत मंझार बेलडी माड्यो विस्तार।
बेली फूल अमी फल बेलि अठै मोत्याहल। (टेक)
सिष्टि उतपनी बेली प्रकास मूल न थी थड़ी आकास।
दरब मोड लियो विसतार जोगीन जोसी करै विचार।
आइठो भील पारधी हाथ नही पार व्यंगुलो मृग दीठ न जाही।
हयो हयो मृगलो चुणही न तही घंटा सुर तिहां नाद नाही।
भीलडी तिहा तारियो बाण मन ही मृगलो बेधियो प्रमाण।
हयो हयो मृगलो बेधियो बाण पुरुही बास न थी सर ताण।
भीलडी माठमी राणी मृगलो भाणी ठाणी।
चरण बिहूणो मृगलो आम्यो सीस सीग मुष चाइ न आम्यो।
भणत गोरषनाथ मछिंद्र ना पूता मारयो मन भया अवधूता।
याहि हियाली जे कोई बूझै ता जोगी कौं त्रिभुवन सूझै॥

× × ×

चीटी केरा नेत्र मैं गजेन्द्र समाइला।
गावडी कै मुष मैं बाघला बिवाइला।
बारे बरसै बंझ ब्याई हाथ पाव टूटा।
बदंत गोरषनाथ मछिन्द्र ना पूता।

× × ×

संख्या	गोरखबानी के रूपक	अर्थ	अन्य कवि	पंक्ति (तुलनीय-भेद और समता-दोनों के दृष्टिकोण से)
1	गगन सिषर	आकाश मण्डल ब्रह्म-रंध्र	सरहपा	सुण्ण तरुवर सिअकस्स चहि पुण मूलस धाइ। तहि अलभूमा जो करइ, तसु पडिमिज्जइ काइ।
2.	शून्य	,,		
3.	अंबर	,,		
4.	गगन		दारिकपा	गगनक्क गअनइ चिए महासुहे विलसइ दारिक गअणत पारिम कूले।
5	शिवपुरी			
6.	अतीत	,,	मोपीमु	अलिअए पुण्णपुण्ण पाठ बहु, अलिअए हरिसु विसाउ।
7	शून्य	,,		अलिअए एक्कुवि दाषु बहु सोवि खिरंजणु भाउ।
8.	डूगरि	,,	शबरपा	ऊचा ऊचा परबत तहि बसइ सबरी बाली।
9	दसम द्वार	ब्रह्मरंध्र		
10	औह	ब्रह्मरंध्र		
11	बालक	ब्रह्म निरंजन	तिलोपा	बण माणेइ भेउ जो जाणइ। सो इह जम्महि मोह मलिज्जइ।
12.	हीरा	ब्रह्म निरंजन	तिलोपा	
13	भण्डार	महासुख		हेउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहु अण सुण्ण णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण्ण।
14	भमर	शून्य सुख		
15.	विमल कमल	अमृत	कण्हपा	विमल सलिल सौं स भाइ कामिनि पइट्ठइ।
16.	चन्द्रमा	,,		
17	पूर्णिमा	,,		
18.	नीझर झरिया			
19	नीर			

44	लोई	माया		
45	सुरसा			
46.	मट्ठा	निस्सार भाविक वस्तु		
47-48.	शिशुपाल सूर	काल	सुईपा	काया तरवर पंचविकार। पंचम चीए पट्ठा काल।
49-50	मद्मर बाघ	मृत्यु		
51	सिर्दौसी	मायामय मूल		बैपंच साप बहुहिस बाप।
52.	गाय	आत्मा	टेंकरपा	दुहिल दुनु कि बेन्टे समाप।
53.	लाला	नारी		बलद बिमायम मबिया चाँके।
54.	मनकी	चिमता		पिटु दुहिमद ए तिनो साँके।
55-56.	घट माँगा	शरीर	कम्हपा	काम्ह कपाली जोइ पइठ अचारे।
57-58.	पहुठ पटए	,,		देहि न धरि बिहरइ एक कारें।
59-60.	नगरी बयारी			
61	कामधेनु	आध्यात्मिक अनुभूति		
62	सीता	आत्म-तत्त्व		
63.	मूसा	सूक्ष्म अंतर्मुख जीवन	मूसुकपा	मूसा। पवन। भार रे जोइया मूसा पवना। जेण तूटइ अवसा गवणा।
64	पाताल	स्वाधिष्ठान चक्र		
65	माणिक	कैवल्य		
66-67	शब्द, नाद	अनहद	कम्हपा	अनहा डमरु बजइ बिरनाटे।
68.	समुद्र	गुरु	सरहपा	नावहि नौका टानअ गुणे। सदगुरु वअणें धर पतवाल।
69.	पंचवेग	पंचेन्द्रियाँ		
70-71	बइरा गाहु	मूलाधार सूर्य		

इनके अतिरिक्त अनेक रूपक पुस्तक में बिखरे पड़े हैं। जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—कामदेव—चोर पाणि—सिद्धि हंसा—आत्मा घाटी—द्वार, चन्द—सूर, गज चमन—दशा चिमना कोठी—समाधि तेल—वायु, मूसंचल—श्वास सुण्डी करि—सुषम्ना दीया—जीवन बावली—स्त्री पड़रवा—

माया का पुत्र कली फूल=यौवन भरा समन्द=संसार में बहने वाला भी बछवा=जी रूप।

लोकोक्तियाँ

देश भाषा में लिखने का मुख्य कारण यह था कि जन साधारण उस भाषा को समझ जाएँ। सो गोरखबानी में अनेक लोकोक्तियाँ हैं जो काव्य और साहित्य को अत्यन्त सजीव बनाने वाली हैं।

जब दूसरा आग हो तो स्वयं को पानी के समान होना चाहिए यह सन्त परम्परा का अत्यन्त प्राचीन कथन है

पाखिला अगनी होइबा अवधू
तो आपण होइबा पाणीं।

माया को छोड़कर दूर होना चाहिए, लंका राक्षसों की नगरी है। उसके परे जाना ही ठीक है

लंका छाडि पलंका जाइबा।

ग्राम अपने समय के प्रति सदैव ही चेतन की यह सीख रही है।

यहु जुग है कांटे की बाडी देखि देखि पग धरणां।

निश्चिन्तावस्था का परिचय है

अपणीं आत्मा आप बिचारी।
तब सोवौ पाँव पसारी॥

पाँव पसारना अब भी चलता है।

गोरखबानी में कुछ-एक सबदियाँ ऐसी हैं जिनको स्वयं लोकोक्ति कहा जा सकता है

कहणि सुहेली रहणि दुहेली
कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुण्या सूवा बिलाई खाया
पंडित के हाथ रह गई पोथी॥

तथा

कहणि सुहेली रहणि दुहेली
बिन षायां गुड़ मीठा।
खाई हींग कपूर बषाणै
गोरष कहै सब झूठा॥

और

हिरदा का भाव हाथ मैं जाणिये
यहु कलि आई षोटी।
बदंत गोरष सुणो रे अवधू
करवै होइ सु निकसै टोटी॥

जो लोटे में होगा वही तो टोंटी से निकलेगा ।

आलस्य के लिए कहते हैं

सूते पंथल भटकत फिरही मारि लिही बटमारै ।

यदि आप ठीक हैं तो सब ठीक है ।

अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा ।

पढ़-लिख कर ज्ञानी बने बिना क्या लाभ

सीषि साषि बिसाह्या बुरा
सुपिनें मैं धन पाया पड़ा ।
परषि परषि लै आगी धरा
नाथ कहै पूता पोटा न खरा ।

इसी से आगे उन्होंने फिर कहा है

काची गगरी नीर न पीजै ।

अब भी प्रसिद्ध कहावत है—बैठा बनिया तोले बाट । अथवा—बेकार मत जिया कर, पजामा उधेड़ कर ही सिया कर । जोगी कहता है—

नाभिका पवन के सीवां कंथा ।

कबीर में जैसा भाव है—आलसी की नहिं बोरियाँ आयु न आवे अमात ।
यहाँ निम्नलिखित है

घटि घटि गुप्ता ग्यान न होइ ।
बनि बनि चंदन रूष न कोई ।

इसी से—

ग्यान सरीषा गुरु न मिलिया
चित्त सरीषा चेला ।
मन सरीषा मेलू न मिलिया
तातै गोरष फिरै अकेला ॥

गुरु को जिसने नम्र होकर खोजा

तिन सर की पोट उतारी ।

अन्यथा लोगों की तो अद्भुत अवस्था है ।

भिक्षर आई रूठी बैठावै
स्वामी माया और मँगावै ।
सुंदरि आई भगनी मानै
ताह गोरष प्रणवै ग्रामै ।

क्योंकि

बूझा न जोगी गुरु न कीं कहूँ पार ।

और वे संसार को चेतावनी देकर कहते हैं

ऊनमनीन सदा रहै मन मैं गुरुर मरा मनीना ।
आसन ध्यान दया विधि गहु माहीं महा मया तन पीणा ।

अपने शिष्यों को एक आदेश है

तीनि अर्थों का संग निवारो महदा भूषा भाना ।

संक्षेप में यह कहना उचित है कि गोरखबानी में ऐसी अनेक लोकोक्तियाँ हैं जिनके कारण प्रभाव मधीयता बनी रहती है ।

गोरखनाथ के विचार वाणी तथा कवित्व

अनहद को देखना ही गोरख का काम है और देखकर ही वह सन्तुष्ट नहीं होते उस पर विचार भी करते हैं। ऊपर पाताल को मेना ब्रह्माण्ड में चढ़ रही है और त्रिभुवन पास लिया जा रहा है। यहीं है अस्तित्व यहीं सम है यहीं ही तीनों लोकों का सृजन हो रहा है यह अद्भुत बात छोटि बात है, इसीलिए तो अनन्त सिद्ध योग-पथ में योगेश्वर होते हैं।

अनभै बिनाणी कोइ दीपक
रचिले तीनि भवन इक जोती ।
तास विचारत त्रिभुवन सूझै
चूणिल्यो माणिक मोती ॥

वाद विवाद व्यर्थ है सार में भी सार मिल गया है। गर्व न करो सहज ही रहो। कबीर ने भी कहा था

सहज सहज सब कोई कहै सहज न समुझै कोई ।

गोरख बहुत पहले यही कह चुके हैं। आत्माभरा ही 'मनसमन्ति' की उपाधि पाता है। भरा हुआ तो स्थिर है। शरीर एक मठी है। मन रूपी जोगी उसमें रहता है। उसने अपने लिए पच तत्व की कंथा बनाई है। क्षमा बाघासन है, ज्ञान उसकी अधारी है अच्छी बुद्धि खड़ाऊँ है विचार उसका डंडा है

यहु मन सकती यहु मन सीव यहु मन पांच तत्त का जीव ।
यहु मन लै जै उनमन रहै तो तीन लोक की बार्ता कहै ।

पण्डित तुमने पढ़ा ! ठहरो और उसका सार समझो। करनी के बिना कोई पार उतरा है ? गोरखनाथ कहता है मैं किस को साखी बनाऊँ। घट-घट के भीतर दीपक जल रहा है। हाय पशु फिर भी आँखों से नहीं देख पाता। मुझे साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। अब तो कोई भी सन्देह नहीं रह गया। सब पर विश्वास फैल गया है। नीचे के कमल में से ऊपर वाले के बीच प्राण पुरुष का वास होने लगे तब प्राण-वायु ऊपर चढ़ने लगेगा तब ही ज्योति का प्रकाश होगा। आसन से बैठना पवन का निरोध करना त्याग और मान अपना महत्व रखते हुए भी वास्तव में सब व्यर्थ है जो आत्मा को विचारता है उसे ही सब कुछ ऐसे दिखाई देने लगता है जैसे जल में चन्द्रमा का स्वच्छ

प्रतिबिम्ब है। हे प्रवधूत पाँचों इन्द्रियों का निवारण करो ! अपनी आत्मा का स्वयं चिन्तन करो तब चिन्तारहित हो जाओगे तब पाँव पसारकर सो सकोगे। बहुत दिन बाद कबीर ने कहा था कि जब तक माया तब तक ब्रह्म नहीं जाना था जब ब्रह्म को जान लिया तब मन को कुछ नहीं रहा। यह विभोर आनन्द है। इसकी तन्मयता प्रत्यक्ष है आहार कम करो। नींद को तोड़ दो। शिव और शक्ति का मिलन करो जब अनाहत नाद उठने लगेगा तब कंठ को त्रिभुवन में भी कोई बाधा नहीं होगी।

हे नाथ जंजाल छोड़ो ! प्रमृत पान करने से मनुष्य बालक हो सकता है। गोरखनाथ अद्भुत बात कहता है कि ब्रह्माग्नि से मूल को सिंचित करने से खिला हुआ फूल भी फिर से कली हो गया। नियम है कि खिला हुआ फूल सदा झर गया किन्तु नाथ की तो कालवंचिनी विद्या है। सोलह कला वाली नाड़ी में सूर्य है। सहस्रदल में प्राण पुरुष का मेल हो रहा है। वहीं असंख्य कलामय शिव का स्थान है, देवालय माता-शून्य माता है वीर्य-माता पानी की माता है शुक्ल माता तो अतीत की माता है। शिव और शक्ति का जब तक परिचय नहीं हुआ तब तक किसने क्या पाया है ! काल क्या साधारण है! भयानक है उसकी चुनौती। पुरुष को वह घेरे हुए है। उसने स्त्री बनाकर उसकी आयु क्षीण करने के लिए अपना जाल फैला दिया है। मूर्ख हैं वे जो पुरुष के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरुष के कल्याण की चिन्ता भी नहीं कर सकते। स्त्री और पुरुष के इस अन्धविश्वास के कारण कि वे प्रखण्ड हैं दोनों ही घोड़े की सवारी पर नष्ट हो गए हैं। लोग कहते हैं कि पुरुष और स्त्री अपनी जननेन्द्रियों के भेद के कारण अलग अलग हैं। मूर्ख हैं वे। यह तो नपुंसकता का चिह्न है कि मनुष्य के ऐसे विचार हों। स्त्री क्या मन ही के कारण स्त्री है। नहीं वह काम म बांधने वाली है। स्त्री तो दीक्षित हो या योगिनी पास बैठी अच्छी नहीं लगती। योगी को तो अकेला रहना ही ठीक है। निद्रा भी तो गोरख से हार मान गई है। अब न उदय है न अस्त न रात है, न दिन। इस चराचर विश्व में भाव नहीं है। भिन्नता नहीं है। वही निरंजन शेष है। मूल और शाखा के भेद उपभेद भी कुछ नहीं। वह न सूक्ष्म है न स्थूल। सर्वव्यापी है। ब्रह्माण्ड को फोड़ दो। फिर उस शून्य की नगरी में लूट मचा दो। भेद नहीं समझ रहा है कोई भी। पहले शरीर-रूपी घर को घेर लो तब ही पाँच देव अर्थात् इन्द्रियों को पकड़ा जा सकेगा।

बल के संयम से आकाश धारण हो जाता है। मन के संयम से प्रकाश पवन के संयम से नवद्वार बन्द होते हैं। बिन्दु के संयम से शरीर स्थिर हो जाता है। हे अवधूत शब्द का बीज जो शब्द को प्राप्त करो ! कोई निन्दा करता है कोई वन्दना कोई हम से आशा करता है। पर गोरखनाथ कहता है

कि हमें कोई चिन्ता नहीं। हमारा पंथ पूरा है। हम सब के प्रति निरपेक्ष हैं। यही भाव है—मायामायाविनिर्मुक्त। राह चलत चलत पवन टूटता है नाद बिन्दु और वायु में गड़बड़ पड़ जाती है। भो भाई! तू कहाँ जा रहा है? अड़सठो तीर्थ तेरे घट के ही भीतर हैं। कहा था यही कहा था सरहपा ने सिद्धों ने। यही गोरख कह रहा है। कबीर ने फिर-फिर यही कहा। पाखण्ड है यह सारा। ब्राह्मणवाद की नकल नहीं करना चाहते थे लोग।

जहाँ गोरख है वहाँ ज्ञान की गरीबी है। वह कभी अहंकार नहीं करता। पर द्वन्द्व और वाद विवाद वहाँ नहीं है। जो निस्पृह है जो बिना दाँव के खेलता है उसी को गोरख समझ लो।

बिन्दु-बिन्दु सब कोई कहते हैं। किन्तु महाबिन्दु को तो कोई विरला ही प्राप्त करता है। बिन्दु को वीर्य कहकर जो बंध आदि किया करते हैं उनका बंध भी किसी ने स्थिर होते देखा है! खाली वीर्य की रक्षा नहीं स्वयं ब्रह्म की अनुभूति की आवश्यकता है। अपने मस्तिष्क से काम लो। पाँच कटारें शरीर के भीतर-ही भीतर तुम्हें घायल करती चली जा रही हैं। सृष्टि का तो एक ही द्वार है पुरुष बैसता है पूत निकलता है। गोरख को यह अच्छा नहीं लगता। तभी उसने संसार की स्त्रियों को माता कहकर वैराग्य ले लिया है। हे अवधू! सहज लो सहज दो सहज से प्रीत करो उसी से लौ लगाओ! सहज सहज अमर चलोगे तो तुम्हारा पात्र स्वयं भरता जाएगा और अधिक तत्त्व तुम्हारे भीतर समा सकेगा। तुंबी में तीनों लोक समाये हुए हैं। सूर्य चन्द्र बिजली सब उसी के भीतर हैं। हे ब्रह्मज्ञानियो अनंत अनाहत नाद को सुनो। समझो! यह लभी माया की है। नाद से उसे काट डालो। मन को बाँधूँगा। पवन को बाँधूँगा। दोनों को एक-दूसरे से बाँधूँगा। और हे मन मैं तेरी माँ (माया) को मूँड़ूँगा। पवन को बहा दूँगा। मन! जब तेरी माँ को चिप्पा बना डालूँगा तब न मन का गमन रहेगा न पवन का। वहाँ कोई भी नहीं पहुँच सकेगा जहाँ गोरख लौ लगाकर बैठा होगा।

नाथ कहता है—मेरे दोनों पथ पूरे हैं। शरीर भी और मन भी। जत और सत के बिना कोई शूरवीर नहीं हुआ। यही जत-सत हमारी रहनी है। हे देवि! हे माया! हम नहीं बलि और बकरे तुम्हारे हैं जे माया में फँसे हुए हैं।

गोरखनाथ अन्य साधुओं की भाँति नहीं है

पाखंडियाँ पथ जिनसे अवधू जोहि जीवत काया।
नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया।
दूधा धारी पर घरि चित नागा लकड़ी चाहै नित।
मौनी करै म्यान की आस बिन गुर गुदड़ी नहीं बैसास।

परम तत्त का होय न मरमी ।
गोरख कहै ते महा श्रमरमी ।

श्रौर योगी फिर एक श्रद्भुत प्रश्न पूछ उठता है

काया तै कछू श्रगम बतावै
ताकी मूई माई ।

जीव श्रौर ब्रह्म साथ रहते हैं इसलिए श्रम करके रुधिर श्रौर मांस मत खाश्रो । हंस का श्रर्थात् प्राण का घात न करो सब को 'करिबा गोत' श्रपने गोत्र का समझो । गोरख कहता है श्रपने पुत्रों को देखो श्रर्थात् सब को श्रपने पुत्र जैसा समझो

जीव क्या हतिये रे प्यंड धारी मारिलै पंचभू श्रगमा ।
चरै धारी बुधि बाड़ी जोग का मूल है दया दाण ।
कथंत गोरख मुकति लै मानवा मारिलै रे मन द्रोही ।
जाकै श्रप करण मांस नही लोही ।

नाथ कहता है

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा कथि कथि कथि कहा कीन्ह ।
बढ़ि बढ़ि बढ़ि बहु घट गया पारब्रह्म नही चीन्ह ।

नाथ को इसका ध्यान रखना चाहिए क्योंकि

पढ़ित भढ़ित घर बतबारी पलटी सभा विकमता नारी ।
श्रपढ़ डिपर जोगी घरबारी नाथ कहै रे पूता इनका सग निवारी ।

श्रौर सबसे श्रलग रहने वाला योगी स्वयं श्रपने-श्राप से प्रश्न करता है

कोण देस स्यूं श्राये जोगी कहा तुम्हारा गाव ।
कोण तुम्हारी बहुण माणजी कहा धरोगे पाँव ।।

उत्तर है ! श्राया श्रर्थात्—

पश्चिम देस स्यूं श्राए जोगी उत्तर (ब्रह्मरन्ध्र) हमारा गाव ।
धरती (कुण्डलिनी) हमारी बहिण माणजी पापी के सिर पाँव ।।

योगी पूर्ण विश्वास से कह उठता है —

श्रवणि कथै सो सिष जोगियैं बैद पढ़ै सो नाती
रहणि रहै सो गुरु हमारा हम रहता का साथी ।
रहता हमारे गुरु बोलियै हम रहता का चेला
मन मानैं तो सग फिरैं नहिं तर फिरैं श्रकेला ।
जिनि जाण्या तिनि पद्या पहैचाण्या
का श्रग्न स्यूं लौ लाई ।
गोरष कहै श्रम काया मुगता
तो श्राप्यां देष्यां रे भाई ।।

मन में कम कमल रस भरिया तेणीं
मन में मलप लपाया मेरे स्वामीं।
पर कोई ने जम्या पुरिप पधारया पुरिष भी पागिया पाई।
पुरिषे मिलि पुरिप रस राष्या
पुरिषै पुरिप लिपाया मेरे स्वामीं।
जिहि घरि चंद सूर नहिं ऊगै तिहि घरि होसी उजियारा।
तिहां जे प्रासण पूरी हौ सहज
का भरी पियाला मेरे स्वामी।
मन माहिलां हीरा बींधा सो
सो सोची मे सीया
मो पीणीं सो पीवणीं
मछिन्द्र प्रसादै यती गोरष बोल्या
विमल रस कोई कोई मे मिलणीं मेरे स्वामीं।

अब गोरख जोगी सोने-सोने का व्यापार करने लगा है। पाये बड़-बड़कर वह अमूल्य रत्न को गाँठ बाँधता है। और गोरख की आवाज गूंज रही है।

सोना लो ! मुझ से रस रूप सोना लो। मेरी जाति सुनार है। बाँकनी को बाँका रस का बनाया अब गगन में महारस मिला है। अब ऊपर, मध्य नीचे सब स्थान पर सोना ही सोना हो गया।

यों मेरी इच्छा तू अपना व्यापार प्रारम्भ करदे। प्राणपुरुष उत्पन्न हो गया।

मनसा मेरी व्यौपार बाधी पवन पुरिष उतपना।
जाम्यी जोगी अभ्यारम लागी काया पाटण में वास्या।

काया-रूपी नगर में वह प्रवेश करेगा

मांहुरा रे बैरागी जोगी
अहिनिसि जोगी जोगणि सम न जाई।
मानसरोवर मनमा झूमती आवै
गगन मंडल मठ मांड रे। (टेक)
कौण अस्थानिकि तोरा बापू मे गुमरा
कौण अस्थानक तोरा बासा।
कौण अस्थानक तू मैं जोगणि पैटी
कहाँ मिल्या घर बासा।
नाम अस्थानक मोरा बापू मैं गुमरा
नाभ अस्थानक मोरा बासा।
इला प्यगुला जोगण मैंटी
सुषमन मिल्या घर बासा।

आवागमन भ्रम का मार्ग है पुरुषों (सिद्धों) का बताया हुआ मार्ग पचती है।

सबद अतीत अनाहद बोलै अंतरि गीत समाया।
झिमल पंच बीजल ज्यूं चमकै सरहुरती मन पावे।
ता रहणी मैं जोगी का घर अनहद बाजा बाजै।
या पद मंदिर बसा कराहुरै मठी सवारै चेला।
कोटि कला जहां अनहद बाणी बाजै पुरिष अकेला।

'विकार' और 'भोग' के अनेक कारण आते बने रहें किन्तु फिर भी साधना देखने में असमर्थ हो जाए।

जो जन पातरि भागी नार्वे पीछै सहज अपारा।
ऐसे मन में जोगी रसै तब अंतरि बर्से भंडारा।
जहां नहीं तहूँ सब कुछ देख्या कहां न को पतिआई।
दुविधा भाव तबै ही भाग्या बिरला पया समाई।

शताब्दियों तक भारत के गगन में गोरख का यही प्रश्न गूँजा किया।

बसती न सुन्य सुन्य न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महि बालक बोलै ताका नांव धरहुगे कैसा।

कोई न दे सका इसका उत्तर। सन्तों ने फिर पूछा और कोई दिन तक गूँजकर वह शब्द शून्य में जाकर लय हो गया जो मनुष्य की मेधा से भी अधिक मौन निस्तरंग और निष्ठुर है। सन्धि-युग का दुर्बलता इस्लाम की सेनाओं की पदध्वनि में खो गया। स्वयं जैसे महाकवि विस्मृत हो गए। गोरख की महत्ता को लोग भूल गए और भारत के इतिहास का एक महान् युग काल के गम्भीर समुद्र में एक लहर बनकर खो गया।

गोरख का चेतन संसार को जाग्रत करने के लिए बार-बार पुकार उठा है—क्यों है यह मनुष्य दुखी? शंकर ने भी पूछा था—तूं कहां से आया है, तूं कौन है? नलिनी-दल पर फिसलते जल की भाँति तरल है यह अतिशय चपल जीवन। सारा लोक शोक से आहत है। और गोरख ने अपनी समस्त शक्ति को एकत्र करके कहा—पाँचों पवन सब कुछ है सब का अपना महत्त्व है किन्तु सब से बढ़कर मनुष्य पवन के समान है यदि निरपेक्ष दृष्टि से देखा जाए तो क्या यह सेवरनाद यह निरंजन महाशून्य की भावात्मक अथवा अभावात्मक अथवा दोनों से अतीत अनुभूति नहीं है? शंकर के विषय में विवर्त थी उनकी चरम लय की विचारधारा से सब लोग अत्यन्त प्रभावित हैं किन्तु क्या गोरख का विचार उससे कम है? शंकर का समाज अलग है पर बात सरल लगती है वह तो अद्वैत पर ही रुक गए हैं। द्वैताद्वैत से परे गोरख का शरीर-ज्ञान से परे होकर उससे भी दूर जा बैठना कितना कठिन है! इतिहास

में ढूँढने पर भी भारत में एक भी ऐसा महापुरुष नहीं मिलेगा जिसका ऐसा ईश्वरत्व अपनी चरमावस्था में निरंजन था अथवा कहा काम ईश्वरत्व नहीं भेद नहीं था। वहाँ तन की आवश्यकता नहीं। पर काया से बढ़कर और क्या है? कहाँ है? गोरख स्त्री को त्याज्य समझता है पर वह उसकी माँ है।

मायो माई बरि बरि बाबो,
गोरष बाला भर भर पावो। (टेक)
भरै न पारा बाजे नाद
ससि हर सूर न बाद विवाद।
पवन गोटिका रहणि अकास
महियल अंतरि गगन विलास।
पयालनी डीबी सुमि चढाई,
कथंत गोरखनाथ मछींद्र बताई।

यह राह मछिंद्र ने बताई है। हे मन हीरे से हीरा बेध दिया है तो काया में कौन जाए। क्यों जाए? गगन मिंदर में चन्दा समा गया है सिद्ध गोरख तो अब जग नदी के पार उतर गया है और वह कह रहा है —

जागो हो जोगी अध्यातम जागी
जागतडा मूल म हारो म्हारी माई रे।
अंबरि बैठो अपणी साहिब
देवै सोभै सकल समाई रे।

परीक्षक भीतर बैठा है। हे योगी जागते रहो! जागृति के मूल को भूलो मत।

गोरखनाथ की काव्य-शैली का निम्नलिखित रूप से विश्लेषण करना उचित जान पड़ता है

(1) गोरखनाथ ने पद और सबदी का प्रयोग किया है। कुछ अन्य रचनाएँ उपदेश के रूप में हैं। भाषाएँ बहुत मिल गई हैं।

(2) गोरखनाथ की शैली में जहाँ एक ओर बात सीधा प्रहार करती है, वहाँ दूसरी ओर सीधा प्रहार तो दूर उसका आसानी से समझ में आना भी कठिन है क्योंकि वह रहस्य में डूबी हुई भावनाओं को बताती है। उलटबाँसियों का प्रयोग काफ़ी हुआ है।

(3) रूपक बहुत प्रयुक्त हुए हैं, अलंकार वही लिये हुए हैं जो घूम-फिर कर लौट-लौट कर आते हैं।

(4) पूर्ववर्ती सिद्धों से यह काव्य के क्षेत्र में संस्कृत हो या हिन्दी अधिक नहीं बढ़े हैं। प्रायः उनकी शैली वही है जो पूर्ववर्तियों की थी।

(5) केवल विचार और दर्शन के भेद के कारण उनकी अभिव्यंजना में भेद आ गया है जो अपने आप में महत्त्वपूर्ण होते हुए भी तुलनीय रूप में कोई अधिक महत्त्व नहीं रखता।

(6) तत्कालीन जैन तथा ब्राह्मण धर्मों का दृष्टिकोण रखने वाली कविता जहाँ तक अपने अपने सम्प्रदाय से ही सम्बन्ध रखती है वहाँ वह गोरखनाथ के समान ही संकुचित और बद्ध है। किन्तु जो कवि सार्वभौम शासन के प्रश्न पर चलते थे उन्होंने कहीं अधिक अच्छी कविता की है उनका दृष्टिकोण कहीं अधिक विस्तृत था।

(7) संवाद की प्राचीन परम्परा का पहला उदाहरण नाथ-सम्प्रदाय की कविता ही हिन्दी में उपस्थित करती है। इसके बीज गोरख की कविता में भी मिलते हैं जहाँ योगी अपने आप से प्रश्न करके स्वयं उत्तर देता है।

(8) रहस्य की भावना के कारण उत्पन्न दुरूहता में ही काव्य का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो सका है। अन्य तो सीधे-सीधे से उपदेश हैं जिनमें व्यंजना नहीं अभिधा ही मूल शक्ति है।

(9) समाज तथा अन्य जो भी विषय गोरख की कविता में प्रतिबिम्बित हुए हैं वे इन्हीं रूपकों के सहारे आकर आकर्षक रूप में उपस्थित हो सके हैं।

(10) वस्तु-तथ्य के दृष्टिकोण से गोरख का बहुत बड़ा महत्त्व है क्योंकि उनके विचार ने ही भारत का इतिहास एक विशेष दिशा में मोड़ दिया था। इस पर फिर लिखना अनावश्यक है क्योंकि हम दर्शन विचार तथा उनकी देन को देख चुके हैं। भारतीय इतिहास में उनका महत्त्व आगे कुछ विस्तार से देखना आवश्यक होगा।

(11) काव्य की दृष्टि से शैली में विशेष नवीनता नहीं होने पर भी यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गोरखनाथ हिन्दी के एक सन्धि-युग के कवि थे। उनकी भाषा की एक विशेष देन भी यह उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त कबीर तक का इतिहास स्पष्ट हो जाता है। न केवल काव्य के दृष्टिकोण से वरन् इतिहास के दृष्टिकोण से भी। सन्त-काव्य की पृष्ठभूमि सन्त कविता का मूल स्रोत तथा उसकी विशेष शैलियों का उद्गम स्पष्ट हो जाता है। सम्प्रदाय का इतने दीर्घ समय में कितना बड़ा महत्त्व था यह गोरख तथा उनके अनुयायियों की कविता की मात्रा प्रकट करती है जो आज उनके नाम से हमें प्राप्त होती है।

(12) हिन्दी-कविता की भक्तिकालीन शैलियों का स्रोत भी इसी कविता

मे है। झूलणांत और चौपाईयों चौपाइयों का भी गोरखबानी में प्रयोग हुआ है।

(13) गोरखबानी का काव्य-सौन्दर्य यदि एक ओर उनकी लोकोक्ति समृद्ध बानियों में है कि वे उपादेयता के दृष्टिकोण से नैतिक साहस प्रदान करती हैं तो दूसरी ओर सत्य की उस पुकार में जो जितनी ही दुरूह होती है उतनी ही ऊँची उड़ान लेकर व्यक्ति को विमोहक विस्मय में डाल देती है।

(14) निस्सन्देह गोरख की कविता एक अलंकार-मात्र नहीं है वह मनुष्य को ऊपर उठने की प्रेरणा देती है। सहमत न होकर भी मनुष्य यह अनुभव करता है कि बात ऊपरी नहीं है उसके पीछे एक प्रेरणा है विश्वास है और वह विश्वास किसी का जीवित विश्वास है जिसने कहने वाले में अपार शक्ति भर दी है।

नाथ-सम्प्रदाय की कविता

नाथ-सम्प्रदाय की कविता का गोरखनाथ की कविता से भी अधिक मूल्य है। गोरखनाथ की कविता में योगी-सम्प्रदाय के चिन्तन का एक उत्कर्ष है। उनके पूर्ववर्तियों के विचारों का प्रतिबिम्ब उनमें स्पष्ट है। किन्तु नाथ सम्प्रदाय की कविता एक व्यक्ति के नहीं अनेक व्यक्तियों के परिश्रम का फल है जो गोरखनाथ के नाम के आगे अपने व्यक्तित्व को नहीं उठा सके और सम्प्रदाय के आचार्य के प्रमुख में उनकी सत्ता विलीन-प्राय हो गई। यह कविता इसीलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है। गोरखनाथ को अपने पूर्ववर्तियों का खण्डन करके अपने को उठाना पड़ा। परवर्ती शिष्यों ने गोरखनाथ को घर घर में पहुँचा दिया इसमें उन्हें अनेकपन्थियों से टक्कर लेनी पड़ी। खण्डन सामंजस्य और मेल-मिलाप करते हुए नाथ अपने पंथ को फैलाने के प्रयत्न में लगे रहे। गोरख के अनन्तर न केवल 1100 ई० वरन् कबीर तक ये ही लोग अपना प्रभुत्व जमाए रहे। जो मठ मन्दिर अखाड़े तथा अनेक जातियाँ गोरखनाथ के नाम से सम्बद्ध हैं उनके लिए वास्तव में यही लोग उत्तरदायी हैं।

इस्लाम का प्रवेश इनके युग में अपनी दो परिस्थितियाँ सामने रखता है। 1100 ई० तक इस्लाम का साधु रूप जिसमें इसका उन लोगों से खूब बहसें होती रहती। दूसरा रूप इस्लाम का विजयी शासक बनकर बढ़ना। इस्लाम ने जो भारत के धर्मों के भेद को न समझकर भारत में रहने वाले मात्र को हिन्दू कहा प्रारम्भ से ही योगी ने इसका विरोध किया। यह आवश्यक था कि—

उतपति हिन्दू जरणा जोगी अकलि पीर मसलमानी।
ते राह चीन्हों हो काजी मुलां ब्रह्मा बिस्नु महादेव मानी।

हिन्दू तो जोगी जन्म से है। अपने पचाने की शक्ति से वह अब जोगी हो गया हिन्दू नहीं रहा। पीर अर्थात् गुरु-भक्ति को समान रूप से स्वीकार करने के कारण वह मुसलमान है। उस राह को पहचानो जिसे हे मुल्लाओ और काजियो! ब्रह्मा विष्णु तथा महादेव तक ने माना है।

स्पष्ट ही पृष्ठभूमि में भारत की संस्कृति और इतिहास बोल रहा है।

राम-सम्प्रदाय बढ़ता आ रहा था। उधर मुसलमान बढ़ रहे थे। तभी जोगी ने कहा

हिंदू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद जहाँ देहुरा न मसीत॥

कबीर की भी इससे मिलती-जुलती एक सबदी मिलती है। जोगी अपने को हिन्दू-मुसलमान के पचड़े में नहीं डालना चाहता। हिन्दू का अर्थ स्पष्ट ही यहाँ ब्राह्मणधर्म का अनुयायी है। अद्भुत है यह सहिष्णुता! भारत जैसे पहले विभिन्न जातियों को पचा गया था क्या वैसे ही अब भी कोई सम्प्रदाय इसके लिए तत्पर हो रहा है? क्या जो काम पहले आर्य-सामाजिक व्यवस्था में स्थित ब्राह्मणधर्म अथवा बौद्ध सम्प्रदाय करते थे वह अब आर्य-सामाजिक व्यवस्था के बाहर स्थित एक सम्प्रदाय पूरा करना चाहता है? जातियों की भीषण उथल-पुथल हो रही है। इस्लाम दुन्दुभि नाद बराबरी का जय-घोष गुंजारित करता हुआ बढ़ा आ रहा है किन्तु नाथ-सम्प्रदाय के सामने विरोधाभास है

(1) वह अपने को ब्राह्मण धर्म के समान संकुचित नहीं पाता इस्लाम भी उसमें आ जाय तो उसे स्वीकृत है।

(2) किन्तु इस्लाम तो सब-कुछ बदल देना चाहता है। जोगी अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नहीं छोड़ना चाहता। उसे इतिहास से जड़ मोह नहीं है वह चेतन है। लेकिन जिस पद को ब्रह्मा विष्णु और महादेव मान गए, जोगी और किस को उससे बढ़कर स्वीकार कर सकता है!

वास्तव में यह एक त्रिकोण युद्ध था। अंग्रेजी का यह वाक्यांश ही इस स्थान पर अनूदित करना पड़ा है। एक ओर इस्लाम दूसरी ओर ब्राह्मणवाद तीसरी ओर जोगी। एक बराबरी का सामाजिक स्वरूप सामन्तवाद की ओर अग्रसर दूसरा ओर असाम्य और सामन्तवाद का गढ़ तीसरा बराबरी का रूप लिये किन्तु व्यक्तिवादी। जहाँ समूह भी है जो दुनियादारी से दूर। इस सम्प्रदाय को घृणा नहीं। पहला इसे भी दूसरे से अलग नहीं मानता। यह स्वयं दूसरे से ऐसी घृणा नहीं करता कि हर परिस्थिति में उसका विरोध करे। इस्लाम की विजय हुई। बराबरी का नारा हिन्दुओं पर भी असर करने लगा और

दक्षिण से उठी लहर से आ मिला । उधर पूर्व से ह्रासप्राय बौद्ध मत की अन्तिम लहर बढ़कर इसमें मिल गई । जोगी को ब्राह्मण-व्यवस्था पचाने लगी । इस्लाम भी सामन्तवाद से हार गया । अब इतिहास बदल गया । यह है नाथ-सम्प्रदाय की कविता में ऐतिहासिक प्रतिबिम्ब जो किसी भी तथ्य से अधिक सशक्त है । यही नई शक्ति भर कर कबीर में बार-बार फूट पड़ी है ।

सहिष्णु जोगी मुहम्मद को पीर मानता है—

महंमद महंमद न करि काजी
महंमद का विषम बिचारं ।
महंमद हाथ करद जे होती
लोहै घड़ी न सारं ।
सबदै मारी सबद जिलाई ऐसा महंमद पीर ।
ताकै भरमि न भूलौ काजी सो बल नहीं सरीरं ।

यह शान्तिपूर्ण अनुभव है । मुहम्मद ने लोहे से नहीं शब्द से काम लिया था । तुममें वह शक्ति कहाँ है ! यह उठी हुई तलवार को चुनौती देने का साहस भारत के बिरले ही महापुरुषों के वचनों में रहा है जिसने युग-युग से इस देश के गौरव को अक्षुण्ण रखा है । नामी कहने से क्या होता है

नाथ कहता सब जग नाथ्या गोरष कहता गोई ।
कलमा का गुर महंमद होता पहलै मूवा सोई ।

कलमा के गुरु मुहम्मद ही सबसे पहले मर गये । तभी बाबा रतन हाजी ने कहा है

ॐ लोहा पीर
तांबा तकबीर,
रूपा मोहम्मद सोना खुदाई ।
इह बिधि दुनिया गोता खाई ॥
हम तो निरालम बैठे देखत रहै ।
ऐसा एक सुखन बाबा रतन हाजी कहै ॥

गुरु लोहा है मुक्ति तांबा है, मुहम्मद चाँदी और खुदा सोना है । चाँदी और सोने के बीच दुनियाँ गोते खा रही है । पर हम निरालम्ब देखते हुए बैठे हैं । हमें क्या ! हम तो इन सबसे अलग हैं ।

नाथ-सम्प्रदाय ने जहाँ जोगी-सम्प्रदाय का संगठन किया निम्न जातियों को शक्ति दी बौद्धों को आत्मसात् करने की चेष्टा की ब्राह्मणों को चुनौती दी तथा भारतीयता का गर्व उसका अभिमान उसकी अच्छाइयों को लेकर स्थापित रखने का प्रयत्न किया वहाँ इस्लाम पर भी उसने गहरा प्रभाव डाला । इस पर हम आगे कुछ विस्तार से विचार करेंगे । किन्तु यह शक्ति

बिखरकर इधर-उधर दूर क्यों गई ? इसका उत्तर है—रहस्य की यह व्यक्तिवादी भावना जो गोरख-मछीन्द्र के संवाद में प्रगट है ।

गोरख—स्वामी कहाँ थे उठंत सास उसासं कहाँ परम हंस का वासं ।
कौंण अस्थन थिर होइ रहै सतगुर होइ सु बूझ्या कहै ।
मछीन्द्र—अवधू अरधै उठंत सास उसासं उरधै परम हंस का वासं ।
सहज सुंनि मैं मन थिर रहै ऐसा विचार मछीन्द्र कहै ।
गोरख—स्वामी कैसैं आवै कैसे जाइ कैसैं जीवा रहै समाइ ।
कैसैं मन उन मना थिर रहै सतगुर होइ स बूझ्या कहै ।
मछीन्द्र—अवधू सुंनैं आवै सुंनैं जाइ, सुंनै जीवा रहै समाइ ।
सहजि सुंनि मन उन थिर रहै, ऐसा विचार मछीन्द्र कहै ।

शून्य ! चारों ओर शून्य ! भीतर-बाहर सब ओर शून्य ! तभी शिव और शक्ति परस्पर ही मिल गए । परम लक्ष्य सिद्ध हुआ । तब योगी को और कुछ भी नहीं चाहिए । अब वह जन्म से छूट गया । मृत्यु के डर छूट गया ।

सुंनै संतोष अगमैं विचार । गुरु मे ध्यान काया कै पार ।

सब प्राप्त हो गया । निश्चय मन में 'दरियाव' समा गया है ।

मन में समाया हुआ यह 'दरियाव' नाथ-सम्प्रदाय के कवियों में ही नहीं रुका वरन् सन्त कवियों में भी बहता रहा । शून्य का अर्थ बदल गया । नई नई कल्पनाएँ बन गईं परन्तु उसने पीछा नहीं छोड़ा ।

नाथ-सम्प्रदाय का परवर्ती सन्तों पर प्रभाव

कबीर ने नाथपंथियों को बहुत-कुछ भला-बुरा कहा है किन्तु अनेक शब्दों के स्थान पर अनेक लोकों का सृजन हुआ ।

याहूत	सहज द्वीप	सहज पुरुष स्थान
राहूत	अंकुर	अंकुर ”
साहूत	इच्छा	इच्छा
बाहूत	सोऽहं	सोहंग
हाहूत	अचिन्त्य	अचिन्त्य
लाहूत	आरम्भ	अक्षर स्थान सायुज्य मुक्ति
जबरूत	भ्रमरी	सारूप्य मुक्ति निरंजन स्थान
मलकूत	वैकुण्ठ विष्णु स्थान	सामीप्य मुक्ति
नासूत	ब्रह्म मन का स्थान	सालोक्य मुक्ति
देवपुरी सिद्ध स्थान	पृथ्वी और नासूत के मध्य	

	कर्मभूमि पृथ्वी	
7 नरक 84 कुण्ड	अतल 1	यह अतलादि लोक
	वितल 2	
	सुतल 3	
	तलातल 4	
	महातल 5	
	रसातल 6	
	पाताल 7	

यहाँ साबित है पिंड-ब्रह्माण्ड एक है। एक ही स्वरूप है। (पृ 327)

अक्षर से ऊपर धूम्राकार, फिर सत्य लोक। हिन्दू और मुसलमान का सामञ्जस्य योगि-सम्प्रदाय के परवर्ती स्वरूप में जाकर इस प्रकार हुआ।

'ब्राह्मण प्रयोजन सिद्ध करने के लिए झूठ बोलेंगे। ब्रह्मा से जब माया मिली तब माया ने पिता को खोजने के लिए कहा। ब्रह्मा ने पिता निरंजन को न खोजकर झूठ कह दिया माया ने शाप दिया। (पृष्ठ 35)

"विष्णु सिद्ध साधकों को बन्दर की भाँति नचाते हैं। (पृष्ठ 40) परवर्ती युग की बदलती विचारधारा का अच्छा आभास है।

आगे आकाश में एक तप्त शिला है। काल पुरुष उसी पर सब जीवों को भून-भून कर खाया करता है। (पृ 45)

कबीर हंस हैं (पृ 57)। रंगीन यजुर्वेद है (पृ 56)। किन्तु यह भावना बहुत परवर्ती है। यह विचार इतना आगे बढ़ गया कि इस्लाम की असहिष्णुता के सामने ब्राह्मण धर्म स्थित तथा बाहर के सम्प्रदाय सब आपस में मिल गये।

नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव वास्तव में कबीर में अधिक मुखर है। तब ही कहा गया है कि मनुष्य जितनी स्त्रियों के साथ सम्भोग करता है उतने ही गर्भों से उसे जन्म लेना पड़ता है (पृ 64)। कबीर से स्वयं धर्मराज ने कहा —वेदशास्त्र तीर्थ व्रत मूर्तिपूजा मन्त्र यन्त्र हवन यज्ञ आचार्य बलिप्रदान मांस भक्षण मदिरापान परस्त्रीगमन मैंने कर्म बनाए हैं।

कबीर-पंथ के धार्मिक नियम तुलनीय हैं—

1 एक अविगत अतीत ब्रह्म सत्य पुरुष की सेवा। जो गुरु पद प्रदर्शन से ही ज्ञेय है।
2. सत्यपुरुष और कबीर एक ही है।
3 गुरु-सेवा उपार्जन का 10वाँ भाग गुरु का।
4. साधु-सेवा।

1 कबीर मन्सूर, वेंकटेश्वर सं 1002। यह पुस्तक न केवल कबीर की कृति है बल्कि इसमें कबीर पंथी साहित्य भी है अतः अधिक महत्त्वपूर्ण है।

5 समान दयाभाव ।

6. मांस-आहार त्यक्त ।

7 मदिरा आदि वर्जित ।

8. व्यभिचारी नरक को जाता है ।

9 1. तिलक तुलसी-माला कंठी आवश्यक ।

10 मंत्र मत तंत्र व्यर्थ ।

11 स्वसंवेद के बिना अन्य पुस्तकें अविश्वसनीय ।

12. नवधा भक्ति । 4 प्रकार की मुक्ति-बन्धन ।

13. हिन्दू-मुसलमान एक-से ।

14. मुक्ति मार्ग सांकरा नरक मार्ग चौड़ा ।

तब कबीर ने कहा है—

हम वासी वहि देस के जहाँ जाति बरण कुल नाहिं ।
शब्द मिलावा होइ रहा देह मिलावा नाहिं ।

साहित्य में सम्वाद की एक परम्परा चल पड़ी । देवदत्त तथा अविनाशी का सम्वाद कबीर-गोरख सम्वाद प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त गोष्ठी का विवरण बहुत मिलता है । कबीर की गोरख और नानक दोनों ने प्रशंसा की है ।

गोरखनाथ-वचन—

नौ नाथ चौरासी सिद्ध इनका अनहद ध्यान ।
अविचल घर कबीर का यह मति बिरला जान ।
मोती मूंगा कूबरी सेली टोपी साथ ।
दया भई जब कबीर की चढ़ाई गोरखनाथ ।

तथा नानक-वचन—

वाह गुरु समरथ गुरु यह गुरु पन्था ।
काट देव तुम भवजल फन्दा ।
धन्य कबीर परम गुरु ज्ञानी ।
अमर भेद भाखी निज बानी ।

पूछे गोरख कबीर ताईं—

कर्ता को स्वरूप कौन है ? अण्ड को स्वरूप कौन है ? अण्डाकार कौन है ? नाद बिन्द योग कौन है ? जीव ईश्वर जीव कौन ? भूमि ओंकार कौन ? निराकार कौन ? पाप पुण्य करै कौन ? वेद और वेदान्त कौन ? नाथ और अनाथ कौन ? चन्द्र सूर्य नाम कौन ? पंच में प्रपंच कौन ? मोह दाह कौन ? स्वर्ग-नरक बसै कौन ? जरा मरण नाश कौन ? गुरु शिष्य बोध कौन ? सार असार निर्धार कौन ?

कहै कबीर हे गोरख ।

जान सको स्वरूप अण्डमाहि सुरति बसै अण्ड माहि सो कर्त्ता को स्वरूप

नाहिं पंथ की स्वप्न है। नाद बिन्द योग स्वप्न जीव ईश्वर भोग स्वप्न भूमि औतार स्वप्न निराकार स्वप्न है। पाप पुण्य करे स्वप्न वेद और वेदान्त स्वप्न। वाचा अवाच स्वप्न। चन्द्र सूर्य स्वास स्वप्न। पंच में प्रपंच स्वप्न। सोहं सोहं स्वप्न है। स्वर्ग नरक बसे स्वप्न। पिंड और ब्रह्माण्ड स्वप्न। आत्मा परमात्मा स्वप्न जरा मरण काल स्वप्न गुरु शिष्य बोध स्वप्न अक्षर-अक्षर निरक्षर गोरख स्वप्न है। कहैं कबीर सुन गोरख स्वप्न पार सत्य समरत्थ है। सो सत्य नाम सत्य लोक सत्य समरत्थ है। (पृ 568-69)

कुण्डलिनी महामाया वासना विष से भरी है पूर्णा से मन प्रकट होता है। निश्चय से बुद्धि। अहं होने पर अहंकार। चिन्तन से चित्त। स्पर्श से मुख वायु देखने के लिए अग्नि रस के लिए जल सूंघने को पृथ्वी। इस प्रकार 5 तन्मात्रा 4 अन्तःकरण 14 इन्द्रियाँ तथा सब नाड़ियाँ इसी से उत्पन्न होती हैं।

लिंग देह सूक्ष्म शरीर अँगूठे के बराबर है। ऊंकार मात्रिका पुष्प वर्ण है। *विष्णु देवता श्री कुंठ स्थान मध्यमा वाचा अर्द्ध शून्य यजुर्वेद, बैकुण्ठ* लोक कण्ठ स्थान पालन क्रिया आप तत्व भूचरी मुद्रा विहंग मार्ग द्वितीय पद गायत्री क्षर निर्गुण मन्दाग्नि कोऽहं अहंकार, सामीप्य मुक्ति पंचभूत सूक्ष्म प्राण अपान समान उदान और व्यान 4 अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहंकार, शब्द स्पर्श रस रूप गंध यह सूक्ष्म 9 तत्त्व हैं। 5 ज्ञानेन्द्रियाँ 5 कर्मेन्द्रियाँ यह जड़ अर्थात् अनुपम है जिसकी सत्ता से चैतन्य होते हैं उसको जीव कहते हैं। (पृ 1135)

और सन्त-साहित्य एक स्वर से गूंज रहा है। विषमा भेरवी कामी माया का प्रभाव भयानक है।

जोगी के योगन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
घट ही माँहि चबूतरा घट ही माँहि दिवान।
सुमरन मारग सहज का सतगुरु दिया बताय।
स्वांसहि स्वांस जो सुमिरता एक दिन मिलसी आय।
आग लगी आकाश में झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया काच भया संसार।
बूंद समाना बाद मे दोऊ किया घर एक।
जब नामी जोगी हुआ मिटि गई ऐंचातान।
उलटि समाना आप मे अब भया ब्रह्म समान।
गगन मंडल के बीच में बिना कमल की छाप।
पुरुष एक तहँ रमि रहा नहीं मंत्र नहिं जाप।

गगन गरजै बरसै अमी बादल गहर गंभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भीजै दास कबीर।
गगन महल के बीच में तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई पहुँचैंगे गुरु पूर।
उनमुनि लागी सुन्न में निस दिन रहै गलतान।
तन मन की कुछि सुधि नहीं पद पाया निरबान।
उनमुनि सौं मन लागिया गगनहिं पहुँचा जाय।
चाँद बिहूना चाँदना अलख निरंजन राय। (कबीर)

और मीरा ने कहा है

सहज मिले अविनासी रे।
सतगुर भेद बताईया खोली भरम किवारी हो।
सब घट दीसै आतमा सब ही सू न्यारी हो।
दीपक जोऊं ग्यान का चढ़ूं अगम अटारी हो।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ सुख की सेज बिछाऊँ री।

× × ×

'बावन अखरी' में यही भाव है।

सुन्य सिखर पर बाजी बाजा बाका भेद कोई बिरला पाया।

तथा सुन्य स्वभाव आकास भरो है।
तू नहिं जानत चेतन सोई। (सब्दावली)

दादू सुन्दरदास तथा अन्य अनेक कवियों में यही प्रतिध्वनि है किन्तु कबीर ने नाथ-सम्प्रदाय का ऐतिहासिक निर्णय किया है

उलट समाना मैन मे कहाँ रहेगा ऐन।
मध्य माहि वासा करै ताको काल न खाय।

बसै अपिंडी पिंड में :

धरती और आकाश में दो तू बड़ी अबद्ध।
षट दरसन संसै पड़े अरु चौरासी सिद्ध।
दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना मिथ्या स्वाद भुलाना।
सलिलामथि कै घृत को काढ़यो ताहि समाधि समाना।
गोरख पवन राखि नहिं जाना जोग जुक्ति अनुमाना।
ऋद्धि सिद्धि संजम बहुतेरा पारब्रह्म नहिं जाना।

तथा अन्तिम विश्लेषण

जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दुरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं दुर्लभ हरि का देश।

उपसंहार

उपसंहार

समसामयिकों पर गोरख का प्रभाव

गोरखनाथ का प्रभाव भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। इस प्रभाव-क्षेत्र को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं

(1) उनके समय में उनका प्रभाव

(2) उनकी मृत्यु के बाद उनका प्रभाव।

दोनो ही परस्पर एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इस अध्ययन के लिए निम्नलिखित तथ्यों की ओर देखना आवश्यक है—

(क) कितने मत उनसे प्रभावित हुए।

(ख) कितने प्रभावित मतों के मिलने से एक-दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ा।

(ग) इन मतों को मानने वाली कौन-कौन-सी जातियाँ थीं। उनका स्थान क्या था।

(घ) समाज मे जातियों की उथल-पुथल का परिणाम क्या हुआ।

(ङ) अन्यधर्मों पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने उसका प्रभाव रोकने को क्या किया।

(च) प्रभाव का क्षेत्र क्या था।

शान्तिपा जैसे विक्रमशिला के द्वार-पण्डित भी नाथ-सम्प्रदाय में ही थे। राहुलजी ने उन्हें वज्रयान का सब से बड़ा पण्डित माना है। अगर हमने पूर्ववर्ती प्रकरण में जो सिद्धों की तालिका बनाई थी उससे ज्ञात होता है कि निम्नलिखित सिद्ध उनके समसामयिक थे या कुछ परवर्ती थे

चामरी नाथ चौरंगीनाथ चोबी विरूपा कण्हपा कमारी दारिपा तन्तिपा भषित भुसुकर, मारे चम्पक ढेम्बस चमपालदम कामरी शान्ति शबर, भद्र सिपारी चर्पटी तथा कमल कपारि इत्यादि।

विस्तार मे न जाकर कहा जा सकता है कि ये उन सम्प्रदायों के व्यक्ति थे जो ब्राह्मण धर्म के बाहर थे। यह सम्भव है कि कुछ व्यक्ति इनमें से ब्राह्मण थे। अधिकांश बौद्ध तथा शैव प्रभाव से समाज की निचली जातियों के व्यक्ति थे।

सम्प्रदाय भेद

गोरखनाथ के बारह प्रधान सम्प्रदाय हैं। प्रत्येक पंथ का एक-एक स्थान

है तथा वे उसे अपना पुण्य क्षेत्र मानते हैं। प्रत्येक पंथ में एक पौराणिक देवता या महात्मा को अपना आदि-प्रवर्तक माना जाता है।

हजारीप्रसाद ने गोरख के एक प्रसिद्ध सिद्ध महन्त बाबा गम्भीरनाथ के एक बंगाली शिष्य गोरखपुर द्वारा दिये हुए वर्णन को आधार बनाकर लिखा है—

1 सत्यनाथी मूल प्रवर्तक सत्यनाथ स्थान पाताल भुवनेश्वर प्रदेश उड़ीसा। सत्यनाथ स्वयं ब्रह्मा का ही नाम है इसीलिए ये लोग ब्रह्मा के योगी कहलाते हैं।

2 धर्मनाथी धर्मराज युधिष्ठिर, दुल्लुदेलक नेपाल।

3 रामपंथ श्री रामचन्द्र चौक तप्पे पंचौरा गोरखपुर (युक्तप्रान्त) इस समय ये लोग भी गोरखपुर के (स्थान) को ही अपना स्थान मानते हैं।

4. नाटेश्वरी लक्ष्मण गोरखटिला झेलम (पंजाब)। इनकी दो शाखाएँ हैं—नाटेश्वरी और दरियापंथी।

5 कन्हड़ गणेश मानफरा कच्छ।

6. कपिलानी कपिलमुनि गंगासागर, बंगाल। इस समय कलकत्ते (दमदम) के पास 'गोरखवंशी' इनका स्थान है।

7 वैराग्यपंथ भर्तृहरि रतढोंडा पुष्कर के पास (अजमेर)।

8. मानन्नाथी गोपीचन्द्र। अज्ञात अज्ञात। इस समय जोधपुर का महा मन्दिर मठ ही इनका स्थान है।

9 आई पंथ भगवती विमला जोगी गुफा या गोरख कुंई, बंगाल के दिनाजपुर जिले में।

10 पागल पंथ चौरंगीनाथ पूरन भगत अबोहर, पंजाब।

11 धजपंथ हनुमान जी।

12. गंगानाथी भीष्म पितामह, जखबार गुरदासपुर (पंजाब)।

शिव तथा गोरखनाथ द्वारा शिव के अठारह या बारह और अपने बारह सम्प्रदायों में से पुनर्गठित सम्प्रदाय इस प्रकार हैं

शिव द्वारा प्रवर्तित	गोरख द्वारा प्रवर्तित
1 भुज (कच्छ) कंठरनाथ।	1 हेठनाथ।
2. पेशावर और रोहतक के पागलनाथ।	2 आईपंथ के चोली नाथ।
3 अफगानिस्तान के रावल।	3 चांदनाथ कपिलानी।
4. पंख या पंक।	4 रतढोंडा मारवाड़ का वैराग पंथ और रतननाथ।
5 मारवाड़ के वन।	5. जैपुर के पाव नाथ।
6. गोपाल या राम के।	6. धजनाथ महावीर।

इनके हाडी मारंग (बम्बई के रसोइए) कानिकनाथी पायलनाथी उदयनाथी भारजपंथ फीलमनाथी चर्पटनाथी मैनी या बाहिलीनाथी निरंजननाथ बरंजोगी पा-पंथ कामनाथ कास्तय धर्मनारी नायरी अमरनाथ कुम्भीदास तारकनाथ अमापंथी भृंगनाथ तथा अनेक उपधाराएँ, जिनका कुछ परिचय आगे दी हुई एक तालिका से मिलेगा भारत और अफगानिस्तान तक फैली हुई हैं। धर्मों पर प्रभाव का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

आमरे के समधान में कुछ दिन आकर ठहरने वाले भैरव का चोला धारण करने वाले लक्कड़ बाबा ने मुझे बताया कि वे आई-पंथी थे पूछने पर कहा कि एक ओर गोरखनाथ बैठे थे दूसरी ओर दत्तात्रेय बीच में से औघड़ पीर पैदा हुए, उन्हीं से आई पंथी हुए। यह उत्तर इस प्रश्न का था कि आई-पंथी शिव द्वारा अथवा गोरख द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों में से किसमें हैं। लक्कड़ बाबा के कान फटे हुए नहीं थे। काली सीगी सैली रुद्राक्ष की माला काली स्याही से रंगा शरीर, बीच-बीच में सिन्दूर की रेखाएँ और हाथ में अम्बारी थी। औघड़ पीर की यह उत्पत्ति दत्तात्रेय-सम्प्रदाय पर कुछ प्रकाश डालती है और इस बात की ओर इंगित करती है कि उस काल में योग के अन्तर्भूत सम्प्रदायों में कैसी गहरी उथल-पुथल मच उठी थी।

रावल शाखा में मुसलमान जोगी हैं जो सम्भवतः अपने असली रूप में लकुलीश पाशुपत रहे होंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखनाथ के साथ पाशुपत शैव बौद्ध जैन आदि कुछ गए, यह प्रभाव को नष्ट करने वाले के साथ स्वतः ही यह सब चुक गए। अपने समय में तथा अपने बाद का प्रभाव भी यहाँ स्पष्ट हो जाता है।

इन मतों के मिलने से अनेक प्रभाव उद्भूत हुए। शाक्त तथा बौद्ध प्रभाव कहीं-कहीं बचे रह गए। ब्रिग्स ने लिखा है कि नाथी कहीं-कहीं शक्ति पूजा करते हैं और अब उसे छिपाते भी हैं।

अधिकांश जातियाँ जो इनमें घुसी वे नीच जातियाँ ही थीं। सन् 1921 की जन-गणना में जोगी हिन्दुओं की संख्या 6,29 978 थी। इनमें पुरुष तथा स्त्री 325 305 थे। जोगी मुसलमान 31 158 थे जिनमें पुरुष-स्त्री 16 15 थे फकीर हिन्दू 1 41 132 थे जिनमें पुरुष-स्त्री 80 61 थे।

बाद में इनका अलग गिना जाना बन्द कर दिया गया।

उपर्युक्त चार बातों के बाद पाँचवीं बात का विवरण दिया जाता है।

ब्राह्मणों ने जोगी-सम्प्रदाय को अपना यहाँ कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। जोगी व्यक्ति रूप से भय के कारण श्रद्धा का पात्र रहा। किन्तु समष्टि रूप से जहाँ जाति का प्रश्न था वहाँ उन्होंने उसे अपनी व्यवस्था में वैसे ही स्वीकार

कर लिया जैसे अन्य अनेक जातियों को। जोगी यद्यपि ब्राह्मण के हाथ का छुआ भी नहीं खाते किन्तु कहलाते हिन्दू ही हैं। यह दृष्टिकोण केवल मुसलमान के सामने होता है। परस्पर हिन्दू और जोगी अभी तक भेद करते हैं।

अपनी अन्दरूनी व्यवस्था पर भी धीरे-धीरे छाते हुए ब्राह्मण प्रभाव को योगी एकदम ही रोकने में समर्थ हो गए हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस्लाम के प्रति उनमें बराबर अनेक स्थानों पर विरोध बना रहा। योगी सम्प्रदाय की दार्शनिकता और चिंतन के पीछे वह विराट् परम्परा थी जिसने ब्राह्मण धर्म से हजारों वर्ष तक टक्कर ली थी। उसका उच्चतम रूप भी था और निकृष्टतम भी। अब वह इस्लाम को कैसे स्वीकार कर लेता?

दूसरे योगी-सम्प्रदाय अर्थात् वह भूमि जिस पर आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर के भारतीय प्राचीन विश्वास थे उनमें एक रहस्य की भावना बहुत तीव्र थी। अन्य जितने सम्प्रदाय या धर्म थे उनका समाज से अधिक सम्बन्ध था। इसी कारण यदि एक ओर योगी-समाज अधिक एकांगी था तो दूसरी ओर उसमें अन्य धर्मों की अपेक्षा कहीं अधिक कट्टरता थी।

बंगाल के ब्राह्मण जो आर्येतर विश्वासों के आहार बहुत पहले से सहते हुए काफी कट्टर हैं वे जोगियों को नीचे दर्जे पर ही बिठाते थे। बंगाल में वेदबाह्य धर्मों का अधिक प्रचार रहा। क्योंकि वहाँ नाग मंगोल द्राविड़ आदि अनेक जातियों का जीवन व्यतीत हुआ है। वे स्वयं अधिक कट्टर थीं। वहाँ योग-परम्परा भी प्राचीन थी और यक्ष-प्रभाव भी पूरा पड़ा था। अतः जब कालान्तर में बहुत-से बंगाली मुसलमान हो गए तब जो योगी-सम्प्रदाय गोरख के झण्डे के नीचे आये वे भी काफी सशक्त रहे। उनमें शाक्त प्रभाव भी कुछ सीमा तक बना रहा। यही कारण है कि बंगाल में योगी-सम्प्रदाय का प्रभाव तथा मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध देखकर गोरखनाथ को भी बंगाली साबित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पं. हजारीप्रसाद ने लिखा है—वर्तमान नाथ-सम्प्रदाय के 12 मुख्य पन्थ हैं। जिनमें आधे शिव के द्वारा प्रवर्तित हैं और आधे गोरखनाथ द्वारा। इनके अतिरिक्त और भी बारह या अठारह सम्प्रदाय थे जिन्हें गोरखनाथ ने नष्ट कर दिया। उन नष्ट किए जाने वालों में कुछ शिव के सम्प्रदाय थे कुछ स्वयं गोरखनाथ के। अर्थात् गोरखनाथ की जीवित अवस्था में ही ऐसे बहुत-से सम्प्रदाय थे जो अपने को उनका अनुवर्ती मानते थे और उन अनधिकारी सम्प्रदायों का दावा इतना भ्रामक हो गया कि स्वयं गोरखनाथ ने ही उनमें से बारह या अठारह को तोड़ दिया। क्या यह सम्भव है कि कोई महान् गुरु अपने जीवन-काल में ही अपने मार्ग को विभिन्न उपशाखाओं में विभक्त देखे और भेदों को दूर न करके पन्थों की विभिन्नता को स्वीकार कर ले?

आगे आपने वेदबाह्य धर्मों का वर्णन करते हुए (जब वे 11वीं सदी के बाद श्रुति-सम्मत होने का प्रयत्न करने लगे थे) लिखा है—स्पष्ट ही वे लोग वेदों की परवाह करने वाले न थे। इन सब के शिष्य और अनुयायी भारतीय धर्म-साधना के इस उथल-पुथल के युग में गोरखनाथ के नेतृत्व में संघटित हुए। परन्तु जिनके आचरण और विचार इतने दूर विभ्रष्ट थे कि वे किसी प्रकार के योगमार्ग का अंग बन ही नहीं सकते थे उन्हें उन्होंने स्वीकार नहीं किया। शिवजी के द्वारा प्रवर्तित बने सम्प्रदाय उनके द्वारा स्वीकृत हुए वे निश्चय ही बहुत पुराने थे। एक सरसरी निगाह से देखने पर भी स्पष्ट हो जाएगा कि आज भी उन्हीं सम्प्रदायों में मुसलमान योगी अधिक हैं जो शिव द्वारा प्रवर्तित और बाद मे गोरखनाथ द्वारा स्वीकृत थे।

सांख्य-प्रवर्तक कपिल मुनि का कपिलानी सम्प्रदाय जो नाथमत में भी पाया जाता है वह भी योग-साधना के माध्यम के कारण गोरखनाथ के साथ आकर जुड़ गया है। इससे यही इंगित होता है कि गोरखनाथ के प्रभाव से कालान्तर में वैष्णव योग भी आकर सम्मिलित हो गया होगा।

उपर्युक्त तथ्यों को देखते हुए यह सारांश निकालना उचित प्रतीत होता है

(1) गोरखनाथ की प्रभाव भूमि जैसी कि ऊपर देखी जा चुकी है बहुत विस्तृत थी।
(2) अनेक योगमार्गी शाक्त बौद्ध जैन आदि पर उनका प्रभाव पड़ा ?
(3) उनकी मृत्यु के बाद या उनकी जीवितावस्था में ही अनेक उन्हें गुरु मानने लगे
(4) अनेक सम्प्रदायों ने आश्रय पाने को इनसे नाम जोड़ दिया और इस प्रकार नाथ-सम्प्रदाय का एक विराट् रूप हो गया।
(5) इनमें अधिकांश निम्न जातियाँ थीं जो वेद-बाह्य थीं।
(6) जो यहीं मिले वे आत्मीयता खो बैठे। मुसलमान हो गए।

इस्लाम पर प्रभाव

(7) मुसलमानों के आने पर जब 'हिन्दू'-संगठन हुआ तब ब्राह्मण धर्म-व्यवस्था के अतिरिक्त अनेक वेद-बाह्य गोरखनाथ के झंडे के नीचे खड़े दिखाई दिए।
(8) कालान्तर में अपने भीतरी आचार-व्यवहार को अपने भीतर रख कर गोरखनाथी भी ब्राह्मण-द्वेषी नहीं रहे।
(9) इस्लाम पर भी गोरख का प्रभाव पड़ा। यद्यपि हम देखते हैं कि इस्लाम के आने के पूर्व ही इस्लाम का प्रभाव भारतीय धर्मसाधना पर पड़ना प्रारम्भ हो गया था तथापि अब हम देखना चाहिए कि

इस्लाम पर भारतीय धर्म-साधना का कैसा प्रभाव पड़ा। इसको हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं

(क) प्रारम्भिक इस्लाम को रहस्यवाद और प्रेम की भावना को लेकर, केवल धार्मिक और परलोकवाद को लेकर भारत में आया उस पर भारतीय योग-साधना का गहरा प्रभाव पड़ा। हो सकता है कि अधिकांश सूफ़ी उत्तर द्वार से आने के कारण पहले ही से योग-साधना के किसी प्रकार के पूर्ववर्ती रूप से परिचित अवश्य रहे हों क्योंकि ऊपर देखा जा चुका है कि उस देश में पाशुपत बौद्ध आदि का प्रभाव था। भारत में हठयोग का प्रबलम सूफ़ी कवियों में नाथ-सम्प्रदाय का ही प्रभाव था।

(ख) जब इस्लाम विजयी रूप में आया और वह यहाँ बस गया उसने मत-परिवर्तन कराये तब धीरे-धीरे उस पर जिस भारतीयता का प्रभाव पड़ा वह वेद-बाह्य व्यवस्था का नहीं वरन् वेद-प्रवृत्त या वेद ग्राह्य समाज-व्यवस्था का प्रभाव था। मुसलमानों में सामन्ती व्यवस्था को ग्रहण किया उन पर धीरे धीरे ब्राह्मण धर्म का प्रभाव पड़ा। जाति आदि के विचार उनमें सब तरह की बाह्य समानता के प्रदर्शन के होते हुए भी घर कर गए। यह विषय हमारे आलोच्य काल के बाहर का है।

(ग) वास्तव में यह रूप दूसरे से पहले का है। यह दोनों के बीच की चीज़ है। हमारे आलोच्यकाल में इसका वर्णन आवश्यक है। मुसलमान विजयी रूप में आने लगे। उन्होंने मत परिवर्तन किया। इसमें कई सहर्ष इस्लाम में मिल गए। योगी भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे बहुत-से मिल गए। यह ब्राह्मणवाद के विरोध की भावना थी। किन्तु वे अपने पुराने योग-मार्ग को नहीं छोड़ सके। इसी से गोरख उनसे नहीं छूटे। पं० हजारीप्रसाद का मत है कि वे शिव-मर्यादित पुराने सम्प्रदाय इस्लाम की छाया में आकर फिर गोरखनाथ की ओर आकर्षित हुए। मुझे इसमें एक आपत्ति है कि गोरख का समय यदि नवीं शती का अन्त और दसवीं का प्रारम्भ है तो इस्लाम उस समय ऐसा विराट् ख़तरा नहीं बन पाया था बीज भले ही पड़ गए हों। उस समय वेद और अवेद का संघर्ष था। ब्राह्मण धर्म उठ रहा था जमे था

रहा था। यह भारतीय साधना की आपसी लड़ाई थी। गोरख ने भेद-भावों को इकट्ठा किया। किन्तु वे जिन्हें लेना चाहते थे उन्हें पहले शुद्ध करके ही। अधिकांश सम्प्रदाय उनके मत में उनकी मृत्यु के बाद आ एकत्र हुए। भेद और अभेद दो मुख्य परिष्कृत रूपों में बँटने लगे जो छूटे वे इस्लाम में चले गए। यदि ये बातें स्वीकृत नहीं होतीं तो यह समझना कठिन लगता है कि गोरखनाथी होने का दावा इस्लाम की छाया में आने के बाद शिव-प्रवर्तित सम्प्रदाय क्यों करने लगे? स्पष्ट है गोरख ने योग और साधना को परिष्कृत मात्र किया था। ब्राह्मणों से भिन्ना देना उनका ध्येय न था। अतः कुछ योग-मार्ग गोरखनाथी मत में मिल तो गए फिर भी अपने पहले ब्राह्मण-विरोध को न छोड़ सके। इस्लाम का प्रभाव तनिक अधिक पड़ा। काफी लोग मुसलमान हो गए। इसके अतिरिक्त गोरखनाथ के सामने हिन्दू-मुसलमान का कोई प्रश्न नहीं था। मुसलमान भी उनके सरलता से शिष्य हो सकते थे। ऐसे व्यक्ति अवश्य कम थे।

धीरे-धीरे पंथ का बिगड़ना प्रारम्भ हुआ। बिगड़ने का तात्पर्य यहाँ केवल इतना ही है कि गोरखनाथ जिस विचारधारा को लेकर चले थे उस पर अन्य प्रभाव मुखर होने लगे और उन्होंने धीरे-धीरे उनके सम्प्रदाय को ढँक लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो सम्प्रदाय गोरखनाथ द्वारा चलाया गया था वह एक शताब्दी ही सम्भवतः अपने उसी रूप में चल सका।

पंथ का बिगड़ना

पहली बात है कि सम्प्रदाय भेद बहुत हो गए। इन सम्प्रदायों की बहुतायत का एक कारण यही है कि गोरखनाथ के नाम पर अनेक सम्प्रदाय अपने बाहरी भेद भावों को छोड़कर एक होने का प्रयत्न करने लगे। इस्लाम का मुखर प्रभाव ग्यारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है तब इसके क्या कारण हो सकते हैं? (1) सम्प्रदाय का आचार्य जिस महान् व्यक्तित्व को धारण करता है उसके अनुयायी उसे प्राप्त करने में प्रायः असमर्थ सिद्ध होते ही देखे गए हैं? (2) गोरख ने अपने युग में एक ऐसी भूमि बना दी थी जो इतनी विस्तृत थी कि उस पर बहुत-से लोग खड़े हो सकते थे। (3) ब्राह्मण धर्म से बचने का अभी भी आर्य समाज से बाहर रहने वाले प्रयत्न कर रहे थे। यहाँ आर्य समाज पद से ब्राह्मणों की वर्णाश्रम-व्यवस्था समझनी चाहिए। यह

ब्राह्मण-धर्म क्यों प्रबल हो गया था ? क्योंकि भक्ति और ज्ञान को अपनाने ही गोरखनाथ ने योग के शुद्ध रूप की स्थापना से सहायता दे दी थी।

इस संधि-काल के अन्तिम समय में दो प्रवृत्तियाँ चल चलीं—एक तो समस्त शाक्त-सम्प्रदायों की हिम्मत टूट गई। वे अपने को वेदोक्त साबित करने का प्रयत्न करने लगे। पहले तो कहते थे कि वैदिक कर्म अधम है अब शूद्र और द्विज के हिसाब से अपने भीतर परिवर्तन करने लगे। उनकी वह दार्शनिकता टूट गई थी। अब उन्हें सब तरफ से अलग रहकर भी अपना आश्रय खोजने की आवश्यकता आ पड़ी थी। इसी से वेद का सहारा लिया गया। शाक्त सम्प्रदाय भी वैसे ही पराजित हुआ जैसे बौद्ध मत। कौले अपनी मुखरस्वतन्त्रता छोड़ने को बाध्य हो गए।[1]

नाथ का पंथ

ठीक यही परिस्थिति नाथ-सम्प्रदाय की भी होने लगी। कहीं बचत का मार्ग नहीं था। यद्यपि योगी अपने को हिन्दू और मुसलमान से अलग मानने का दावा करते थे तथापि उनको अपनी जगह बनाने को उद्यत होना पड़ रहा था। दार्शनिक दृष्टिकोण से वे अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के थे किन्तु इस्लाम का प्रहार काफी भयानक था। वे राष्ट्र में भी इकट्ठा हो रहे थे और यहीं ब्राह्मण-व्यवस्था की विजय हुई। संसार छोड़कर घूमने वाले मठ बनाकर बैठने लगे। वे माया में फँस गए। कबीर ने इसका खूब मजाक उड़ाया है। इनके पास धन इकट्ठा होने लगा। अब योगियों की क्रान्तिकारी भावना धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। अनेक सम्प्रदायों में बैठकर योगी-सम्प्रदाय अपने भीतर बहुत आत्मसात् करता चला जा रहा था किन्तु अब पुजारी-धर्म की भाँति योगी-सम्प्रदाय भी अवरुद्ध हो चला था। ठीक बौद्धमत की सी पराजय है। स्त्रीहीन विरोहों के प्रभाव से अब जुलाहा आदि जातियाँ आईं तो एक तो उनमें पहले ही शाक्त प्रभाव शेष था दूसरे योगी होकर स्त्री सब कैसे छोड़

1 (कौल चूडामणि)

> दृष्ट्वाहो [illegible] यदि कोऽप्यत्र गच्छति।
> [illegible] [illegible] [illegible] तत्र [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

— आगे का एक रूप।

अथ गोरखनाथ मंत्र

(अथातू मन्त्रे) तत्रं ध्यान—

> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] योगीन्द्रो [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

सकते थे अतः गृहस्थ भी होने लगे। इसके साथ ही मन्त्र-तन्त्रों ने गोरखनाथ को भी जकड़ लिया। देखते-देखते आकाश को लेकर चलने वाला स्त्री से अपनी रक्षा नहीं कर सका। विकार की गति की प्रतिक्रिया गोरख ने स्त्री का अपमान करके यह असाम्य खड़ा करके दूसरे प्रकार की गति से की थी। यह जब काँटे से काँटा निकाल चुकी तब रक्त बाहर बह आया और उससे यह अवस्था प्रकट हुई जिसका अवशेष आज तक शेष है। यहाँ पत्नी पत्नी ही थी। उसे माता कहकर सृष्टि को रोकने का कोई प्रयत्न न था। अस्वाभाविक बात कहाँ तक चलती? और स्त्री के लिए धन की भी आवश्यकता थी। तब कबीरदास आगे चलकर यदि गोरखनाथ की तारीफ करते हैं तो उनके 'अवधू' को खूब तंग करते हैं। गृहस्थ योगी अपनी जाति में ही तथा साथ ही योग छोड़कर विवाह करते हैं। ये दूध वाले दर्जी खेतिहर इत्यादि सब काम करते हैं। विवाह के पूर्व और अनन्तर दोनों अवस्था में स्त्री योगिनी बन सकती है। जिसके कान पहले फट जाते हैं उसका हिन्दू रीति से विवाह नहीं होता। वह जाति से खारिज की जाती है।

निम्न जाति के लोग भी पंथ में लिये जाते हैं। 1001 में उनके विषय में कहा गया कि वे मुसलमानों को भी दीक्षित कर लेते हैं।[1] दीनाजपुर में अनाथ

मन्त्र यथा—

ॐ ह्रीं श्रीं हुं फट् स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीं गों गोरख हुं फट् स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीं गों गोरख हुं हुं निरञ्जनात्मने हुं फट् स्वाहा।
ॐ श्रीं गों [illegible] गोरखनाथाय निरञ्जनात्मने हुं फट् [illegible]।

इसके अनन्तर गायत्री—

ॐ ह्रीं श्रीं । गोरक्षनाथाय विद्महे योगिनाथ धीमहि तन्नो निरञ्जन प्रचोदयात्।

फिर न्यास इत्यादि, करन्यास के बाद ध्यान है—

गुरुस्वरूप[illegible] त्रिलोचन।
निरञ्जनो निराकारो निर्विकल्पो निरामय।

तदनंतर पुरश्चरण है—

[illegible]
[illegible] सर्वकर्माणि [illegible]।
[illegible] नित्यं [illegible]।
स योगसिद्धिमाप्नोति गोरक्षस्य प्रसादतः।

1. ग्रिग्स, पृ. [illegible] विभिन्न [illegible] से भिन्न [illegible] किया जाता है।

असहाय बालक कायर और सुस्त दिल यहाँ तक कि गार्हस्थ्य कष्टों में पड़े तथा वृद्ध भी दीक्षित कर लिए जाते हैं। नारी-नाथरिए अधिक दीक्षित होते हैं। पहले कच्छ में ढेड़ जाति भी स्वीकृत थी किन्तु बाद में इसे अलग कर दिया गया। कुछ मेघवाल भी कहे जाते हैं। गोरखमण्डी में हिन्दू के अतिरिक्त मुसलमान ढेड़ और ईसाई आदि और किसी को भी नहीं लिया जाता। कन्नड़भाषी अहीर, राजपूत इत्यादि जातियों से शिष्यों को चुन लेते हैं। दिवा से सभी क्षत्रिय और ब्राह्मण अधिकांश लिये जाते हैं कहीं-कहीं उन बालकों को भी लिया जाता है जिनके पिता पहले से ऐसे काम की प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

गोरखपुर में शिष्य बनाने से पहले पुलिस के थाने से जाकर जाँच की जाती है कि कहीं शिष्य बनने वाला कोई अभियुक्त या अपराधी तो नहीं है। सम्प्रदाय के निर्बल हो जाने का यह बहुत बड़ा चिह्न है। योगमत के प्राचीन दिनों के ढंग के नियमों को दुहरा लेना चाहिए। सम्प्रदाय जब सांसारिकता के झगड़े-झंझटों से दूर हो जाता है तब बहुधा ऐसा हो जाता है।

दीक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में शिष्य औघड़ कहलाता था बाद में योगी। योगियों की जाति नहीं होती वे साथ-साथ खाते-पीते हैं साथ ही धूम्रपान कर सकते हैं। लेकिन हिन्दू और मुसलमान अब अलग हैं। हिन्दू उन हाथ का नहीं खाते। यह स्पष्ट गोरख से अलग हो जाना है। वैसे तो स्त्रियों को समानता का अधिकार नहीं दिया गया पर स्त्रियाँ सब ही खाती पीती हैं।

पूस माह फागुन और चैत शुभ माने जाते हैं। इन्हीं दिनों दीक्षा और इन्हीं दिनों उत्सव होते हैं। शिष्य बनाने के पहले 40 दिन तक गुरु खूब अच्छी तरह शिष्य की परीक्षा लेकर पहले अपने को सन्तुष्ट कर लेता है। योगी अहिंसा का व्रत लेता है फिर उसके बाल मुड़वाकर योगीवस्त्र पहना दिए जाते हैं। योगी चुटिया नहीं रखता। बाल गंगा में फेंके जाते हैं और एक शपथ दी जाती है। बाल कटने का अर्थ जाति-बन्धन के टूटने से लगाया जाता है। कान फाड़े जाते हैं। वस्त्र में कफनी लंगोटी और एक टोपी दी जाती है। मैंने देखा है कि टोपी के स्थान पर कहीं कहीं कपड़े का एक टुकड़ा बाँध लेते हैं। बाद में कहीं बाल कहीं चुटिया बढ़ाने की आज्ञा मिल जाती है जिसे तीर्थ यात्रा करके गंगा को समर्पित कर देना पड़ता है। फिर गुरु शिष्य को सिंहनाद जनेऊ पहिनाता है। भस्म शरीर पर मली जाती है। औघड़ साधारण हिन्दुओं जैसे वस्त्र पहनते हैं। औघड़ सिर पर अस्त-व्यस्त केश भी धारण करते हैं। योगी का सा सम्मान औघड़ को नहीं मिलता। उसे आधी दक्षिणा या भिक्षा मिलती है।

गोरखनाथ के भारतवर्ष में अनेक मठ हैं। अखाड़े आसन इत्यादि नाम भी प्रयुक्त होते हैं। स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि योगी सम्प्रदाय शंकराचार्य की रीति की भांति ही संगठित रूप धारण करके रहा था। प्रायः मठाधीशों के पास अपार सम्पत्ति है। गाँव के गाँव उनके हाथ लगे हुए हैं। गोरखपुर के आधुनिक महन्त एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। श्री दिग्विजयनाथ राजनीति में भी भाग लेते हैं। वे आधुनिक शिक्षा से परिचित हैं और स्वयं सांसारिक व्यापारों में भाग लेते हैं। वे हिन्दू धर्म के सहायक हैं। अब सम्भवतः उनमें यह विद्वेष कम हो गया है क्योंकि ब्राह्मण-व्यवस्था स्वयं टूट रही है।

यहाँ हम संक्षेप में योगी के कार्य भेद स्थान इत्यादि की झलक देते हैं

1 भिखारी 'अलख-अलख' पुकारते हैं गाते नहीं।
• दर्शनी भीख नहीं माँगते जंगल आदि में रहते हैं।
3 योगी यात्रा में भिक्षा लेता है जब भीख नहीं मिलती तब धूनी की भस्म पानी में मिलाकर पी जाता है।
4 बेलगाँव में स्त्री-पुरुष दोनों भीख माँगते हैं।
5. वे सबके हाथ का या हिन्दुओं के हाथ का या उच्च जातियों के हाथ का खाते हैं। सब तरह के पाये जाते हैं।
6 मांस गोमांस शूकर मांस सब खाने वाले तथा इनमें से कुछ भी न खाने वाले भी मिलते हैं।
7 चावल साग भाजी फल बकरे का मांस भेड़ का मांस मछली आदि सब खाते हैं।
8. कोई गाय को तथा कोई सूअर को पवित्र या अपवित्र समझकर नहीं खाते।
0 नैपाल संयुक्त प्रान्त पंजाब धानीपुर इत्यादि में धर्मनाथ की परम्परा है। भीख देते हैं यह दान वे भीख माँगकर एकत्र करते हैं इसी से उन्हें भूमि प्रदान की गई।
10 वे सबको खिलाते हैं—उच्च जाति हिन्दुओं को पक्का या बिन पका सीधा आदि को पका मुसलमानों को बाहर जमीन में। या सूखा दे जाते।
11 धीनोधर में अब भी ब्रह्मचर्य-नियम है। अधिकांश मठों में ब्रह्मचर्य का अभाव है। ब्रह्मचारी अधिकांश मठधारी कहलाते हैं।
1– गोरखनाथियों में कहीं कहीं शाक्त उपासना मिलती है।
13. कहीं-कहीं वे अपने विवाह में ब्राह्मणों को भी बुलाते हैं। विवाहित योगी बिन्दुनाथी संयोगी और गृहस्थ भी कहलाते हैं।

14 योगी गृहस्थ की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए उसके एक पुत्र को योगी बनना आवश्यक है।

15 कुछ जातियाँ जो गोरखनाथियों से सम्बन्ध जोड़ती हैं (शिमला पर्वत) श्मशान में मुर्दा जलाने का काम करती हैं। इस काम के लिए पैसा लेती हैं। ये कनफटों में निम्न कोटि में गिनी जाती हैं।

16 पंजाब के रावल रास्तों पर गाते फिरते हैं। भाग्य बताते हैं। पहले सम्भवत वे योगी थे।

17 कुल्लू में संयोग जातीय नाथ हैं अम्बाला में जोगी जातीय पाध नामा से हिन्दू बच्चों को पढ़ाना कार्य है। लाहुल में वे जादू कहलाते हैं।

18 संक्षेप में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न काम करते हैं। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है—

संख्या	स्थान	धर्म	जाति	पंथ	कार्य	नाम	विशेषता
1	अम्बाला		नीच	12	नीच कोटि के देवताओं के प्रभाव प्राप्त करना गाना-बजाना।	संयोग	
2	कांगरा	हिन्दू		मंदरमा बाहुरमा	औघड़ सर्वनी केवल औघड़		कुछ सर्वनी नग्न रहते हैं।
3	मध्यप्रान्त		नीच बरवा गारपगारी मनिहारी रीतविकनाथ पत विना		तुषार रोकने में कुशल सीसे-कंघी बेचना बम्बई के मूंगे बेचना सन बटना नीवड़ का शिकार करके उसका मांस खाना		विधवा विवाह ब्राह्मण पुजारी तलाक-प्रथा
4	बंगाल आसाम		नीच	मास्त कुछ इस्लाम सुन्नी	जुलाहे खेतिहर, चूना बनाना नीच मंथा एकादशी खाना मुर्दा दफनाना अशिक्षित कुछ सुनार कुछ सरकारी नौकर		परस्पर योगियों में विवाह नहीं

पृष्ठ 251 252 पर दी गई तालिका से ज्ञात हो जाता है कि उनका प्राय प्रधान रूप से क्या स्थान है। हमने विशेष कुछ छोड़ दिया। केवल विशेष तथ्यों की झलक दी है।[1]

स्थान

कनफटा[2] योगी प्रयाग (त्रिवेणी) बनारस (काशी) अयोध्या (अयोध्या) गोदावरी के उद्गम त्र्यम्बक द्वारका हरद्वार बदरीनाथ केदारनाथ वृन्दावन पुष्कर रामेश्वर दार्जिलिंग (सम्भवतः कामरूप के निकट) नेपाल और आसाम काश्मीर में अमरनाथ पश्चिम में हिंगलाज को अपना पवित्र स्थान मानते हैं। सवकड़ बाबा ने मुझे बताया कि हिंगलाज के अधिकारी मुसलमान अर्थात् 'मलंग' ही हो सकते हैं। मलंग का अर्थ उनके अनुसार ब्रह्मचारी के समान ही कुछ था।

सिक्किम में [illegible] मठ में गोरखनाथ की मूर्ति बताई जाती है। पश्चिम नेपाल में गोरखा नामक स्थान में एक गुफा-मन्दिर है जो गोरखनाथ का कहा जाता है। सॅंडन के अनुसार यह गुफा इतनी छोटी है कि मनुष्य घुटनों के बल चल कर ही उसमें प्रवेश कर सकता है। इसी गुफा पर नगर तथा जाति का नाम गुरखा कहा जाता है।

काठमाण्डु जो 'काष्ठ-मन्दिर' का अपभ्रंश समझा जाता है वहाँ 1600 ई में लक्ष्मी-निर्मित गोरखनाथ का एक मन्दिर है। काठमाण्डु से तीन मील दूर बागमती में मत्स्येन्द्र का मन्दिर है जिसे गोरखनाथी स्वीकार करते हैं। यहाँ एक शिव का पशुपतिनाथ का भी मन्दिर है जिसमें कनफटा का आवागमन है। नेपाली शैव शम्भुनाथ पशुपतिनाथ इत्यादि के मन्दिर भी मत्स्येन्द्र के नाम से युक्त हैं। किर्तीपुर के भैरव मन्दिर तथा काठमाण्डु के काल भैरव के मन्दिर भी प्रभावक्षेत्र में स्वीकृत हैं। [illegible] ताम पहाड़ नामक पाताल में गोरखनाथ की आत्मा का निवास समझा जाता है। रतननाथ के नवारी-कोट के इस मठ का देवी-पाटन से निकट सम्बन्ध माना जाता है यह स्थान देवी पाटन के अधिकार में माना जाता है।

कुमायूँ और गढ़वाल के पर्वतों में भैरव के अनेक मन्दिरों में कनफटे योगी पाये जाते हैं। ऐसे स्थानों पर वे नाग-सिद्धि किया करते हैं। गढ़वाल में तथा श्रीनगर में गोरख शिव का अवतार समझे जाते हैं। यहाँ कनफटा-मन्दिर है। श्रीनगर के समीप एक गुफा गोरख की समझी जाती है जिसमें लिंग-योनि स्थापित है और सामने भैरव का मन्दिर है। यहाँ नाथ के पदचिह्न हैं।

1. [illegible]
2. वही।

नैनीताल में नन्दी देवी का मन्दिर है। वहीं एक भैरव का भी मन्दिर है। वहाँ कनफटों का आवागमन है। वहीं विग्स को एक कपलानी पंथ का भी योगी मिला था जो गृहस्थ योगी कुम्भ में जन्मा था। कनफटा योगी मन्दिर में पशोल भैरव योनि शालिग्राम-लिंग इत्यादि भी मिलते हैं। योगियों की समाधियाँ बहुत होती हैं। अलमोड़े में भैरव पार्वती के अतिरिक्त बहुत बड़े कुण्डल वाली गोरख की भी एक फुट की मूर्ति है। यह सतनाथी है।

द्वाराहाट के निकट ग्राम में धर्मनाथी पीर की गद्दी है। इसे नागनाथ का मन्दिर कहा जाता है। किंवदन्ती है कि जब गोरखाली जाति ने अलमोड़ा जीता तब उन्होंने किला बनाकर अलमोड़ा नगर की भूमि समतल कर दी।

हरद्वार में बनी आई-पंथी हैं। दरयानाथी मठ में भी कनफटे रहते हैं।

संयुक्त प्रान्त में चुनार दुर्ग में भरथरी-सम्प्रदाय के योगियों का मन्दिर है। प्रयाग में गोरखनाथियों का मन्दिर है।

महत्त्वपूर्ण स्थान गोरखपुर, तुलसीपुर और काशी हैं। बनारस में वे निर्बल होते जा रहे हैं। बनारस की माट उनके हाथ से बिक चुकी है, क्योंकि एक महन्त मालिन के प्रेम में पड़कर जुआरी हो गया था।

गोरखपुर का असली मठ अलाउद्दीन ने मसजिद बनवा दिया था। दूसरी बार जो बना उसे औरंगजेब ने मसजिद बनवा दिया। तब बुद्धनाथ ने तीसरा मठ बनवाया है। अन्य स्थानों की अपेक्षा अब भी गोरखनाथी योगी मुसलमानों के बहुत विरुद्ध हैं। यहाँ मन्दिर में काली की मूर्ति है। त्रिशूल बहुत रखे हैं। वे योगी अवश्य योद्धा रहे होंगे जिन्होंने मुसलमानों का सशक्त विरोध किया होगा।

देवी-पाटन के मन्दिर के पास एक मुसलमान की कब्र पर सूअर का रक्त चढ़ाया जाता है। कहा जाता है मुसलमानों ने गोरख मठ को नष्ट किया था यह उसका ही प्रतिशोध है।

अनेक मेले इनसे सम्बद्ध हैं। बताशा चंदन चावल बेल फूल दूध आदि समाधियों पर चढ़ाए जाते हैं।

इनके अतिरिक्त स्यालकोट जालंधर टकसाल दरवाजा लाहौर अमृतसर समनुबा बोहर किराना पंजाब का टिल्ला नगर ठाठ इत्यादि प्रमुख स्थान हैं।

हिंगलाज में हिंगलाज देवी जिसे मुसलमान बीबी नानी कहते और हिन्दू पार्वती आदि कहते हैं बहुत महत्त्वपूर्ण पीठ माना जाता है। कहते हैं पहले एक मुसलमान स्त्री सब को यहाँ मुसलमान बनाती थी। उसका नाम चाम्दाम माई था। उज्जैन में भरथरी की समाधि है।

आज योगी निस्सन्देह मठाधीश होने के नाते धनवान हैं।

सिद्धान्त और व्यवहार

गोरखनाथियों का कथन है कि वे द्विजों को ही दीक्षा देते हैं। वैसे शूद्र भी स्वीकृत हैं। संक्षेप में हम यहाँ उनके आज के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हैं।

चन्द्रनाथ योगी ने अत्यन्त खेद के साथ योगिसम्प्रदायाविष्कृति में योगियों के पतन के विषय में लिखा है कि व सुस्त काहिल झूठे धर्माविश्वासी मतेवाद इत्यादि हो गए हैं। प्रारम्भिक नाथ-पंथ में यह सब नहीं था।

सच तो यह है कि किसी भी सम्प्रदाय के प्रवर्तक-आचार्य को अपने बाद अपने अनुयायियों के कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

सिद्धान्त रूप मे आज भी गोरखनाथ की ही बातों को स्वीकार किया जाता है जिनका हम अनेक स्थलों पर उल्लेख कर चुके हैं। सिद्धान्त अपने काम में तभी पूर्ण है जब व्यवहार में आज उनका कोई प्रभाव पड़े। उनका प्रमाण है कि वे भारतीय चिंतन म जीवित हैं। किन्तु बाकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों में उनका कोई महत्त्व दिखाई नहीं देता।

गोरखनाथियों की सबसे बड़ी गद्दी पंजाब टिल्ला की समझी जाती है। आज अलग-अलग गद्दियाँ अलग-अलग पंथों के हाथ मे हैं और वे प्राय सब एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। मुख्य बड़ी गद्दियों का प्रभाव अवश्य चलता है। 12 पंथों के 12 चुने हुए व्यक्तियों की संस्था भेख बारह पंथ कहलाती है जो सारे झगड़ों को तय करती है। इसमे महन्तों का चुनाव होता है। यह प्रतिनिधि संस्था समझी जाती है। चुनाव प्रति-बारहवें वर्ष कुम्भ-मेला के अवसर पर हरद्वार मे होते हैं। जो व्यक्ति इस संस्था का प्रधान होता है उसे 1200 रुपये जमा करने पड़ते हैं वह योगेश्वर कहलाता है और समस्त गोरखनाथियों का प्रधान स्वीकार किया जाता है।

गोरखपुर में प्रधान महन्त के चुनाव के बाद उनकी राजगद्दी की जाती है।

धीनोधर के गुरु को पीर कहते हैं।

ब्रिग्स ने एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक बार हिन्दुओं और मुसलमानों में इस बात पर झगड़ा हुआ कि इस धरती का मालिक कौन है? गोरखनाथ ने मुसलमानों के दावे को झूठा साबित करने के लिए एक काम किया। उन्होंने अपना भोजन और सामान अपने पास रखा और वे पृथ्वी पर बैठकर पृथ्वी से बोले कि यदि उनका धरती मे कोई हिस्सा हो तो वह जगह स्थान दे। धरती फट गई और गोरख पृथ्वी में उतर गए। तब से कनफटों मे शव को गाड़ने की प्रथा चल गई। किन्तु कनफटों के अतिरिक्त भी अन्य योगी सम्प्रदाय हैं जिनमे शव को गाड़ा ही जाता है।

योगियों में श्राद्ध नहीं होता। जब योगी की बरसी मनाई जाती है तब

योगी रात को जागकर देवी के लिए होम करते हैं। भोर के पहले पकौड़ी या खीर या पुलाव बाँटा जाता है। छः या सात गद्दियाँ बनाई जाती हैं। पीर जोगिनियों साक्य बीर, भण्डारी (गोरखनाथ के रसोइए) गोरखनाथ और नेक के लिए ये स्थान समझे जाते हैं। अन्न बाँटे जाते हैं कपड़े सोने-चाँदी के सिक्के गाय इत्यादि पीर को दिए जाते हैं। योगियों को भी दान होता है। *साक्य को चाँदी बीर को ताँबा पीर को गाय तथा गोरखनाथ को पानी* पहुँचता है।

योगियों में विधवा को भी गाड़ा जाता है।

इस प्रकार हमने संक्षेप में देखा कि पथ सिद्धान्त स्वाग सबके प्रति आज योगियों में वह सब नहीं रहा है जो प्राचीन काल में रहा होगा। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यह आधुनिक तथ्यों की जानकारी क्योंकि प्राचीनता का आभास अधिकांश इन्हीं के आधार से ज्ञात हुआ है। जातियों का यह उत्थान-पतन भारतीय संस्कृति का वास्तविक इतिहास है। सारांश के रूप में हम इतना निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि योगि सम्प्रदाय का ब्राह्मण-विरोधी स्वरूप धीरे धीरे लुप्त हो गया और मुसलमानों ने उन्हें भी कालान्तर में हिन्दू नाम से ही पुकारा।

अब एक सिंहावलोकन की आवश्यकता है। तथ्यों का जो कुछ सारांश निकलता है उस पर दृष्टिपात करना चाहिए।

600 ई से 1100 ई तक के तीन पक्ष

हमारा आलोच्य काल जैसा कि पहले कहा जा चुका है 600 वर्षों का एक लम्बा समय है। सब तरह से इसके देखने पर तीन विभाग किए जा सकते हैं

(अ) शाक्त मत के दृष्टिकोण से—
- (1) शाक्त मत की प्रबलता।
- (2) शाक्त मत पर प्रबल प्रहार।
- (3) शाक्त मत के बढ़कर जमे हुए ज्वार का उतरना। धीरे धीरे शक्ति क्षीण होने के साथ-साथ निर्बल होते जाना।

(आ) बौद्ध तथा वज्रयानी दृष्टिकोण से—
- (1) बौद्ध मत के ह्रासकालीन रूप का खूब फैलाव में रहना।
- (2) सहसा उस पर दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रबल प्रहार।
- (3) दार्शनिकता से हीन रूप में उसका भारतीय होने के कारण अन्य तत्कालीन धर्मों में अपना सामंजस्य खोजना।

(इ) इस्लाम के दृष्टिकोण से—
- (1) पहले व्यापारी के रूप में आना।

(2) विजयी और आक्रमणकारी तथा फकीरों के रूप में आना।
(3) फकीरों का भारतीयता से प्रभावित होना तथा आक्रमणकारियों में बुभुक्षा का बढ़ना।

(ई) ब्राह्मण धर्म के दृष्टिकोण से—
(1) शाक्त प्रभाव का उस पर आ जाना।
(2) चौंककर विरोध करना।
(3) और अन्ततोगत्वा बहुत-सी बौद्धमत और अन्य मतों की प्रभावकारी बातों को अपने भीतर मिलाकर शाक्त मतों पर भयानक प्रहार करना और जन-समाज को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रबल प्रयत्न करना और एक बहुत बड़ी सीमा तक अपने इस प्रयास में सफल होना। जातियों को आत्मसात् करके वर्णाश्रम की फिर स्थापना करना।

(उ) सामन्तवाद के दृष्टिकोण से—
(1) चक्रवर्ती सम्राट् के मर जाने पर साम्राज्य खण्ड-खण्ड होने पर एक दम स्वतन्त्र हो जाना और अपने को दृढ़ करना।
(2) राज्य फैलाना।
(3) परस्पर गृह-युद्ध करना

(ऊ) नाथ-सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से—
(1) सिद्धमत रूप में अन्य शाक्त मतों से कुछ मिला-जुला-सा रहना।
(2) गोरख के युग में अपने को अलग करके अन्य मतों की अच्छाइयाँ लेने का प्रयत्न करते हुए अपनी प्रतिष्ठापना करना।
(3) अपने विस्तार में लगना और मत में निर्बलताएँ रोक पाना।

(ए) जन समाज के दृष्टिकोण से—
(1) शाक्त युग में घोर वासना तथा साम्राज्य खण्डित होने पर घबराया-सा रहना।
(2) घोर धार्मिक विवाद देखना। युद्धों में अविचलित-सा रहना।
(3) अपने धर्म को ठीक तरह से निर्णीत करने के प्रयत्न में पुनः जाग्रत होना।

(ऐ) अन्य धर्मों के दृष्टिकोण से—
(1) ब्राह्मणवाद को तोड़ने के प्रयत्न में फैलना।
( ) फिर संकुचित होकर स्तब्ध रहना।

(3) और अन्त में अपनी कमजोरियाँ देखकर भारतीयता के नाते सामाजिक परिस्थितियों से समझौता करने की चेष्टा में रत रहना। अपनी रक्षा में सतर्क रहना।

(भो) भाषा के दृष्टिकोण से—

(1) संस्कृत और देशभाषाओं का साथ-साथ चलना। धर्म का दोनों में प्रचार।

(2) संस्कृत का कुछ भारी होना। देशी भाषाओं का जनसमाज में अधिक फैलना।

(3) निम्न जातियों के हाथ देशी भाषाओं का पलड़ा भारी होना धार्मिकता की गद्दी लेने हेतु ब्राह्मण सम्प्रदायों का संस्कृत को पकड़े रहना किन्तु देश भाषाओं के महत्त्व को समझना।

(भौ) कला के दृष्टिकोण से—

(1) संस्कृत रीति से आच्छन्न रहना। दरबारी संस्कृति का फैलना।

( ) योगी विद्रोह से संस्कृति का एकांगी क्षेत्रों में विकीर्ण होना।

(3) उभय पक्ष में जीवित रहना किन्तु सन्त और योगी हाथों में जनसमाज के निकट पहुँचने का प्रयत्न करना।

संक्षेप में यही योगी गोरखनाथ के समय का चित्र है।

भारतीय समाज के दो पक्ष : लोक तथा व्यक्ति

भारतीय समाज को समझने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि यहाँ की धार्मिक साधना के वास्तव में दो पक्ष रहे हैं—एक लोक पक्ष दूसरा व्यक्ति पक्ष। इसलिए कोई भी मत हो यहाँ 'हिन्दू' नाम में प्रायः सभी धर्मों का द्योतित हो जाता है। ऐसा विदेशी प्रायः एक हजार वर्ष से समझते रहे हैं। संक्षेप में इसे यों कहा जा सकता है—एक शिव पक्ष दूसरा विष्णु पक्ष। शिव पक्ष व्यक्ति पक्ष में ही प्रधान है। विष्णु पक्ष प्रधानतः समाज पक्ष है।

जब आर्यों से आर्येतरों ने प्राचीन काल में लोहा लिया था तब धीरे-धीरे शिव ने समस्त आर्येतर देवताओं को ग्रस लिया था। सम्पूर्णानन्द ने अपनी गणेश नामक रचना में दिखाया है कि गणेश कालांतर में शिव के पुत्र कहलाने लगे। प्राचीनतम युग में वे प्रथम थे। महाभारत के प्रारम्भ से अन्त तक आते आते तो शिव के इतने विराट् रूप की कल्पना है जो प्रायः आत्मसात् करती चली जाती है। मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि शिव ने आर्येतर तत्त्वों और साधनाओं को अपने भीतर इतनी तत्परता से ग्रस लिया था कि अन्त में

आर्यों को उन्हें अपनी त्रिमूर्ति में स्वीकार करना पड़ा। यहाँ इस विषय पर विचार करना एक विशेष कारण से प्रयोजनीय है। जिस प्रकार अंग्रेजों के आने पर भारत में आए परिवर्तन को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक आर्यों से लेकर अंग्रेजों तक के इतिहास की धार्मिक व्यवस्था को ठीक तरह नहीं समझ लिया जाता। इसी तरह गोरखनाथ को समझना तब तक असम्भव है जब तक आर्यों से पूर्व से लेकर उनके युग तक की धर्म साधना का एक रेखा-चित्र नहीं समझ लिया जाता। इसलिए कि हजारों साल के इतिहास का सारांश गोरखनाथ और शंकराचार्य ने निकालकर अलग रख दिया। यदि ये दोनों भारतीय इतिहास में न होते तो सम्भवतः आज भारतवर्ष अपने इस रूप में नहीं होता। क्या होता यह विवाद में समय नष्ट करना होगा।

गोरख का महत्त्व

शिव ने आर्येतर देवताओं में किसी को पत्नी किसी को पुत्र वाहन सारथि सेवक और न जाने क्या-क्या कहकर स्वीकार कर लिया। आर्य तत्त्व ने उन्हें भारत की सर्वोच्च जगह कैलाश पर आसन दिया। किन्तु वे फिर भी दो काम नहीं कर सके। (1) काम कलाना का पालक स्वरूप वे ग्रहण नहीं कर सके। इसमें उनका विष्णु से युद्ध भारतीय पुराणों में बिखरा पड़ा है। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों मतानुयायियों ने अपनी-अपनी जगह के अतिरिक्त बाहर का स्थान ग्रहण ही नहीं किया वे दोनों साथ-साथ रहने लगे। (2) शिव ने आर्येतर विश्वासों को ग्रस लिया किन्तु तत्पश्चात् उनमें छूटा रह गया। वह मत पावस्यप्रदेशों में किसी-न-किसी रूप में पलता रहा। कालान्तर में जब उस समय मिला तब वह फूट निकला। हर्षवर्द्धन के बाद भारत में एक अद्भुत परिस्थिति पैदा हो गई। उस समय आर्य विश्वास आर्येतर विश्वास और मत विश्वास सभी आकर इस देश में फिर फैल गए।

यह केवल अनुमान नहीं है भारतीय इतिहास की गहराई से देखने पर यह एक अत्यन्त सरल तथ्य प्रतीत होगा। यहाँ दो बातें प्रकट होती हैं।

(1) आर्य विश्वास में अधिकांश-पक्ष आर्येतर विश्वासों का अभाव था। आर्य विश्वास उसे पूर्णतया आत्मसात नहीं कर सका किन्तु उसने उसकी महानता को विवश होकर स्वीकार कर लिया।

( ) आर्येतर विश्वासों ने जब आर्य विश्वासों का विचार कौलीन्य उनपर छाया तब मत विश्वास को भी आत्मसात कर लिया। किन्तु उसने आर्यों की सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार न करते हुए भी अपने को इतना एकांगी और व्यक्तिगत पथगामी बना लिया कि आर्य विश्वासों की एक सामाजिक व्यवस्था को वह रोक नहीं सका।

यह व्यक्तिपरक न रहकर बना समाज पक्ष की जगह भाव जिज्ञासा ने ले ली। अतः प्रभाव को आत्मसात करने की क्षमता जो शंकर कार्य में नहीं थी गोरखनाथ में थी। गोरखनाथ इतिहास का कितना महान् व्यक्ति था कितना अद्भुत कार्य किया था उसने यह भारतीय संस्कृति की पूरी बहती धारा को देखने पर ही इंगित होता है।

संक्षेप में यही गोरखनाथ का महत्त्व था। उसने दार्शनिक रूप में एकता का पथ उपस्थित कर दिया। अन्य साधनाओं को गौण कर दिया और नीच के स्तर पर बैठा दिया।

बौद्ध और मुस्लिम

इस युग में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बौद्धमत और इस्लाम—इन्हीं दो मतों का ह्रास है। बौद्धमत अपने हीनयान महायान मन्त्रयान वज्रयान और कालचक्र यान जैसे स्वरूपों को बदलता हुआ अन्त में यहाँ आकर शक्ति प्रभाव मे बिलकुल डूब गया था। दूसरी ओर इस्लाम यूरोप अफ्रीका ईरान इत्यादि देशों मे अपनी नवीन सामाजिक क्रान्ति को फैलाकर अपनी क्रान्तिकारी भावना को समाप्तप्राय कर इस देश मे विजयी के रूप में घुसने लगा।

भारतवर्ष मे चन्द्रगुप्त मौर्य से हर्षवर्धन तक जो भारतीय मध्ययुग का हिन्दू साम्राज्यो का युग था वह युग जो गणतन्त्रों की समाप्ति के समय से प्रारम्भ हुआ था बौद्ध प्रभाव में आकर समाप्त हुआ। इसमें निम्न जातियों ने घोर विद्रोह किया।

इस्लाम के आने पर भारतीय मध्य युग के मुस्लिम साम्राज्यो के काल के प्रारम्भ होने के पूर्व यहाँ उसका प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो चुका था। बीच के संधिकाल मे बिलकुल बीच मे गोरखनाथ हैं। उनके एक ओर शंकर है दूसरी ओर रामानुज।

यह भारतीय संस्कृति का अन्धकारमय संधियुग इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसके बिना इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं होता। इस युग मे हमारे योगी गोरखनाथ का कार्य है। तब हम देखते हैं कि गोरखनाथ के नाथ सम्प्रदाय को दो बातो का प्रसार झेलना पड़ा। बौद्धमत ने निम्न जातियों को उठाने का प्रयत्न किया। दूसरे पक्ष मे इस्लाम ने भी यही प्रभाव डाला।

कबीर और तुलसी

भारतीय इतिहास का यह युग वर्ग संघर्ष का युग है। बौद्धपक्ष मे साधना व्यक्तिवादी हो गई। उत्तर पक्ष में हिन्दू संगठन हुआ क्योंकि मुसलिम किसी समझौता नहीं करना चाहते थे वह ध्वंसात्मक बन कर आए थे। इसलिए

वर्णाश्रम के विरुद्ध चलने वाला युद्ध अब जातीयता के युद्ध में आकर परिणत हो गया। गोरखनाथ का कार्य उभय पक्ष में अपना प्रभाव डाल सका। उन्होंने समाज को युद्ध किया। किन्तु व्यक्ति कठिन हो गया। तदनन्तर निम्न जातियों को उन्होंने जातीयता से उठाकर जाति बन्धनों से परे वर्णाश्रम से परे उठने का संकेत किया। किन्तु व्यवस्था ब्राह्मण कृत थी। इस्लाम भी इसीलिए जीवित रह सका क्योंकि उसने उसे स्वीकार कर लिया। धार्मिक रूप से अस्वीकार करने के कारण उसका न केवल ब्राह्मणों वरन् अब्राह्मणों ने भी बहिष्कार कर दिया। जो बौद्ध प्रभाव तथा ब्राह्मण प्रभाव के कट्टर विरोधी थे वे इस्लाम में जा घुसे। उनके भीतर घुसे मजहबवाद को इस्लाम ने ठोक-पीटकर निकाल दिया। गोरख की साधना व्यक्तिगत रही थी इससे आगे चलकर कबीर जैसे संत हुए जिन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा। किन्तु उनके चिन्तन का आधार सर्वथा व्यक्तिमार्गी था।

इस बीच में भक्ति मार्ग की आड़ में अब ब्राह्मणवाद फिर जाग्रत हो गया था। इसका ज्वलन्त प्रतीक तुलसीदास हैं। जिन्होंने तत्कालीन समाज में न केवल सामन्तकालीन व्यवस्था की पृष्ठभूमि बनाई वरन् 'हिन्दू' शब्द का संगठन किया और आपस में भेद हटाकर मुसलमानों की दुगनी कट्टरता से रोक दिया। स्मरण रहे उस समय राजनैतिक शक्ति (अकबर) अपने आपको कायम रखने के लिए, यहाँ की सामन्तशाही को खूब मान और सम्मान दे रही थी। किन्तु ब्राह्मणवाद उससे समझौता करके भी पूर्ण स्वाधीन नहीं होने के कारण उससे बिलकुल ही सन्तुष्ट हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। विषय बढ़ने वाला है अतः आलोचना काल के बाहर होने के कारण इसे यहीं छोड़ देना चाहिए। यह एक सत्य है कि गोरख का व्यक्ति तुलसी के समाज पक्ष में एक अड़ंगा था तभी तुलसी ने उसके प्रभाव को मिटा देने के लिए कहा था—

> बरन धरम गयो आश्रम निवास तज्यो
>
> त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
>
> करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान
>
> बचन बिराग बेष जगत हरो सो है।
>
> गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
>
> निगम नियोग तें सो केलि ही छरो सो है।
>
> काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि
>
> राम नाम को भरोसो ताहि को भरोसो है।
>
> (कवितावली उत्तरकांड 84)

गोरख लुप्त

आज का बुद्धिवादी सहज यह सुनकर अविश्वास करता है कि गोरखनाथ सचमुच इतने महान् व्यक्ति थे। इसका कारण है कि इतिहास भारत में मुख्यतः तीन दृष्टिकोणों से लिखे गए हैं—

(1) ब्राह्मण सत्ताधारियों ने अपने तथा सामंतवादी समाज की रक्षा के दृष्टिकोण से।

( ) मुसलमानों ने अपने मत को ऊँचा उठाने के दृष्टिकोण से।

(3) विदेशियों ने जो या तो जिज्ञासु मात्र या अपना साम्राज्यवादी दृष्टिकोण सामने रखकर आने या मनमाने हिन्दू और मुसलमानों को अलग अलग रखने के दृष्टिकोण से।

अब एक नया इतिहास लेखक वर्ग उत्पन्न हो रहा है जो भावावेश में अपनी निर्बलताओं को छिपाता है या धार्मिक दृष्टिकोण के कारण तथ्य की जगह श्रद्धा से काम लेता है।

कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि इतिहास ने गोरख को किस लिए भुला दिया? उत्तर है कि गोरख को भुला देने का स्वप्न देखने वाले आज तक उनका प्रभाव मिटाने में असमर्थ साबित हुए हैं। गोरखनाथ को ब्राह्मण वाद ने अपने विरोध में जानकर पीछे धकेल दिया। ऐसा वह तभी कर सके जब स्वयं गोरखनाथ जीवित नहीं रहे थे। यद्यपि गोरख के कारण अनजाने ही ब्राह्मणवाद को सबसे अधिक लाभ हुआ तथापि जब सन्तकालीन नीच जातियों का विद्रोह एक बार उठ खड़ा हुआ और कालान्तर में उसकी धर्मचारियों की राह से ब्राह्मणवाद फिर उच्च वर्गों की विजय के साथ आ जुड़ा और धन पर आ गया तब उसने एकबारगी अपने प्रभाव को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने समस्त प्रतिद्वंद्वियों को राह से हटा देना चाहा। चार्वाक के अनुयायियों को बौद्धों के साथ मिलाकर देखने की क्रूरता उसमें पुरानी चीज थी। जिनका सर्वदर्शन संग्रह में मुखर रूप में भिन्नत्व दिखाने पर भी अन्यत्र ऐसा वर्णन किया गया है उससे इतनी आशा करना कोई विस्मय की बात नहीं है।

भूल के कारण

तब यह कहना ठीक ही है कि गोरखनाथ को भुलाने वाले उच्चवर्गीय व्यक्ति थे जिनको गोरख का जाति-पाति विरोध तथा राजा को समानता की दृष्टि से देखने की बात कभी भी रुचिकर नहीं लग सकती थी। जन-समाज जिसने उस व्यवस्था की विषमता को पहचाना उसने गोरखनाथ को सदैव अपने सामने रखा। क्या यह एक अद्भुत बात नहीं है कि जिस व्यक्ति के

नाम पर इस विराट् भूखण्ड में इतने मठ और मन्दिर हैं जिसने सम्पूर्ण नेपाल को बौद्ध से शैव मत में बदल दिया जिसने समस्त निर्गुण सम्प्रदाय पर इतना सशक्त प्रभाव डाला जो हिन्दी साहित्य के आदि-काल का एक सशक्त भाषा प्रचारक था वह बुद्धिमानी वर्ग में प्रायः नहीं के ही समान ज्ञात है।

ब्राह्मणवाद के अतिरिक्त इसमें एक कारण और था। जोगियों का असामाजिक रूप से रहना और इतिहास की ओर अधिक रुचि न रखना इन सबको सांसारिक कहकर व्यर्थ समझना।

तदुपरान्त इस्लाम के भीषण प्रहार ने रहा-सहा काम पूरा कर दिया— जैसे बौद्ध भारत से अपने ग्रन्थों को लेकर तिब्बत चले गए, वैसे ही योगी सम्प्रदाय भी भीषण उथल-पुथल में अपना वह स्वरूप खो बैठा जिसकी गोरखनाथ ने कल्पना की थी। ऊपर कबीर के फकीरों का वर्णन हो चुका है। हिन्दू और मुसलमान दो वर्गों मे योगी सम्प्रदाय का विभाजित हो जाना गोरखनाथ के यश रूपी वृक्ष की जड़ पर सबसे भयानक कुल्हाड़ा था। इसके औचित्य और अनौचित्य पर हम विचार नहीं करना चाहते क्योंकि उस समय की समस्त ऐतिहासिक परिस्थिति को सामने रखकर ही इसे समझा जा सकता है यह बात काफी स्पष्ट है। इस पर विस्तार से जाना एक सरल बात को दुहराने के समान होगा।

सबसे बड़ी बात थी कि गोरखनाथ का कार्य जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है अपने आप मे इतना कठिन और दुरूह तथा जटिल था कि वैज्ञानिक ढंग से समाज का विश्लेषण न कर सकने से उसके महत्त्व को समझ लेना भी कठिन ही था और फिर गोरखनाथ जो सिद्धान्त या रूप लेकर चले थे क्योंकि वह वहीं स्थिर नहीं हुआ बल्कि उसने अपना ऐतिहासिक कार्य किया और वह निरन्तर भारतीय विचार-धारा मे अपना विकास करता रहा। कुछ दिन के बाद उसकी आवश्यकता ही नहीं रह गई।

भारतीय संस्कृति की धारा

अतः हमने यह स्पष्ट रूप से देखा कि जिसे भारतीय संस्कृति कहा जाता है वह किसी मत विशेष की अपनी संकुचित सीमा नहीं। इसमे अनेक मत उठते हैं फैलते हैं, बिखर जाते हैं या फिर संकुचित होकर लय और लुप्त हो जाते हैं। इसमे कीर्ति और यश मिलना जितना कठिन है उससे अधिक उसका बना रहना है। विराट् है यह देश नाना रूप है इसके जीवन का व्यापार अतः किसी का भुला दिया जाना कोई विस्मय की बात नहीं है। जब अश्वघोष जैसे बौद्ध और स्वयंभू जैसे जैन कवियों को यहाँ लोग भूल सकते हैं तब गोरखनाथ को ही भूल जाना क्या आश्चर्य की बात है। किन्तु सत्य

यह नहीं है। संस्कृति की धारा में अपना कार्य कर चुकने के बाद भी जो गोरख के नाम पर मन्दिर मठ अस्थान और अखाड़े हैं उनके बचे रह जाने का क्या कारण है? ऊपर हम देख चुके हैं कि यह मत का प्रताप था। इसके अतिरिक्त एक और कारण है। भारतीय संस्कृति की धारा में जो योग धमनी में बहते रक्त के समान व्याप्त है वही इसके लिए उत्तरदायी है अपनी समस्त निर्बलताओं के होते हुए भी यह अत्यन्त तीव्र व्याप्त रही है और उसकी ओर लोग समय-समय पर आकर्षित होते रहे हैं इस आकर्षण का केन्द्र भारतीय समाज व्यवस्था विरोधियों के हृदयों मे यहाँ की जलवायु का परिणाम है।

मेरा विचार है कि यह रहस्य की भावना ही भारत में ब्राह्मणवाद को जीवित रखने के लिए उत्तरदायी है। सब कुछ झूठ कहकर शरीर में ही ब्रह्माण्ड रखकर, उसी में ब्रह्म को सत्य मानकर जो संस्कृति पृथ्वी और काल की अवधि को भाव से सहस्र वर्ष पूर्व संचित और दूसरे पक्ष में एकत्र कर खड़ी हुई वह कितनी सशक्त थी और कितनी निर्बल थी यह आगे की सदियों ने प्रकट किया और इस संस्कृति का ही एक अणु थे गोरखनाथ।